उन्हें अवसर न मिला। कविरत्न सत्यनारायण भी ऊँचे दरजे के भावुक और गायक थे, किंतु उनका न तो इतना अध्ययन था और न उनमें इतनी कला कुशलता थी। श्रीधर पाठक व्रजभाषा से अधिक खड़ी बोली के ही आचार्य हुए। वर्तमान और जीवित कवियों में कोई ऐसा नहीं जो आजीवन इनकी धाक न मानता रहा हो। विक्रम की बीसवीं शताब्दी अब समाप्त हो रही है। अतः जब आगामी शताब्दी के के आरंभ में पुराने कवियों और उनकी कृतियों की जाँच-पड़ताल की जायगी, तब रत्नाकर को इस क्षेत्र में शीर्ष स्थान देते हुए, आशा है, किसी को कुछ भी असमंजस न होगा।

परंतु यह शीर्ष स्थान नवीन प्रासाद-निर्माण का पुरस्कार नहीं है, केवल पुरानी पच्चीकारी का पारिश्रमिक है। पुरातन और नूतन का यह अंतर समझ लेना ही रत्नाकर का यथार्थ मूल्य आँकना होगा। भाषा तो भाषा ही है, चाहे वह व्रज हो या खड़ी बोली। कवि की अभिव्यक्ति के लिये हर एक भाषा उपयुक्त हो सकती है। वह तो साधन मात्र है, साध्य नहीं। इस प्रकार की विवेचना वे ही कर सकते हैं, जो यह परिचय नहीं रखते कि भाषाओं की भी आत्मा होती है। अथवा उनके जीवन की भी एक गति होती है। प्रत्येक भाषा की प्रगति का एक क्रम होता है जो सूक्ष्म दृष्टि से देखा जा सकता है। भाषा का एक स्वतंत्र व्यक्तित्व और वातावरण भी होता है। समय के परिवर्तनशील पटल पर उसकी भी अनेक प्रकार की आकृतियाँ बनती रहती हैं। उन्हें पहचानना कवि-जनों के लिये उपयोगी ही नहीं, आवश्यक भी है। जो व्रज-भाषा भक्तों की भावनाओं से भरकर रीति कवियों की साज-सज्जा से चटकीली हो रही है, उसके साथ आलाप करना या

व्रजभाषा

तो किसी बड़े कलाभिज्ञ का ही काम है और या किसी निपट अनाड़ी का ही। जो भाषा अपनी संपूर्ण प्रौढ़ प्रतिभा और देशव्यापी-प्रभाव के रहते हुए भी अपनी ही परिचारिका खड़ी बोली को अपना सौभाग्य सौंपकर विवश पड़ी हो, उस मानिनी को सांत्वना देने के लिये उसके किसी अनन्य प्रेमी की ही आवश्यकता होगी। व्रज की वह सभ्य सुंदरी जब ग्रामीण और अनुपयोगी कही जा रही हो, तब उसके रोष-दीप्त मुख के श्रम-कणों को सभालने के लिये बहुत बड़ी सहानुभूति अपेक्षित है।

हम यह नहीं कहते कि व्रजभाषा का व्यवहार नए विषयों के वर्णन में किया ही नहीं जा सकता, परंतु इसके लिये प्रचुर प्रतिभा चाहिए। भारतेंदु हरिश्चंद्र को छोड़कर व्रजभाषा के और किसी उपासक को इस युग में वह प्रतिभा कदाचित् ही मिली हो। अँगरेज़ी शिक्षा के प्रचार और अँगरेज़ी कविता के [illegible] से खड़ी बोली [illegible] गति से चल रही है। पर व्रजभाषा को यह सौभाग्य न मिल सका। यद्यपि [illegible] के आदर का हेतु है, परंतु पुरानी कल्पनाएँ ही [illegible] आनंद का विषय बनी रहती हैं। यदि जनता की [illegible] के कारण व्रजभाषा समय का साथ देने में [illegible] यदि कोई ऐसा कवि न [illegible] जो अपनी [illegible] में उसका नवीन [illegible] करके उसे आधु-[illegible], तो भी उसके लिये अपनी [illegible] सुरक्षित रखने में कोई बाधा नहीं है। यदि [illegible] और भावों की व्यंजना [illegible] और [illegible] होगी।

तात्पर्य यह कि यदि भाषा के स्वभाव को न समझकर बेसुरी तान छेड़नेवालों को छोड़ दिया जाय तो भी साहित्य के पंडितों में इस समय ब्रजभाषा विषयक दो विशेष विचार फैल रहे हैं। एक तो यह कि ब्रजभाषा अब भी नवीन जीवन के उपयुक्त बनाई जा सकती है और नव्य संदेश सुना सकती है। दूसरा यह कि वह अपनी विगत शोभा को ही सँवारकर अपनी अभीष्ट सिद्धि कर सकती है। उसे नवीन विषयों की ओर झुकाने में कोई लाभ नहीं है। यह भी वैसा ही मत-भेद है, जैसा प्राचीन अजंता की चित्र-विद्या के संबंध में है। एक ओर तो बंगाल के कलाविद् उसे नवीन उपकरणों में प्रयुक्त करते हैं और दूसरी ओर कुछ लोग इस मिश्रण का विरोध करते हैं। वस्तुतः यह भाषा के स्थिर सौंदर्य और चलित सौंदर्य का विवाद है। बहुतों की यह ऐषणा होती है कि हमारी प्राचीन परिचिता हमारे दैनिक जीवन में सदैव साथ रहे, पर बहुतों को उसे यह कष्ट देना इष्ट नहीं होता। वे उसकी केवल स्मृति ही रक्षित रखना चाहते हैं। इस उदाहरण पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि ब्रजभाषा हमारी प्राचीन परिचिता ही नहीं है, वह तो आज भी ब्रज में बोली-चाली जाती है। परंतु यहाँ हम साहित्यिक ब्रजभाषा की बात कर रहे हैं जो शताब्दियों की पुरानी है और खड़ी बोली के नवीन उत्थान की तुलना में प्राचीन ही कही जायगी। हम उस ब्रजभाषा की चर्चा कर रहे हैं जो सारे उत्तर भारत पर एक-छत्र शासन कर चुकी है और देश के ओर-छोर तक अपनी कीर्ति-कौमुदी का प्रसार कर चुकी है। उक्त द्विविध मतों में से रत्नाकर जी दूसरे मत के अवलंबी थे। यद्यपि आरंभिक जीवन में उन्होंने अँगरेज कवि पोप के "समालोचनादर्श" को ब्रजभाषा-पद्य में अवतरित

करने की चेष्टा की थी, किंतु अपनी शेष रचनाओं में उन्होंने ठीक ठीक व्रज की काव्य-कला का ही अनुसरण किया था।

काशी और अयोध्या में रहकर व्रज की काव्य-कला का अनुसरण विना गंभीर अध्ययन के साध्य नहीं है। रत्नाकरजी का अध्ययन बहुत विस्तृत और बहु-वर्ष-व्यापक था। इनके पिता श्री पुरुषोत्तमदास जी फारसी भाषा के विद्वान् थे और उनके यहाँ फारसी तथा हिंदी कवियों का जमघट लगा रहता था। भारतेंदु हरिश्चंद्र उनके मित्रों में से थे। बालक रत्नाकर में कविता के संस्कार इसी सत्संग से उत्पन्न हुए। एक धनिक परिवार में जन्म लेने के कारण उनके अध्ययन में सैकड़ों बाधाएँ आ सकती थीं, और इसीलिये बी० ए० पास कर लेना इनके लिये एक असाधारण घटना प्रतीत होती है और इसे हम उनके अध्ययन की उत्कट अभिरुचि ही कह सकते हैं। यद्यपि इन्हें व्रजभाषा के अनुशीलन का सुयोग कुछ दिनों बाद प्राप्त हुआ, तथापि व्रजभाषा पर इनका व्यापक अधिकार था। आरंभ की रचनाओं में भी व्रजभाषा का एक सुष्टु रूप है। किंतु प्रौढ़ कृतियों में, विशेषकर उद्धव-शतक में, रत्नाकर का भाषा-पांडित्य प्रखर रूप में प्रस्फुटित हुआ है। संस्कृत की पदावली को इतने अधिकार के साथ व्रज की बोली में गूँथ देना मामूली काम नहीं है। यही नहीं, रत्नाकर जी ने अपनी काशी की बोली से भी शब्द ले लेकर व्रजभाषा के साँचे में ढाल दिए हैं जो एक अतिशय दुष्कर कार्य है। बहुतों ने इस मिश्रण कार्य में विफल होकर भाषा की निजता ही नष्ट कर दी है। पर रत्नाकर 'अजगुतहाई' 'गमकावत', 'बगीची', 'धरना', 'पराना', आदि अविरल देशी प्रयोग करते चलते हैं और कहीं वे प्रयोग अस्वाभाविक नहीं

भाषा-शास्त्री

जान पड़ते। कहीं कहीं 'प्रत्युत' 'निर्धारित, आदि अकाव्यो-पयोगी शब्दों के शैथिल्य और 'स्वामि-प्रसेद', 'पात-थल', 'दंद-उम्मस', आदि दुरूह पद-जालों के रहते हुए भी उनकी भाषा क्लिष्ट और अग्राह्य नहीं हुई। फुटकर पदों और कृष्ण काव्य में वह शुद्ध व्रज और गंगावतरण में संस्कृत-मिश्रित होती हुई भी किसी न किसी मार्मिक प्रयोग की शक्ति से व्रज की माधुरी से पूरित हो गई है। दोनों का एक एक उदाहरण लीजिए—

जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हें
यातैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुँह आवत सो विवस बयात हौ॥

सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यौं ही तुम आपही सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग जोग कबहूँ न जानैं कहा जोहि जकौ
ब्रह्म ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ॥

(शुद्ध व्रज)

श्यामा सुघर अनूप रूप गुन सील सजीली।
मंडित मृदु मुखचंद मंद मुसक्यानि लजीली॥
काम वाम अभिराम सहस सोभा सुभ धारिनि।
साजे सकल सिंगार दिव्य हेरनि हिय हारिनि॥

(संस्कृत-मिश्रित)

फारसी के अच्छे पंडित होते हुए भी रत्नाकर जी ने बड़े संयम से काम लिया है, और न तो कहीं कठिन या अप्रचलित फारसी शब्दों का प्रयोग किया है और न कहीं स्वाभाविकता का तिरस्कार ही किया है। गोपियाँ कृष्ण के लिये दो एक बार 'सिरताज' का प्रयोग करती हैं। पर वह उपयुक्त और व्यवहार-प्राप्त है, कठोर या खटकनेवाला नहीं।

'सूरसागर' का संपादन करते हुए रत्नाकरजी ने पद-प्रयोगों और विशेषतः विभक्ति-चिन्हों के संबंध में जो नियम बनाए थे, वे उनके ब्रजभाषा-आधिपत्य के स्पष्टतम सूचक हैं। भाषा पर इस प्रकार अनुशासन करने का अधिकार बहुत बड़े वैयाकरण ही प्राप्त कर सकते हैं। व्याकरण के साथ रत्नाकरजी का संबंध बहुत ही साधारण था, तथापि उनकी वे विधियाँ बहुत अंशों में संभवतः सदैव मान्य ही समझी जायँगी, और नहीं तो उनसे रत्नाकर जी की वह अधिकार-भावना तो प्रगट ही होती रहेगी जिसके बल पर उन्होंने वे विधियाँ बनाई हैं।

कलाविद्

छंदों की कारीगरी और संगीतात्मकता में रत्नाकर जी का अधिकार पूर्ण कलम स्वीकार की गई है—विशेषतः इनके कवित्त बेजोड़ हुए हैं। हिंदी और अँगरेजी के कवियों की भ्रांत तुलनाएँ अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिलती हैं, परंतु भाषा-सौंदर्य संगीत और छंद-संघटन में—कविता के कला-पक्ष की सुघरता में—यदि रत्नाकर की तुलना अँगरेज कवि टेनीसन से की जाय तो बहुत अंशों में उपयुक्त होगी। टेनीसन की कारीगरी भी रत्नाकर की ही भाँति विशेष पुष्ट और संगीत से अनुमोदित हुई है। इन दोनों कवियों की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यही भाषा-चमत्कार और छंदों की रमणीयता स्थापित करने में है। दोनों में भावना

की मौलिकता अधिक व्यापक और उदात्त न हो, तो भी रचना चातुरी में ये दोनों ही पारंगत हुए हैं। खड़ी वोली में भी कवित्तों की रचना होती है, परंतु साधारणतः खड़ी वोली के इन छंदों में वह अतंरंग संगीत-ध्वनि नहीं होती। यही उस पुरानी पच्चीकारी की वात है जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। नवीन प्रासाद-निर्माण के कार्य में और इस मीनाकारी में जो अंतर है, वह यहाँ थोड़ा-वहुत स्पष्ट हो जाता है। खड़ी वोली के कवित्त में कलम पकड़ते ही लिख चलने का सुभीता है पर व्रजभाषा के कवित्त के लिये रियाज और तैयारी चाहिए। इसी कारण इन दिनों खड़ी वोली में भावना का अधिक सत्य रूप और व्रज में अधिक आकर्षक रूप उतरने की आशा की जाती है।

रत्नाकर जी के छंदों की चर्चा करते हुए हमने उनकी जिस रचना चातुरी की प्रशंसा की, वह काव्य का चरम लाभ नहीं है। वह तो कवियों को वह अमलभ्य कला है जिसकी सहायता से वे अद्वितीय चमत्कार की सृष्टि करके सुख-संचार करते हैं। वहुधा प्रथम श्रेणी के जगद्विख्यात कवियों में यह कला कम देखी जाती है, और मध्यम श्रेणी के पारखी कवि उन अवसरों पर इसका अधिक प्रयोग करते हैं, जव उन्हें वास्तविक काव्य-भावना के अभाव की पूर्ति करनी होती है। इस अनमोल उपाय से कविगण अपना उत्कर्ष साधन करते हैं। हम देखते हैं कि रत्नाकर में भी काव्यकला का प्रदर्शन, सर्वत्र नहीं तो कम से कम कवित्तों में, अवश्य दृष्टिगोचर है। इनकी अधिकांश भावना भक्तों से ली हुई है, परंतु भक्तों में इनकी तरह कविता-रीति नहीं थी। वे तो भजनानंदी ही अधिक थे। उनके उपरांत जो रीति-कवि हुए उनमें अनुभूति की कमी और भाषाशृंगार अधिक हो गया। इस कवि-परंपरा में पद्माकर अन्यतम समझे जाते हैं

औ : रत्नाकर जी इस विषय में अपने को पद्माकर से प्रभावित मानते थे। तथापि 'उद्धवशतक' में उनकी कविता पद्माकर से अधिक ओजपूर्ण और भक्ति-भावापन्न है और गंगावतरण में प्रबंध का विचार पद्माकर के 'रामरसायन' से अधिक प्रौढ़ है। भक्तों की अपेक्षा रत्नाकर कम रसमय किंतु अधिक सूक्ति-प्रिय हैं—रीति-कवियों की अपेक्षा वे साधारणतः अधिक भावनावान् , अधिक शुद्ध और गहन संगीत के अभ्यासी हैं। ये भक्तों और शृंगारियों के बीच की कड़ी के रूप में हैं।

यह नहीं कहा जा सकता कि 'गंगावतरण' का प्रबंध निर्माण करते हुए रत्नाकर के सामने कौन सा आदर्श था।

प्रबंध-कविता

रामचरितमानस का प्रबंध अधिक बलशाली और दुरतिगम्य है। बालकांड और उत्तर-कांड के आदि तथा अंत में तुलसीदास ने अपने काव्य पर से, देश और काल के बंधन हटा देने की चेष्टा की है। पात्र का बंधन भी उन्होंने दूर किया है। परंतु इस विषय में उन्हें सफलता केवल राम के संबंध में हुई है। मानस में राम का वास्तविक रूप अरूप ही है। शेष पात्रों को तुलसीदास ने रूप-रेखा दी है और उनमें गुणों का आरोप भी किया है। केवल राम में वह बात नहीं है। कवि ने आकाश-पाताल एक कर दिए हैं, क्योंकि हनूमान पाताल में पैठकर महिरावण का वध करते हैं और आकाश से उड़कर लंका-पार जाते हैं—पहाड़ उठा लाते हैं। तुलसी के इस महत् अनुष्ठान से प्रायः सभी परवर्ती कवि प्रभावित हुए हैं, यद्यपि यह प्रभाव परिस्थिति के अनुसार भला और बुरा दोनों पड़ा है। 'गंगावतरण' को देखने से उसमें भी मानस की छाया मिलेगी। सगर-सुतों का पाताल-प्रवेश, गंगा

का स्वर्ग से आगमन—आकाश-पाताल की खबर यहाँ भी लाई गई है। सगर-सुतों के भस्म होने के कई पीढ़ियों बाद उनके मोक्ष का जो कार्य भगीरथ ने किया, वह उतना प्रभाव नहीं डालता। यदि 'गंगावतरण' का मुख्य आशय यही मोक्ष माना जाय तो रत्नाकर जी को मोक्ष-व्यापार के प्रति अधिक दत्तचित होने की आवश्यकता थी। आरंभ में यदि इतना विलंब हो गया था तो कार्य की गुरुता और विफल प्रयासों का अधिक महत्वपूर्ण वर्णन अपेक्षित था। रत्नाकर जी काव्य की नियताप्ति के साथ अधिक तन्निष्ट क्यों नहीं हुए ? संभवतः "मानस" की छाया पड़ी थी। परंतु मानस में नियताप्ति की चेष्टा का अभाव स्वभाविक है, क्योंकि उसमें नियत (सीमा) कुछ है ही नहीं। उसमें तो उसका सब ओर से अतिक्रमण ही जान पड़ता है। रामचरितमानस भाषा-साहित्य के कानन का वह विशाल वट है जिसकी शाखा-प्रशाखाएँ नितांत अनिर्दिष्ट दिशाओं में फैल कर छायादान करती हैं। इस अक्षयवट की यह स्वाभाविकता है कि जहाँ तहाँ इसके वरोह क्षेपकों, अंतर्कथाओं और प्रसंग-विपर्यय के रूपों में डालों से निकलकर भूमि में गड़े देख पड़ते हैं। गंगावतरण की कथा भी रामचरित की ही भाँति पौराणिक होने के कारण अलौकिक चित्रों से युक्त है। दोनों की कथा में ही इतना आकर्षण है कि घटना-अनुक्रम और सूक्ष्मकला का का प्रदर्शन उतना आवश्यक नहीं रह जाता। रत्नाकर जी ने गंगा के अवतार की जो ओजपूर्ण और रहस्यमयी वर्णना की है वह पौराणिक काव्य के उपयुक्त ही है।

यदि "शृंगार लहरी" और "उद्धव शतक" को मिला दिया जाय तो कृष्णकाव्य की एक संक्षिप्त, पर अच्छी कथा बन सकती है। इनमें "शृंगार-लहरी" यद्यपि कुछ परवर्ती रचना है, तो

भी "उद्धवशतक" उससे अधिक प्रौढ़ और मर्मस्पर्शी हुआ है। यह शतक रत्नाकर जी की सर्वश्रेष्ठ कृति कहा जाता है इसका संगीत हमारी भावनाओं पर अधिकार करने में समर्थ है। इसका पाठ करते समय भावों की मौलिकता और उक्तियों की नवीनता का अपूर्व आनंद आता है और सूर के पद स्मरण हो आते हैं। यह कोई साधारण विशेपता नहीं है, वरन् इसे रत्नाकर जी की सबसे बड़ी विशेषता समझनी चाहिए। हम ऊपर कह चुके हैं कि भक्तों में भावुकता अधिक है और रत्नाकरजी में सूक्तिप्रियता अधिक। परंतु "उद्धवशतक" की सूक्तियाँ भी एक अंतर्निहित रस में डूबी हुई जान पड़ती हैं। रत्नाकर जी की इससे अधिक तन्मयी काव्य-साधना दूसरी नहीं मिलती। भवभूति की प्रसिद्ध पंक्ति—"एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्" भिन्न भिन्न व्यक्तियों को भिन्न भिन्न मात्रा में मान्य होगी। महाकवि रवींद्रनाथ ने एक स्थान पर कहा है—"हमारे सुख-शृंगार के संपूर्ण साज में दुःख की प्रछन्न छाया मिली हुई है।" रत्नाकर जी ने भी अधिकांश शृंगारी कविता ही लिखी है। उनके जीवन-व्यापी शृंगार में छिपी हुई दुःख की छाया ही मानो "उद्धवशतक" का केंद्र पाकर साकार हो गई है। सच ही है—"हमारी श्रेष्ठतम कविता वही है जो करुणतम कथा कहे।"

"उद्धवशतक" की श्रेष्ठता

प्रकृति-वर्णन के कुछ स्थल "हिंडोला" "हरिश्चंद्र काव्य" और 'गंगावतरण" में आए हैं। इनमें स्वर्ग से उतरकर गंगा का पृथ्वी पर आना सबसे अधिक प्रभावपूर्ण और चमत्कारी है। शुद्ध प्राकृतिक वर्णन का संपूर्ण व्रजभाषा काव्य में प्रायः अभाव ही है। उसकी तो वहाँ परिपाटी ही नहीं चल पाई। तथापि गंगावरण में गंगा के हिमालय से निकलकर समतल की ओर बढ़ने के दृश्य

चाहे कुछ लोगों को भाषा की अतिरंजना के कारण यथार्थ न जान पड़ें, फिर भी बहुत कुछ स्वाभाविक हैं और उत्प्रेक्षाएँ भी प्रायः सर्वत्र चित्रोपम हैं।

'हिंडोला" में साज-सज्जा और झूले का वर्णन और "हरिश्चंद्र काव्य" में मरघट-वर्णन भी अच्छे हैं, प परंपरा उनमें भी टूट नहीं सकी है। अलंकार की छटा उनमें भी छहर रही है। केवल मरघट में वह नहीं है।

सच्चे प्रकृति-वर्णन की यह विरलता व्रजभाषा के काव्य मात्र में है। इसके कारण का अनुसंधान करते हुए (अब स्व०) पंडित रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि व्रजभाषा का विकास उस काल में हुआ था, जब संस्कृत का अलंकृत रूप अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गया था। काव्य की स्वाभाविक गति के लिये स्थान ही नहीं रह गया था। परंतु स्वाभाविक अस्वाभाविक की बात उतनी नहीं है। हमारे विचारसे सबसे प्रमुख कारण भक्ति और दर्शन की वे भावनाएँ थीं जो व्रजभाषा- साहित्य पर ही नहीं, देश की अपर जनता पर अधिकार जमाकर उसकी मनोवृत्ति ही बदल चुकी थीं। अनंत और असीम की आकांक्षा में सारा देश निमग्न सा हो गया था; और जब कभी सीमा के सौंदर्य का—राम, कृष्ण अथवा उनसे संबद्ध परिस्थितियों के सौंदर्य का वर्णन किया जाता, तब भी उसमें अपार निस्सीम शोभा की ही ध्वनि भरी होती थी। जीवन की साधारण घटना और लौकिक जगत की घरेलू सुषमा पर दृष्टि पड़ने का अवसर कम ही रहा। जिन लोगों ने प्रकृति पर कुछ ध्यान दिया, वे "घाघ-भड्डरी" कहलाए। उनकी अशिष्ट परंपरा मानी गई।

घटना और पात्रों का निर्वाह करने की चिंता में व्रजभाषा के कवियों को प्रबंध-क्षेत्र के भीतर तोप्र कृति-वर्णन की सुविधा मिली

ही नहीं; मुक्तकों में भी ऋतु-वर्णन अधिकतर नायक-नायिका के ही प्रसंग से किया गया। अतः वर्णन की दृष्टि से ऋतुएँ अयथार्थ और नीरस ही रहीं। सेनापति आदि कुछ कवियों ने

मुक्तक

अवश्य वास्तविकता से काम लिया, परंतु वह भी बहुत दूर तक नहीं। प्रत्येक ऋतु की एक सुखद या दुःखद भावना ही प्रस्फुटित होकर रह जाती है, प्रकृति के अन्य प्रभावशाली रहस्य प्रकट ही नहीं होते। रत्नाकरजी के मान्य पद्माकर की 'गुलगुली गिलमें' और उनके साथ के सरंजाम और "मंद-मंद मारुत महीमा मनसा' की महिमा मालूम ही है। रत्नाकर जी ने भी फुटकर पदों में ऋतु संबंधी अष्टक लिखे हैं पर वे व्रजभाषा के प्रकृति-वर्णन की तुलना में बहुत कुछ और आगे बढ़े हुए हैं।

अष्टकों में तथा सैकड़ों फुटंकर कवित्तों में रत्नाकर जी का कलाविद् रूप अधिक स्पष्ट है। ये वे कवित्त हैं जो उनके जीवन काल में सैकड़ों बार कवि-सम्मेलनों में श्रोताओं की वाहवाही प्राप्त कर चुके हैं। क्यों न हो। इनकी कारीगरी ऐसी ही है। रत्नाकर जी को छोटे-छोटे कवि-सम्मेलन अधिक प्रिय थे। उन्हें कवि-मंडली कहना अधिक उपयुक्त होगा। उन्हीं में वे अपनी मँजी कलम के निखरे कवित्त सुनाया करते थे। इन्हीं में उनके वीराष्टक के कवित्त भी हैं जिन्हें पढ़कर एक पत्र-संपादक ने लिखा था कि—"रत्नाकर जी भूषण के युग में रहते हैं।' परंतु यह रत्नाकर जी की प्रकृति का विपर्यय है। यह युग भी "भूषण का युग" कहा जा सकता है। पर वीरता के उत्थान के अर्थ में; हिंदू- मुस्लिम-वैमनस्य के अर्थ में नहीं, जैसा कि उक्त पत्रिका-संपादक का संकेत जान पड़ता है। रत्नाकर जी को भूषण-युग का कवि कहना ठीक नहीं। किसी कवि के दो-चार पद लेकर एक सिद्धांत की स्थापना कर चलना अनुचित है।

नए नए सिद्धांतों का निरूपण और आविष्कार करनेवालों में से चाहे कोई उन्हें भूषणकाल का और चाहे कोई उमर खैयास का प्रतिस्पर्द्धी बतलावे, परंतु साहित्यिक और सामाजिक इतिहास के जानकार और रत्नाकर जी के परिचित उन्हें इस रूप में नहीं देखते। रत्नाकर जी के उद्धवशतक में उद्धव के जोगतंत्र को गोपियों की भक्ति-भावना से पराजित करने की योजना नवीन नहीं है। उनकी उक्तियाँ भी अनेक अंशों में सूरदास, नंददास आदि की उक्तियों से मिलती-जुलती हैं, यद्यपि उनमें रत्नाकर जी की एक निजता अवश्य है। सगुण और निर्गुण भक्ति की यह रसमयी रागिनी वैष्णव साहित्य की एक सार्वजनिक विशेषता है। कृष्णायन संप्रदाय के प्रायः सभी कवियों ने इस रागिनी में अपना स्वर मिलाया है। ऐसी अवस्था में यदि कोई कहे कि रत्नाकर जी की गोपियों की उक्तियाँ नवीन युग के व्यक्तिवाद का संदेश सुनाती हैं अथवा भावी अनीश्वरवाद का संकेत करती हैं, तो यह प्रसंग के साथ अन्याय और रत्नाकर जी की प्रकृति से अपरिचय प्रकट करना ही होगा।

रत्नाकर जी तो मध्ययुग की मनोवृत्ति लेकर मध्ययुग के ही वातावरण में निवास करते थे। आधुनिकता के प्रति उनकी कोई विशेष रुचि न थी। मध्ययुग हिंदी का सुवर्ण युग था और रत्नाकर जी उसी में रमे हुए थे। उनकी भाषा और उनके वर्ण्य विषय सब तत्कालीन ही हुए। उनके आचार-व्यवहार तक में उसी समय की मुद्रा थी। उस युग की कल्पना को वास्तविक बनाकर रत्नाकर जी उसमें पूरे प्रसन्न भाव से रहते थे। अँगरेजी में ऐसे लेखकों और कवियों को 'क्लैसिक' कहने की चाल है जो स्वभावतः अपने भावों, पात्रों और भाषा आदि को

प्राचीन यूनान तथा रोम की साहित्य-शैली में ढालते हैं और वहीं से अपनी साहित्यिक स्फूर्ति प्राप्त करते हैं। ऐसे कवि प्राचीन वातावरण पसंद करते, पुरानी ग्रीक, लैटिन अथवा अँगरेजी के काव्य ग्रंथों का अध्ययन करते और उन्हीं की शैली को अपनाते हैं। पौराणिक और धार्मिक ग्रंथों के पात्रों का ही चित्रण करने की इनकी प्रवृत्ति होती है और ये भाषा को ही नहीं, उपमा, रूपक आदि साहित्यलंकारों को भी प्राचीन परिपाटी के अनुसार ही रखते हैं। रत्नाकर जी भी सच्चे अर्थ में हिंदी की 'क्लैसिक' कविता के अनुयायी और अंतिम क्लैसिक कवि थे। उनके अवसान से यह क्षेत्र सूना हो गया।

परंपरा के रूप में प्रचलित हो जाने पर इस क्लैसिक वर्ग के लेखकों के विरुद्ध नवीन साहित्यिक उन्मेष की आवश्यकता समझी जाती है और नवीनतावादी लेखक क्रांति करते हैं। भावों में अस्वाभाविकता और अनुभूति का अभाव, भाषा में व्यर्थ का भार और रूढ़िगत चरित्र-चित्रण आदि के दोष लगाकर ये नवीन क्रांतिकारी पुराना तख्त उलट देने का आंदोलन करते हैं। परंतु इससे उस शैली का अंत नहीं होता; उलटे वह नवीन आकर्षण उत्पन्न करता है और नये समालोचक प्राचीनों के पक्ष में जोरदार प्रचार करने को तैयार हो जाते हैं। हिंदी में अभी व्रजभाषा की विरोधी शक्ति उत्थान पर है। परंतु आशा है, कुछ समय में हिंदी साहित्य-सागर का भी यह उद्वेलन स्थिरता प्राप्त करेगा और व्रजभाषा-नौका के यात्री सकुशल पार लग सकेंगे।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट होता है कि एक विशेष पथ पर परिश्रमपूर्वक चलते चलते रत्नाकर जी साहित्य में अपनी एक अलग लीक बना गए हैं। इस विचार से वे हिंदी के एक

ऐतिहासिक पुरुष ठहरते हैं। यह सम्मान युग के बहुत थोड़े व्यक्तियों को प्राप्त हो सकता है। हमें ऐसे ऐतिहासिक कवि के पुराने, अंतरंग तथा अभिन्न-हृदय मित्र होने का सौभाग्य प्राप्त है। अपनी गुप्त से गुप्त बातें तथा विचार भी वे हमसे स्वच्छ हृदय से कह देते थे और साहित्यिक विषयों में तो हमें सदा अपने साथ रखने का संकल्प रखते थे। ऐसे एक मित्र की प्रथम वार्षिक जयंती पर उनके काव्यों का संग्रह प्रस्तुत करने में जो कुछ हमसे बन पड़ा है, उसके द्वारा हम अपना मित्र-ऋण अंशतः चुकाना चाहते हैं और यह श्रद्धांजलि उनकी स्वर्गीय आत्मा को अर्पित करते हैं।

काशी
१ जून १९३३

श्यामसुंदरदास

—०※०—

जीवनी

बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का जन्म संवत् १९२३ भाद्रपद शुक्ला पंचमी को काशी में हुआ था। ये दिल्लीवाल अग्रवाल वैश्य थे और इनके पूर्वज पानीपत (पंजाब) के मूल निवासी थे। वहाँ इनके पूर्वज मुगल दरबार में प्रतिष्ठित पदों पर काम करते थे। पानीपत छोड़कर इनके पूर्व पुरुष लखनऊ पहुँचे थे, जहाँ इनके परदादा सेठ तुलाराम अतुल संपत्तिशाली और राजमान्य हुए। लाला तुलाराम जहाँदारशाह के दरबार में रहते थे और लखनऊ के बहुत बड़े रईस समझे जाते थे। एक बार लखनऊ के एक नवाब साहब ने तुलाराम जी से तीन करोड़ रुपए उधार माँगे थे। इस आज्ञा का पालन करने और रुपया जुटाने में इनकी संपत्ति का बड़ा अंश चला गया। फिर भी अमीर स्वभाव न गया और उनके वंशजों तक बना चला आया। बाबू जगन्नाथदास में भी उसकी मात्रा कम न थी। सेठ तुलाराम जहाँदारशाह के साथ एक बार काशी आए थे और यहीं रहने लगे थे।

बाबू जगन्नाथदास के पिता बा० पुरुषोतमदास फारसी भाषा के अच्छे विद्वान् थे और हिंदी काव्य से भी पूरा अनुराग रखते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र के वे समकालीन थे और उनसे इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। अपने विनोदप्रिय स्वभाव के कारण हरिश्चंद्र इनके यहाँ भिन्न भिन्न वेश बनाकर आते थे। एक बार वे भिक्षुक का छद्मवेश बनाकर सवेरे ही बाबू पुरुषोत्तमदास के घर पहुँचे और बाहर से एक पैसे का सवाल किया। पहले तो उन्हें पैसा मिल रहा था। पर जब पहचान लिए गए, तब बड़ी हँसी हुई।

जगन्नाथदास जी ने भी कुछ दिन भारतेंदु का सत्संग किया था और वे इन्हें स्नेह की दृष्टि से देखते और प्रोत्साहन देते थे। कविता की ओर इनकी रुचि देखकर उन्होंने कहा था कि आगे चलकर यह बालक हिंदी की शोभा बढ़ावेगा। उनकी यह भविष्य वाणी सत्य हुई। हिंदी कविता में जगन्नाथदास ने अपना नाम 'रत्नाकर" रखा, जो अनेक छंद-रत्नों की रचना के कारण सार्थक हो गया।

रत्नाकर जी के पिता के घर में फ़ारसी और हिंदी के कवियों की भीड़ लगी रहती थी जिसका शुभ-प्रभाव इन पर पड़ना स्वाभाविक ही था। इन्होंने भी फारसी और हिंदी काव्य का अभ्यास आरंभ किया। अँगरेजी में बी० ए० पास करने के समय तक इन्होंने फारसी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी और फारसी में ही एम० ए० की परीक्षा देना चाहते थे। परंतु कतिपय कारणों से इन्हें परीक्षा देने का अवसर न मिल सका। इस समय तक ये अपना तखल्लुस "जकी" रखकर फारसी की थोड़ी बहुत शायरी करने लगे थे। इस विषय के इनके उस्ताद मिरजा मुहम्मद हसन फायज थे जिनके प्रति इनकी अगाध श्रद्धा थी, जो फारसी कविता लिखना छोड़ देने के बाद भी वैसी ही बनी रही। इस युग में वैसी श्रद्धा कम दिखाई पड़ती है।

हिंदी की कविता इन्होंने कुछ काल बाद आरंभ की, परंतु उसका तार बीच बीच में टूट जाता था। इन्होंने रियासत आवागढ़ में नौकरी कर ली थी जहाँ ये खजाने के निरीक्षक के पद पर काम करते थे। पर जलवायु अनुकूल न होने के कारण दो ही वर्ष बाद नौकरी छोड़ दी और काशी चले आए। इन दिनों वर्षों तक कविता का सिलसिला चला। इनके रसिक स्वभाव ने कविता के लिये ब्रजभाषा को ही अपनाया था।

उस समय खड़ी बोली का आंदोलन इतना प्रबल नहीं था। ब्रजभाषा का ही बोलबाला था। ब्रजभाषा के कई अच्छे कवि काशी में रहते थे जिनसे रत्नाकर जी ने शिक्षा-प्राप्ति का लाभ उठाया। भारतेंदु के कवि-सम्मेलनों में ये बाल्यकाल से ही जाने लगे थे, जिसके कारण यह संस्कार दृढ़ हो गया और वे कवि सम्मेलनों का आयोजन करने और उनमें सम्मिलित होने में बड़ा उत्साह दिखाते थे। परंतु वे चुने हुए कविता-रसिकों के छोटे छोटे सम्मेलनों के पक्षपाती थे। भीड़-भड़क्के से बहुत घबराते थे।

सन् १९०२ में ये स्वर्गीय अयोध्यानरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए। तब से स्वर्गीय महाराज के जीवन पर्यंत उसी पद पर रहे। चार पाँच वर्ष इस प्रकार बीते। सन् १९०६ में जब महाराज का देहांत हो गया, तब इनकी कार्यकुशलता और योग्यता से संतुष्ट होकर अयोध्या की महारानी साहिबा ने इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया। अब इन्हें साहित्यसेवा करने का वह अवसर ही न मिलने लगा जो अब तक मिलता आया था। राज्य के कार्य का भार सँभालने में ही इनका सब समय बीतने लगा। फलतः कवि-दरबार करने के बदले अब ये कचहरियों का दरबार देखने लगे। सन् १९०६ से १९२१ तक इनकी कविता परिस्थिति-वश छूटी रही। इससे अवश्य हिंदी संसार की हानि हुई।

सन् १९२१-२२ में जब रत्नाकर जी को साहित्य को फिर से एक नजर देखने और उस ओर आकर्षित होने का अवसर मिला तब खड़ी बोली की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी। परंतु रत्नाकर जी को उसमें वह मिठास, वह रचना-चातुरी और वह कला न मिलती थी जो ब्रजभाषा में पाई जाती थी। उनकी दृष्टि में कविता, तालतुकहीन अंगभंग और क्षीणछवि हो गई थी। अतः

उन्होंने उसी पुरानी श्रुतिमधुर ध्वनि का ध्यान करके दोधारा कलम उठाई। इनके हाथ से मँजकर ब्रजभाषा निखरने लगी। उसके ऊपर की अशुद्ध काई छूट चली। कवित्तों और अन्य छंदों के संघटन-क्रम पर विशेष ध्यान देकर रत्नाकर जी ने अपनी कविता कारीगरी को पहले से द्विगुणित शक्ति से बढ़ाया। ये ब्रजभाषा की नैसर्गिक माधुरी का आस्वाद लेकर उसी की मनोरम परिस्थितियों में निवास करने लगे। इन्होंने अपना जीवनक्रम भी उसी के अनुकूल रखा। मध्यकालीन ठाटबाट, वेशभूषा और रुचि बना ली। दिखावट बनावट और प्रसिद्धि की इन्हें कुछ भी चाह नहीं था। इस युग की गति उन्हें नहीं व्यापी थी। उन्हें देखकर शायद ही कोई कह सकता कि उन्होंने बी० ए० तक अँगरेजी पढ़ी है।

इनका स्वभाव विनोदप्रिय, सरल, उदार और सज्जनोचित था। मित्रमंडली में ये अपने इस स्वभाव के कारण बहुत प्रिय थे। काशी में तो ये रहते ही थे। प्रयाग, लखनऊ आदि में भी इनके दौरे अक्सर हुआ करते थे। ऐसे अवसरों पर दल के दल साहित्य सेवी, जिनमें अँगरेजी पढ़े-लिखे नवयुवकों से लेकर पुरानी चाल के कविगण और शायर भी होते थे, इन्हें घेरे रहते थे। प्रयाग में रसिक मंडल नामक ब्रजभाषा-कवि-समाज की स्थापना में इनकी ही विशेष प्रेरणा रही। वहाँ ये बहुधा जाया आया करते थे और ब्रजभाषा-कवियों को प्रोत्साहित किया करते थे। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के भी ये मान्य सदस्य थे और इनकी दी हुई निधि से रत्नाकर पुरस्कार की भी व्यवस्था सभा द्वारा की गई। सभा को आर्थिक सहायता देने के अतिरिक्त उन्होंने अपना पुस्तक-संग्रहालय भी सभा को प्रदान किया है। अपनी नौकरी से छुट्टी लेकर वे अंतिम दिनों में सूरसागर के शुद्ध संस्करण के प्रकाशनार्थ अथक परिश्रम और धन व्यय कर

रहे थे। दुःख है कि वह कार्य उनके जीवन-काल में पूरा न हो सका, केवल तीन-चौथाई होकर रह गया। उनके आदेशानुसार नागरीप्रचारिणी सभा उस अधूरे कार्य की पूर्ति करके उसके प्रकाशन की व्यवस्था कर रही है। उसके ८ अंक वह प्रकाशित भी कर चुकी है। 'बिहारी रत्नाकर' नामक रत्नाकर जी द्वारा की गई बिहारी की प्रामाणिक टीका अपने विषय की श्रेष्ठ और सुसंपादित पुस्तक मानी जाती है। यद्यपि रत्नाकर जी व्रजभाषा के ही अनन्य भक्त थे, किंतु खड़ी बोली में भी इन्होंने दो कवित्त लिखे थे। ये कवित्त अब तक प्रकाशित नहीं हुए थे। जन्म भर व्रज की माधुरी में निमग्न रहनेवाले इस कवि ने खड़ी बोली में जो दो कविताएँ लिखीं, वह अपने अनोखे आकर्षण के कारण उद्धृत करने योग्य हैं। यथा—

(१)

आशा व्योममंडल अखंड तम-मंडित में
उषा के शुभागम का आगम जनाता है।
उच्च अभिलाषा कंजकलिका अधोमुख को
प्रान फूँक फूँक मुकलित दरसाता है॥
भारत प्रताप-भानु उच्च-उदयाचल से
कुहरा कुबुद्धि का चिरस्थित हटाता है।
भावी भव्य सुभग सुखद सुमनावली का
गंधी गंधवाहक सुगंध लिए आता है॥

(२)

नीरव दिगंगना उमंग रंग प्रांगण में
जिसके प्रसंग का अभंग गीत गाती हैं।
अतुल अपार अंधकार विश्व व्यापक में
जिसकी सुज्योति की छटाएँ छहराती हैं॥

जिसके असंद मुखचंद के विलोके विना
पारावार तरल तरंगें उफनाती हैं।
पाने को उसी की बाँकी झाँकी मन-मंदिर में
मंद मुसुकाती गिरा गुप्त चली आती है॥

शब्द-योजना के इस अद्भुत आचार्य और करामाती कारीगर को ता० २१ जून १६३२ को हरिद्वार में गंगालाभ हुआ था।

—⁂—

विषय-सूची

हिंडोला

मंगलाचरण

जाको एक बूँद कौं विरंचि विबुधेस, सेस,
सारद, महेस ह्वै पपीहा तरसत हैं।
कहै रतनाकर रुचिर रुचि ही मैं
जाकी मुनि-मन-मोर मंजु मोद सरसत हैं॥

लहलही होति उर आनँद - लवंगलता
जासौं दुख - दुसह - जवासे झरसत हैं।
कामिनि-सुदामिनी-समेत घनस्याम सोई
सुरस - समूह ब्रज - बीच बरसत हैं॥

चित - चातक जाकौं लहत, होत सपूरन - काम।
कृपा - बारि बरसत बिमल, जै जै श्रीघनस्याम॥

परम रम्य आराम सुखद बृंदाबन नितहीं,
पर पावस-सुषमा असीम जानत कछु चितहीं।
जापर ललकि लुभाइ भाइ भरि आनँदकारी,
विहरत स्यामा-संग स्याम गोलोक-बिहारी ॥१॥

हरित भूमि चहुँ कोद मोद-मंडित अति सोहै,
नर की कहा चलाइ देखि सुर-मुनि-मन मोहै।
मानहु पन्ननि सिला संचि बिरची बिरंचि बर,
जेहिं प्रभाव नहिं करत नैंकु बाधा भव-विषधर ॥२॥

इत-उत ललित लखाति चटकरँग वीरवधूटी,
मनहु अमल अनुराग-राग की उपजीं बूटी।
दूवनि पै झलमलत विमल जलविंदु सुहाए,
मनु वन पै घन वारि मंजु मुकुता बगराए ॥ ३ ॥

तरुवर तहाँ अनेक एक सौं एक सुहाए,
नाना-विधि फल फूल फलित प्रफुलित मन-भाए।
कहूँ पाँति बहु भाँति अमित आकृति करि ठाढ़े,
कहूँ झुंड के झुंड झुकैं झूमैं गथि गाढ़े ॥ ४ ॥

चंपा - गुंज - लवंग - मालती - लता सुहाईं,
कुसुम-कलित अति ललित तमालनि सौं लपटाईं।
साजे हरित दुकूल फूल छाजे वनिता बहु,
निज-निज नाहँ अंक निसंक रहीं भरि मानहु ॥५॥

मंजुल सघन निकुंज कहूँ सोभा सरसानी,
गुंजत मत्त मलिंद-पुंज जिनपै सुखदानी।
चढ़्यौ अटा छवि छटा हेरि हिय हरप बढ़ावत,
मनु रस-राज समाज साजि कै गुन-गन गावत ॥ ६ ॥

जहँ तहँ सरवर, झील, ताल, सोहत जल-पूरित,
सलिल सिमिटि कहुँ लघु सरिता धावति धरधूरित।
अति मलीन दुति-हीन विरह-आधीन छीन-तन,
मानहु खोजत फिरत जीवनाधार तिया-गन ॥ ७ ॥

एक ओर गिरिराज लसत गिरि-गौरव-कारी,
परम गूढ़ सुविलास रास-रस कौ अधिकारी।
लहलहात ह्वै हरित - गौर - स्यामल - रंग-राँचौ,
पुलकित-तन रस-सराबोर अविचल-व्रत साँचौ ॥ ८ ॥

भंजन भव-भ्रम-काच कुलिस-आगार मनोहर,
गंजन हिय-तम-तोम तरनि-उदयाचल सुंदर।
प्रेम-पयोधि-रतन-दायक मंदर कन जाके,
कंचन-करन, हरन-कलमस पारस मनसा के ॥९॥

जित तित नाचत मोर पपीहा कल धुनि गावत,
सजत सरंगी भृङ्ग मेघ मिरदंग बजावत।
कूदत करत कलोल दरत दादुर करतारैं,
तेहिं सुभ सुखद समाज झाँझ झिल्ली झनकारैं ॥१०॥

पवन-प्रसंग उमंगि देत तरु-पल्लव तालो,
चटकावति चहुँ ओर चपल चुटकी चटकाली।
मनहुँ तिहूँ पुर की सुषमा वृंदावन आई,
वनदेवी सुख-साज साजि वरतति पहुनाई ॥११॥

पाइ प्रसून-प्रसंग पौन परिमल बगरावत,
दाता-ढिग सौं आइ गुनी ज्यौं जस फैलावत।
कबहुँ मंद जल-बिंदु परत कहुँ सुख-सरसाए,
आनँद-अश्रु सहस्र-नैन मनु स्रवत सुहाए ॥ १२ ॥

चहुँ दिसि तैं घन घोरि घेरि नभ-मंडल छाए,
घूमत, झूमत, झुकत औनि अतिसय नियराए।
दामिनि दमकि दिखाति, दुरति पुनि दौरति लहरैं,
छूटि छबीली छटा-छोर छिन छिन छिति छहरैं ॥१३॥

मानहु संचि सिंगार हास के तार सुहाए,
धूप-छाँह के बीनि बितान अतन तनवाए।
पाइ प्रसंग प्रमोद-पौन कौ सो हलि हलकैं,
पल पल औरै प्रभा-पुंज अद्भुत-गति झलकैं ॥ १४ ॥

कहुँ तिनकैं बिच लसति सुभग बग-पाँति सुहाई,
मुकता-लर की मनौ सेत झालर लटकाई।
कहूँ साँझ की किरनि करति कछु कछु अरुनाई,
मनु सिंगार की रासि राग-रुचि की रुचिराई ॥ १५ ॥

ठाम एक अभिराम मंडलाकृति तहँ भ्राजै,
जाको थानक बिसद बिसेस विचित्र बिराजै।
मेदिनि-मंडल मंजु-मुद्रिका-मनि मन मानौ,
जिहि अंकित चित होत प्रेम-पथ कौ परवानौ ॥१६॥

सम उँचान के बिटप बलित बल्ली चहुँ ओरनि,
हरित-बनात-कनात कलित मानहुँ कल कोरनि।
तिनपै रंग-बिरंग सुमन, पल्लव, पंछी-गन,
सो मानौ बहु चित्र बिचित्र रचे मन भावन ॥ १७ ॥

पत्र-बीच ह्वै झलकति कहूँ कलिंद-नंदिनी,
कोटि-कोटि-कलि कलुप-करार-निगर-निकंदिनी ।
रस सिंगार की सरस सरित त्रय-ताप नसावनि,
क्रूर-कुपथ-गामिनि की पातक-पंक-बहावनि ॥ १८ ॥

असित-ओप असि दुख-दरिद्र-दल-गंजन-हारी,
हरि-जन-पांडव-काज लाज-द्रौपदि की सारी।
स्याम रंग सौं लिखी प्रेम-पद्धति की पंगति,
जाकी टीका सव पुरान-इतिहासनि रंगति ॥ १९ ॥

अखिल-लोक-नायक-प्रमोद-दायक-पटरानी,
प्रिय प्रीतम कैं रुचिर रंग राँची सुख-सानी।
व्रज-रहस्य के परम तत्त्व की जो कछु पूँजी,
इक याही की कृपा-कोर ताकी कल कूँजी ॥ २० ॥

सुमन हिँडोरा लसत एक तेहिं मंडल माहीं,
जाकौं वानक विसद विलोकि सुमन सकुचाहीं।
सुख-सागर-तरंग-दीच्छा-गुरु राजत मानौ,
तरुनि तियनि की चल चितौनि कौ सार वखानौ॥२१॥

कैधौं लाज मदन कैं मध्य पर्‌यौ मध्या जिय,
कै अभिसार-समै कलकामिनि कौ धरकत हिय।
किधौं राग कुल कानि वीच अनुरागिनि कौ चित,
सकै न ठिकु ठहराइ जात आवत नित उत इत ॥२२॥

चुनि चुनि वेला कलिनि आलिनि लर गूँथि वनाईं,
रचि रचि रेखैं रुचिर दुहूँ खंभनि लपटाईं।
कहूँ फूल, कहुँ वेल, कहूँ वूटे, कहुँ तरवर,
विच विच तिनकैं कीर, मोर, मृग औ सुरभीवर॥२३॥

वाँधि सुमन वहुरंग उमंग-समेत वनाए,
जहँ जहँ जो जो उचित रंग सोई सो लाए।
मनहुँ विविध वपु धरि निरखत छवि-छकित सुमन-गन,
सत-गुन-सहित लसत चहुँ दिसि अति मुदित मुनिनि मन॥२४॥

तिनपै तैसिहि सुमन सजित इक धरी मयारी,
गुच्छनि के करि कलस दुहूँ दिसि सुघर-सँवारी।
रूप-गर्व, गुन-गर्व दर्पि जनु सीस उठायौ,
पुनि सुभाव-गौरव सौं दवि अति आदर पायौ ॥२५॥

कंज-कली-आकृति, समान सब, पँच-रँग-पूरे,
लाइ सुमन बहु भाँति पाँति करि रचे कँगूरे।
लखि तीछन सोभा तिनकी यह परत जनाई,
मानहु कुसुमायुध बाननि की बाढ़ जमाई ॥ २६ ॥

लसत बीच इक मत्त मोर सिर पुच्छ पसारे,
परत पिछान न बन्यौ सुमन चुनि बहु-रँग-वारे।
कदम-कुसुम की वंदनवार बनाइ लगाई,
झूमत जाकैं बीच एक झूमर सुख-दाई ॥ २७ ॥

चारु चारि डोरी रेसम की लै लटकाईं,
जिनमैं फूलनि की बहु ललित लरैं लपटाईं।
पर्‌यो पाट सुख-कंद विमल चंदन कौ तिनमैं,
पसरति मद सुगंध दंदहर विपिन विपिन मैं ॥ २८ ॥

ताकैं चारौं ओर बने जँगला वेला के,
बने हंस तिन माहिं प्रसंसनीय सुपमा के।
स्वच्छ सुघर भव-पंक-रहित मानौं संतनि मन,
विहरत परि प्रमोद सतोगुन कैं नंदन-वन ॥ २९ ॥

कल-कोमल-धुनि-धाम घंटिकावलि सुर-साधीं,
वद-घट मेल मिलाइ लसति छोरनि मैं नाधीं।
गादी ललित लाल मखमल की नरम बिछाई,
हरित दौर चहुँ ओर कोर पीरी छवि छाई ॥ ३० ॥

मनहु अमल अनुराग-भूमि सोहति सुखदाई,
हरित आस की दूब चारु चहुँ पास लगाई।
रचि पचि माली-काम परम अभिराम बनाई,
अटल प्रीति-पुखराजि-मेड़ि मंजुल मन-भाई॥ ३१॥

मिलि सब साज समाज बँध्यौ इमि समो सुहायौ,
चतुरानन जिहिं चाहि चातुरी-गर्व गँवायौ।
हेरि हिँडोरे की सुषमा सुंदर सुघराई,
अति अद्भुत अनूप उपमा आवति अधिकाई॥३२॥

अटल विवेक ज्ञान पर दृढ़ विस्वास धर्‌यो मनु,
अर्थ, धर्म अरु काम, मोच्छ ताकैं अधीन जनु।
ब्रह्मानंद अमंद परम दुर्लभ सुभकारी,
राजत तिनकैं मध्य मंजु छाजत छवि भारी॥३३॥

झूलत स्यामा स्याम कोटि-रति-काम-प्रभाधर,
थाई रति अरु रस सिंगार जनु धारि अंग वर।
कै सुखमा सौंदर्य्य अनूप रूप रचि राजत,
मृदुल माधुरी औ लावन्य ललित कै भ्राजत॥ ३४॥

सुकृति-विभूति भाग-वैभव कीरति जसुमति के,
पुन्य-प्रभाव-प्रभा वृषभानु नंद गोपति के।
सुख-संपति औ परम प्रान-धन ब्रजवासिनि के,
सिद्धि-रासि तप-तेज-तरनि जावत जोगिनि के॥३५॥

सुभ सोभा सौभाग्य सुभग संकर-उर-पुर के,
सकल सुमृति अरु वेद-सार सरनालय सुर के।
कलप-लता चिंतामनि चारु सुकवि रसिकनि के,
जिय जानत न कहात कहा अनन्य भक्तनि के॥३६॥

पीत - नील - पाथोज - बरन मन-हरन सुहाए,
कोमल अमल अमोल गोल गातनि छवि छाए।
तरुन-अरुन-वारिज-विसाल लोचन अनियारे,
रंग रूप जोवन अनूप कैं मद-मतवारे ॥३७॥

भाय-भेद-भरपूर चारु चितवनि अति चंचल,
वरुनी सघन कोर-कज्जल-जुत लसत दृगंचल।
भृकुटी कुटिल कमान सान सौं परसतिँ काननि,
नैकुँ मटकि मुरि मूकभाव के बरसतिँ बाननि ॥३८॥

जदपि दुहुनि के नैन मैन-अभिलाष-सील-मय,
तदपि सुनहु कछु भेद गुनहु मन सूच्छम अतिसय।
उनके सफरी स्वच्छ, अच्छ पाठीन सु इनके,
उनके संध्या-कुमुद, कंज इनके पुनि दिन के ॥३९॥

उनकैं लाज सकोच लोच की कछु अधिकाई,
इनकैं हौस - हुलास- रासि की आतुरताई।
दोउनि की छवि पै दोऊ ललकत ललचौहैँ,
पै इक सौंहैं लखत एक करि नैन निचौहैँ ॥ ४० ॥

हरित घाँघरौ घेरदार उत दरियाई कौ,
सकल सुनहरौ साज सज्यौ सुठि सुघराई कौ।
हरी पामरी जरी-कोर-वारी कौ आछौ,
चुनि चिकनाइ चमेटि फेटि काछ्यौ इत काछौ ॥४१॥

कसी कुसुंभी कठिन कंचुकी उत मलमल की,
कलित कोर चहुँ ओर प्रभा-पूरित झलमल की।
लसत लाल वागौ बनाव-जुत इत अति नीकौ,
बन्यौ काम जामैं दुति-दाम कामदानी कौ ॥४२॥

सारी जर तारी भारी उत चटापटी की,
लागी जामैं गोट तमामी पटापटी की।
आँचल पल्लव, औ तुरंज सब जगमग-कारी,
पीत सेत कल किरन तरनि-मद-मर्दनहारी ॥४४॥

पंचरंग-उपट्यौ दुपटौ करेब कौ त्यौं इत,
वेल कारचोबी जामैं सोहति मोहति चित।
झलमलाति छोरनि झीनी झालर मुकेस की,
फबति फूँदननि मैं मुकतावलि मोल वेस की ॥४४॥

चारु चंद्रिका फूलनि की सोहति उत भाई,
लालन की मति जाहि निरखि बिन मोल बिकाई।
सिर चढ़ि इत इतरात मुकुट त्यौं फूलनि ही कौ,
वरवस वस करि लेनहार चित चतुर लली कौ ॥४५॥

महमहाति उत फूलनि सौं गूथित वर वेनी,
रूप-कल्पलतिका-कुसुमावलि सी सुख-देनी।
लोल सुडौल सुमन-सिरजित झूमक इत झूमत,
हुलसत विलसत गोल अमोल कपोलनि चूमत ॥४६॥

दोउनि कैं अँग फूलनि ही के लसत विभूपन,
जिनहिं विलोकि हेम-मनिमय लागत जिमि दूपन।
दोउनि की बढ़ि रही ओप इमि साहचर्ज सौं,
सदा-समीपिनि सखिहुँ लखतिं अति आहचर्ज सौं॥४७॥

चहुँ दिसि करतिं कलोल लोल-लोचनि आलीगन,
नाचतिं गावतिं विविध बजावतिं वाद मुदित-मन।
सकल रूप - जोवन - अनूप - गुन - गर्व-रसीली,
जुगल - रसासव - मत्त राग-रँग-रत्त रसीली ॥४८॥

करतिं चंद-दुति मंद अमल मुखचंद-उजारी,
मुनि-मन-माहिँ मनोज-मौज उपजावनहारी।
चंचल चपल चलाँक चुलबुली चेटकहाईँ,
चुहुल चोचले चोज चाव कैँ चाक चढ़ाईँ ॥४९॥

नख-सिख नव-सत सजे वैस नव-सत सुखदाई,
निधिनव, सत अपसरनि सुमति लखि जिनहिँ लजाई।
आपुस मैँ करि छेड़छाड़ एँड़ति इतरातीँ,
पिय प्यारी की ओर हेरि हिय हुलसि सिरातीँ ॥५०॥

कोउ पद के बहु भेदनि सौँ रौँदति हठि हिय कौँ,
करि हस्तक बहु भाँति करति कर मैँ कोउ जिय कौँ,
नैन-सैन सौँ लेति कोऊ हरि सैन नैनकौ,
सीस फिराइ फिराइ देति कोउ सीस मैन कौ ॥५१॥

लंक लचाइ अप्सरनि की लंकहिँ कोउ तोरति,
मुख मरोरि कोउ गंधर्वनि के मुखहिँ मरोरति।
उच्च कुचहिँ उचकाय कोऊ संकर-उर सालति,
ग्रीव हलाइ सँकोच-भार कोउ सुर-गर घालति ॥५२॥

जानु-भेद जाह्नवी जानुसौँ कोउ प्रगटावति,
ऊरु-भेद-रंभा कोउ ऊरुनि सौँ उपजावति।
किंकिनि, कंकन, नूपुर की धुनि धूम मचावति,
अतन पंचसायकहिँ घेरि बहु नाच नचावति ॥५३॥

गाइ मल्हार छाइ आनँद कोउ सारंग-नैनी,
कल कल्यान-मेघ-झर लावति कोकिल-बैनी।
लेति देस की ललित तान कोउ ऐरावत-गति,
दमकावति गूजरि मुद मंगल सौदामिनि-तति ॥५४॥

सुभ सुघरइ-दीपक लौ सी कोउ गोप-कुमारी,
भूपाली सौं देति कान्हरायहिं सुख भारी।
ध्रुवपद सौं इक ध्रुव-पद करति राग रागिनि कौं,
सरिगम सौं इक निधिप करति स्तुति वड़-भागिनि कौं ॥५५॥

अलबेली इक तान-जोड़ के परी ख्याल मैं,
आरोही अवरोही करति अलाप-चाल मैं।
कोउ गमकावति गमक ठमकि कोउ तमकि तराना,
कोउताननि के तनति तरल वहु ताना-वाना ॥५६॥

सुभ अवसर जिय जानि मानि मन मोद महाई,
केती मिलि स्त्रुति-धारिनि की ज्यौनार जमाई।
कोऊ पखावज-कलस लिऐ सनमान-जतावति,
परन-नीर लै जगत-पीर सौं हाथ धुवावति ॥५७॥

कोऊ तानपूरा की लै कर माहि सुराही,
मधुर सुखद सुर-सरवत मंजुल देति उमाही।
कोउ काँधे पर लिए वीन-वहँगी वर नारी,
पट-रस व्यंजन रागनि के परसति रुचिकारी ॥५८॥

लिए सरंगी की किसती कोऊ सुकुमारी,
मृदु मोदक, कतरी काटति ताननि की ढारी।
देति ताल-चटनी कोउ लै मंजीर-कटोरी,
सकल सवाद सँवारन के हित आनँद-बोरी ॥५९॥

लै मुहचंग उमंग भरी कोउ विनय सुनावति,
जैंवहु जैंवहु जैंवहु जैंवहु की धुनि लावति।
कोऊ पाकसासन-समाज पर ताल वजावति,
कोउ सुर-वनितनि कौं चट चुटकिनि माँझ उड़ावति ॥६०॥

करति चंद-दुति मंद अमल मुखचंद-उजारी,
मुनि-मन-माहिँ मनोज-मौज उपजावनहारी।
चंचल चपल चलाँक चुलबुली चेटकहाईं,
चुहल चोचले चोज चाव कैं चाक चढ़ाईं ॥४९॥

नख-सिख नव-सत सजे बैस नव-सत सुखदाई,
निधिनव, सत अपसरनि सुमति लखि जिनहिं लजाई।
आपुस मैं करि छेड़छाड़ एँड़ति इतरातीँ,
पिय प्यारी की ओर हेरि हिय हुलसि सिरातीँ ॥५०॥

कोउ पद के बहु भेदनि सौँ रौँदति हठि हिय कौँ,
करि हस्तक बहु भाँति करति कर मैं कोउ जिय कौँ,
नैन-सैन सौँ लेति कोऊ हरि सैन नैनकौ,
सीस फिराइ फिराइ देति कोउ सीस मैन कौ ॥५१॥

लंक लचाइ अप्सरनि की लंकहिं कोउ तोरति,
मुख मरोरि कोउ गंधर्बनि के मुखहिं मरोरति।
उच्च कुचहिं उचकाय कोऊ संकर-उर सालति,
ग्रीव हलाइ सँकोच-भार कोउ सुर-गर घालति ॥५२॥

जानु-भेद जाह्नवी जानुसौँ कोउ प्रगटावति,
ऊरु-भेद-रंभा कोउ ऊरुनि सौँ उपजावति।
किंकिनि, कंकन, नूपुर की धुनि धूम मचावति,
अनन पंचसायकहिं घेरि बहु नाच नचावति ॥५३॥

गाइ मल्हार छाइ आनँद कोउ सारंग-नैनी,
कल कल्यान-मेघ-झर लावति कोकिल-बैनी।
लेति देस की ललित तान कोउ ऐरावत-गति,
दमकावति गूजरि मुद मंगल सौदामिनि-द्युति ॥५४॥

सुभ सुघरइ-दीपक लौ सी कोउ गोप-कुमारी,
भूपाली सौं देति कान्हरायहिं सुख भारी।
ध्रुवपद सौं इक ध्रुव-पद करति राग रागिनि कौं,
सरिगम सौं इक निधिप करति स्तुति बड़-भागिनि कौं ॥५५॥

अलबेली इक तान-जोड़ के परी ख्याल मैं,
आरोही अवरोही करति अलाप-चाल मैं।
कोउ गमकावति गमक ठमकि कोउ तमकि तराना,
कोउताननि के तनति तरल बहु ताना-बाना ॥५६॥

सुभ अवसर जिय जानि मानि मन मोद महाई,
केती मिलि स्रुति-धारिनि की ज्यौनार जमाई।
कोऊ पखावज-कलस लिऐ सनमान-जतावति,
परन-नीर लै जगत-पीर सौं हाथ धुवावति ॥५७॥

कोऊ तानपूरा की लै कर माहि सुराही,
मधुर सुखद सुर-सरवत मंजुल देति उमाही।
कोउ काँधे पर लिए वीन-बहँगी वर नारी,
पट-रस व्यंजन रागनि के परसति रुचिकारी ॥५८॥

लिए सरंगी की किसती कोऊ सुकुमारी,
मृदु मोदक, कतरी काटति ताननि की ढारी।
देति ताल-चटनी कोउ लै मंजीर-कटोरी,
सकल सवाद सँवारन के हित आनँद-बोरी ॥५९॥

लै मुहचंग उमंग भरी कोउ विनय सुनावति,
जैंवहु जैंवहु जैंवहु जैंवहु की धुनि लावति।
कोऊ पाकसासन-समाज पर ताल बजावति,
कोउ सुर-बनितनि कौं चट चुटकिनि माँझ उड़ावति ॥६०॥

दोउ दिसि द्वै द्वै धन्य जन्म जिनके सुर मानत,
सेवति रुचि अनुसार भाव भृकुटी सौं जानत।
लखति गूढ़ अति भाव सुनति आपुस की बातैं,
लहति स्रौन-दृग-लाहु लाड़िली-लाल-कृपा तैं ॥६१॥

एक ओर ललिता औ दूजी ओर बिसाखा,
प्रेम-पदारथ-देनहारि सुरतरु की साखा।
दंपति-सुख-संपति-अनूप-निधि की रखवारिनि,
कृपा-कलित मुसक्यानि मंद की नित अधिकारिनि ॥६२॥

जिनकौ कछु न कहाइ जदपि स्रुति सेस बखानैं,
चहन लहन अरु कहन आपुनी आपुहिं जानैं।
काछि कछौटा बाँधि फेंट पटुली पर ठाढ़ी,
लंक लचाइ देति मचकी दुहरी अति गाढ़ी ॥६३॥

बढ़ि झोंटा अति तरस भए लाग्यौ पट फहरन,
लग्यौ पाट द्रुम-बेलिनि के झुंडनि मैं झहरन।
पल्लव पुहुप प्रतेक पेंग मैं कछु लगि आवत,
परि परि भूमि पाँवड़े लौं परमादर पावत ॥६४॥

कबहुँ लतनि मैं लगि कोउ अंग उघारति सारी,
चौंकि चकाइ तुरत तिहिं सकुचि सम्हारति प्यारी।
लखनि लाल की ओर लाज-लसित नैननि सौं,
कछु जाननि की चाह जाति जानी सैननि सौं ॥६५॥

पै उनकौं लखि लखत ताहि दिसि मृदु मुसुकाँहैं,
कहि कछु बात बनाइ लेति करि नैन निचौंहैं।
तब कछु बोलि ठठोलि लाल यह ख्याल बनावत,
हँसि निज ओर लखाइ लाडिलिहुँ हरखि हँसावत॥६६॥

एक बेर निज ओर पैंग की होत उँचाई,
सम्हरि न सकी सयानि सरकि प्रीतम-उर आई।
लियौ लाल भरि अंक रंक संपति जनु पाई,
भौंचक सी ह्वै रही कही मुख बात न आई ॥ ६७॥

सावधान ह्वै छूटि भुजनि सौं पुनि विलगाई,
भ्रकुटी कुटिल- कमान ढिठाई जानि चढ़ाई।
करि गँभीर रचना चतुराई सौं बैननि मैं,
छमा कराई छैल छबीली सौं सैननि मैं ॥६८॥

पुनि मन मैं कछु गुनि गोपाल मंद मुसुकाने,
निरखि नवेली-ओर कटाच्छनि सौं ललचाने।
अति अद्भुत उत्तर ताकौ तब दियौ रसीली,
ओठ हलाइ ग्रीव मटकाइ रही गरबीली ॥ ६९ ॥

अधर दबाइ हलाइ ग्रीव मुसक्याइ मंद अति,
भलौ भलौ कहि कान्ह ठानि मन अचगरि की मति।
मिस करि जानि बूझि बरबसहिं सरकि इत आए,
चकपकाइ चट प्यारी सौं गाढ़ैं लपटाए ॥ ७० ॥

औचक अमल कपोल चूमि चट पुनि विलगाने,
ललितादिक-दिसि देखि दबाइ दृगनि इठलाने।
लाड़नि लोचन किए लाड़िली कछु अनखौंहैं,
पै लखि लाल अधीर धीर धरि किए हँसौंहैं ॥ ७१ ॥

उठी उमंग तरंग बैठि नहिं सके कन्हाई,
अति निहोरि कर जोरि किसोरिहुँ नीठि उठाई।
बहु विधि विनय सुनाइ खाइ हाहा बरियाईं,
ललिता और बिसाखा इक इक ओर बिठाईं ॥७२॥

मनमानी ह्वै चुकी मानि मन-बात हमारी,
स्रम मेटहु अब नैंकु पौढ़ि दोऊ पिय-प्यारी।
मंद मंद सानंद पाट हम पकरि झुलावैं,
दोउनि सुख सरसात निरखि नैननि सिय रावैं ॥८५॥

सुनि हितूनि के मृदुल बैन बोरित हित रस मैं,
नीठि नीठि रोकी मचकी जनु परि परवस मैं।
परसि परसि पग पुहुमि पैंग ललिता ठहराई,
दूरि करति ज्यौं भक्ति चारु चित-चंचलताई ॥८६॥

सुमुखि सुलोचनि भरीं-भाय चहुँ दिसि तैं धाईं,
मानहुँ मन-थिर होत सकल सिधि निधि जुरि आईं।
सादर पुलकि पसीजि रीझि सो सुमन उठाए,
उझकन झूलन मदन-बान लौं जो महि आए ॥८७॥

नैननि लाइ चढ़ाइ सीस कोउ अति सुख पावति,
चूमि कोऊ रस घूमि भूमि सुधि बुधि बिसरावति।
रहीं सूँघि औ ऊँघि एक द्वै सुमन मिलाए,
तीन लोक फल चारि वर्ग सौं मनहिं हटाए ॥८८॥

राई लोन उतारि कोऊ कछु अधर हलावति,
कोउ कनपटियनि चाँपि चारु अँगुरिनि चटकावति।
लालन-कर निज करनि बीच करि कोउ सहरावति,
कोउ प्यारी के पकरि पानि निज अंगनि लावति ॥८९॥

उतरि परीं दोऊ तुरंत अंतर-हित भीनी।
सिमिटनि सूँनि सँवारि सेज सज्जित पुनि कीनी।
आनि उमाह सौं पकरि बाँह दोउनि बैठार्यौ,
लै कोमल पट परसि बदन स्रम-सलिल निवार्यौ ॥९०॥

सुधा-स्वाद-सुख, वाद-करन-हारे रस-भीने,
सुचिता सहित सँवारि धारि दोननि फल दीने।
चुनि चुनि रुचि अनुसार दुहूँ दोऊनि खवाए,
महा मोद मन मानि पानि-आनन - फल पाए ॥६१॥

सीतल स्वच्छ सुगंध सलिल लै कंचन झारी,
दोउनि कौं अँचवाइ चाइ भरि चहत सुखारी।
विसद विलहरी खोलि उसीर-रचित पनसीरी,
हरनि-हरास वरास-वसित दीनी मुख वीरी ॥६२॥

सजि सनेह सौं थार आरती उमँगि उतारी,
मनु पतंग वनि दीए-देह-दुति पै वलिहारी।
चहुँ दिसि तैं उमगाइ धाइ आरति सब लीनी,
पाइ प्रसाद प्रसन्न नाद सौं जै-धुनि कीनी ॥६३॥

मृदु उसीस दै सीस ढुरे सुख सौं दोउ दंपति,
मृदुता-सीस-उसीस सुखद सुख के सुख संपति।
इक लजात सकुचात गात पट-ओट दुराए,
इक ललचत मुसक्यात ओठ औ अधर दवाए ॥९४॥

सहज सहज लागीं दोऊ गहि पाट झुलावन,
ब्रह्मादिक के भूरि भाग कौ मान मिटावन।
परम प्रवीन प्रभाव प्रकृति पहिचाननहारी,
झोंका लगन न देतिं देतिं गति अति रुचि-कारी ॥६५॥

आगहिं तैं गहि पाट उमहि अपनी दिसि ल्यावतिं,
पुनि कछु वढ़ि अति सरल भाव सौं झुकि लौटावतिं।
ज्यौं अतिथिहिं सादर उदार आगैं ह्वै ल्यावत,
विदा करन की वेर फेर मग लौं पहुँचावत ॥९६॥

लागैं सुखद समीर अंग आरस-रस भोए,
पलकैं लईं लगाइ दोऊ आनंद समोए।
सोवत जानि सुजान सखी गहि मौन थिरानीं,
इक इक करि टरि सकल जाइ कुंजनि विरमानीं ॥९७॥
आहट विगत विचार चारि दिसि प्रीतम प्यारे,
हाँस भरे दृग सहज सहज स-हुलास उघारे।
मानहुँ साँचहिं लगी नींद कहि हँसि सुखदाई,
गुदगुदाइ गोरिहुँ दृग की अलसानि छुड़ाई ॥९८॥
आपुहुँ उतरि निकुंज चले दुहुँ दुहुँ सुखकारी,
जय जय जुगल किसोर जयनि ब्रज-विपिन-विहारी।
जय दोउ इक-मन एक-प्रान एकहि-रस-मय जय,
आकारहि करि पृथक स्याम स्यामा जय जय जय ॥९९॥
सावन सुकल पुनीत परम तिथि पूरनमासी,
रतनाकर-उर मैं तरंग उमड़ी सुखरासी।
मन[1] इंद्रिय[1] अरु भक्ति[1] सहित गोपालहि[1] * लायौ,
तिहिं तरंग मैं रचि झूलन अति रुचिर झुलायौ ॥१००॥

---

*संवत १९५१

समालोचनादर्श

असद काव्य औ संमति मैं, यह कठिन न्याव अति,
बुद्धि-रंकता अधिक प्रकासत कौन, धीरमति,
पै दोउ दोषनि मैं वरवस अकुतैवौ चित कौं,
न्यून हानिकारक सुविवेकहिं वहकावन सौं ॥

चूकत वामैं कछू एक यामैं अनेक हैं,
दूषित दूषन देत दौरि दस लिखत एक हैं ॥
क्रूर कोऊ इक वेर जगत मैं निजहिं हँसावैं,
पै कुपद्य कौं एक गद्य मैं किते वनावैं ॥

नर विवेचना, घड़िनि समान, मिलति द्वै नाहीं,
पै अपनी अपनी कौं सव पतियात सदाहीं ॥
कविनि माहिं सदकाव्य-सक्ति विरलय ज्यौं आई,
त्यौं विवेचकनि-भाग रसास्वादन-लघुताई ॥

दैव दिएँ बिनु सुभग सक्ति दोऊ नहिं पावत,
लिखन-हेत कै तर्क-हेत जे इहि जग आवत ॥
ते सिखवन के जोग्य आप जे होहिं कुसलतर,
ते दूषहिं तौ फवै आप जिनि कियौ काव्य वर ॥

निज रचना कौं पच्छ साँच यह कर्तन माहीं,
पै निज मत कौ कहा विवेचक कौं हठ नाहीं ?
पै करि गूढ़ विचार चारु मति मत यह भाषत,
वहुधा मनुप विवेक-वीज निज हिय मैं राखत ॥

कम सौं कम इक अल्प प्रकास प्रकृति दिखरावति,
रेखा जदपि अपष्ट तदपि, सुध खंचित भावति।
पै उद्धस ढाँचौ उत्तम औ सुभग चित्र कौ,
जदपि यथारथ विरचित लसत, ललित चरित्र कौ,

भरैं रंग वेढंग भदेस तदपि ज्यौं भासै,
त्यौं निकाम विद्या सुबुद्धि कौं विसिप विनासै।
विद्यालय-जालनि मैं केतिक हैं बौराने,
बने भँडेहर किते, प्रकृति-कृत कूर अयाने॥

चमत्कार को खोज माहि निज बुद्धि नसावै,
तब अपने बचाव कौं बनत विवेचक धावैं।
ढहौ जात प्रत्येक, सकै कछु लिखि कै नाहीं,
प्रतिद्वंद्विनि बलोर्बनि के से द्वेपानल माहीं॥

रहत सदा बुधि बिगत बिरावन का अकुलाने,
हँसनहार दल माहि मिलन अति आनँद-साने॥
हाँ कुकवि कोउ कछु बचाइ जो सारद-द्वेसी,
ना काव्यहु नैं तौ केतिनि की जाँच भदेसी॥

केते कोविद बने प्रथम, पुनि कवि मनमाने,
बहुरि विवेचक भए, अंत घोंघा ठहराने॥
किते न कोविद न विवेचक पद के अधिकारी,
जैसे खर न तुरंग होहिं कहुँ खच्चर भारी॥

ये अधबढ़े बुधंगन जग मैं भरे घनेरे,
अर्ध बने ज्यौं कीट नील सरिता के नेरे,
ये अनबने पदार्थ कौन संज्ञा-अधिकारी,
सकत न जानि पौंग इनकी ऐसी भ्रमकारी.

यदन होहिं सत तो इनको गनना करि आवै,
कै इक मिथ्या बुध को, जा सो सहज थकावै ॥
पै तुम जो सद-सुयस-देन-पावन-अधिकारी,
सुविवेचक पद परम पुनीत जथारथधारी ॥

होहु आप दृढ़, पहुँच आपनी कौं परमानो,
कहँ लगि निज बुधि, रस-अनुभव, विद्यागम जानौ,
अपनी थाह विहाइ बढ़ौ मत, गुनि पग धारौ,
अर्थ-सिथिलता मिलन-ठाम धरि धीर विचारौ ॥

सकल वस्तु कौं प्रकृति जथारथ सीमा दीन्ही,
अभिमानिनि की मति विदलित, विवेक करि, कीन्ही।
ज्यौं जब एक ओर महि कौं वढ़ि वारिधि बोरत,
आन दिसानि महान थान बलुवे बहु छोरत,

त्यौं जब हिय मैं रहति धारना की अधिकाई,
प्रौढ़ समुझ की सक्ति रहति बलहीन लजाई,
जहाँ कल्पना-ज्योति जगति अति जगमगकारी,
बहति धारना की कोमल आकृति वनि वारी ॥

एक बुद्धि के जोग सास्त्र एकहि सुखदाई,
विद्या इती अपार, इती नरमति-लघुताई।
बहुधा एकहु सास्त्र सम्हारति इक मति नाहीं,
ताहू मैं अरुझाति एकही साखा माहीं।

पूर्व-प्राप्त हम विजय नृपति-गन सरिस गँवावैं,
ज्यौं ज्यौं तृष्ना विवस अधिक लहिवे कौं धावैं,
जामैं जाकौ गम्य ध्यान राखै ताही कौ,
तौ करि निज अधिकार-प्रबंध सकै सब नीकौ ॥

प्रकृति-प्रभाव निहारि प्रथम निज सुमति सुधारौ,
ताके जाँच-जंत्र सौं, जो नित इक-रस-धारौ।
प्रकृति अचूक सदा सुंदर दैवी द्युतिवारी,
विमल, विगत-परिवर्त्तन, औ सब जग-उजियारी,

सब कछु कौं दाइनि जीवन बल औ सोभा की,
कारन औ उद्देस्य, कसौटी सकल कला की।
तिहिं भंडार सौं कला, कुसलता उचित प्राप्त करि,
बिन दिखाव निज काज करति, प्रभुता अतंक दरि,

ज्यौं सुप्रानप्रद आत्मा कोउ सुंदर तन माहीं,
जीवन दै पोषनि, सु ओजसौं भरति सदाहीं,
प्रतिगति सोधनि, अपर सकल स्नायुहिं पोषति नित,
आप अदिष्ट सदा, पै कारज माहिं रहति थित ॥

जिमि चातुरी जिन्हैं दैव दीन्ही बिसेस चित,
चहहिं तेतियै और, सुभग ताके प्रयोग हित ;
बहुधा तर्कज्ञ वाक्यचातुरी प्रतिअपकारी,
जदपि बने हित-हेत परस्पर ज्यौं नर नारी ॥

काव्य-तुरंग सुढंग चलावन मैं चतुराई,
ताके तानैं करन माहिं कछु नाहिं बड़ाई,
काज कठिन अति ताकी उन्मादना कौ सासन ;
ऐसौ द्रुत दौरड़ न कछु गौरव परकासन ।

यह साजौ पक्षधार, सुसील असील तुरी लौं,
प्रगटत पूरन गुन प्रभाव रोकौ तुम जौ लौं ॥
नियम पुरातन आविष्कृत, जो कृत्रिम नाहीं,
अहहिं प्रकृति, पर प्रकृति थिरी परिमित पथ माहीं,

प्रकृति होति केवल, स्वतंत्रता लौं प्रतिबंधित,
तिनहिं नियम सौं पहिले जो ताही के निर्मित ॥
गुनहु भारती निरमति कहा नियम उपकारी,
कहाँ सिथिलता उचित, गाढ़िता कहँ रसवारी।

निज संतानहिं उच्च मेरु-गिरि पै दिखराए,
अति दुर्गम ते पंथ चले तिन पै जे भाए,
पुरस्कार थाइ, ऊँचौ करि, दूरि दिखायौ,
सोई पथ सौं चलन काज औरनि उकसायौ ॥

उचित उदाहरननि मैं सद सिच्छा जो थाई,
इन संची उन सौं उन दैव कृपा सौं पाई।
सहृदय, सुवर विवेचक कवि उत्साह वढ़ायौ,
पूरित प्रमा प्रसंसा करिवौ जगहिं सिखायौ,.

समालोचना तव कविता की सखी सुहाई,
मंडनि सोभा, तथा विसेष करनि मन-भाई।
पै पछिले लेखक सो सुभ उद्देस भुलाने,
सके नायिकहिं मोहि नाहिं दासिहिं अरुझाने,

कविनि विरुद्ध प्रयोग किए तिन निज वल तीखे,
निश्चय निंदन हेत तिन्हैं जिनसौं सव सीखे ॥
त्यौं सीखे कछु आज-काल के औषधिवाले,
वैद-व्यवस्थनि पढ़ि वनि वैठन वैद निराले,

निडर प्रयोग करनि मैं नियम निपट मनमाने,
करत चिकित्सा औषधि, कहि निज गुरुहि अयाने ॥
किते पुरातन-कविनि-लेख पर दाँत लगावैं;
इनके सदृस न काल न कीट कवहुँ विनसावैं ॥

केते सूखे स्पष्ट, रहित नव उक्ति सुहाई,
सिथिल नियम निरमत कैसैं करिवौ कविताई ॥
ये, विद्या-प्रकास-हित अर्थानंद नसावैं,
वै अनर्थ करि अर्थ-तातपर्यहिं वहकावैं ॥

तातैं तुम जिनकी विवेचना रखति सुपथ रति,
चाल चलन प्राचीननि की जानौ आछी गति,
तिन गाथा अरु बर्न्य प्रयोजन प्रति पंक्तिनि के,
धर्म, देस, प्रतिभा, जो सुखद समय मैं तिनके,

आछी भाँति ध्यान राखैं विन इन सवही के।
जदपि सकौ करि तुम कुतर्क, पर न्याय न नीके।
वालमीक मुनि रचित सदा अध्यवहु सुरुचि करि,
पढ़ौ ताहि भरि द्यौस, रैन भरि गुनौ ध्यान धरि,

तासौं विसद विवेक लहहु, निज नियम ताहि सौं,
कविता विमल बारि संचौ सरिता आदहिं सौं ॥
आपुसही मैं करि मिलान तिहि काव्य बिचारौ, ॥
आदि सुकबि की वानी निज चरचा निरधारौ ॥

कालिदास जव प्रथम उदार हियैं निरधारी,
अमर भारतहुँ सौं रचना चिर जीवनिहारी,
समालोचकनि नियम गम्य सौं उच्च लखान्यौ,
सीख लेन औरनि सौं घृणित प्रकृति छुट मान्यौ ॥

पै जव प्रति खंडहिं करि सूच्छम दृष्टि विचार्‌यौ,
वालमीक अरु प्रकृति माँहि नहिं भेद निहार्‌यौ,
यह निश्चय उर माहिँ आनि अति विस्मय पायौ,
निज रचना उदंड गति के बेगहिं ठहरायौ,

औ कविता स्रमसाध्य अटल नियमनि यौं नाधी,
मनहुँ आप मुनि भरत सुद्ध प्रति पंक्ती साधी॥
यासौं सीखौ नियम पुरातन के गुन गावन,
प्रकृति-पंथ कौ है चलिवौ तिन-पथ कौ धावन॥

किती रम्यता अजौं न कोउ वचननि कहि आवैं,
तिनमैं आनंद औ विषाद दोउ मिस्रित भावैं।
काव्य-कला संगीत सरिस जानौ मन माहीं,
दोऊ मैं सौंदर्य किते जे उचरत नाहीं,

तिन्हैं सिखावन जोग सूत्र कोऊ कहुँ नाहीं,
केवल परम प्रवीननि के आवत कर माहीं॥
जहँ कहुँ कोऊ नियम होहिं न समर्थ यथारथ,
(काहे सौं कै नियम-काज साधन उदेस पथ,)

तहँ अभीष्ट जो कोउ स्वतंत्रता सुभगति साजै,
तौ स्वतंत्रता ही ता थल कौ नियम विराजै॥
जौ प्रतिभा कबहूँ लाघव सौं करि अति प्रीती,
छोड़ि नियत पथ चलै भलैं तौ नाहिं अनीती,

करि उदंड क्रमच्युति समान मर्यादहिं त्यागै,
लहै कोऊ लावन्य जो न नियमनि कर लागै,
विना जाँच ही जो हिय मैं अधिकार जमावै,
सकल इष्टफल एक वारही सहज लहावै॥

तैसहिं वन इत्यादिक सुभग दृस्य मैं भारी,
होत पदारथ ऐसे किते नैन-रुचिकारी,
जो सुप्रकृति-सामान्य-सीम सौं निकरत न्यारे,
आकृतिहीन पहार तथा अति वढ़े करारे॥

साँची कला-कुसलता, अति मनरंजनिहारी,
है, सजिबौ सब साज प्रकृति सोभा उपकारी,
भयौ पूर्वहू जो चिंतित बहुधा मन माहीं,
या सुघराई सौं पायौ प्रकास पर नाहीं,

सो कछु जाकौ साँच प्रमानित सब कोउ पावै,
चित्र हमारे हिय कौ जो हमकौं दरसावै॥
ज्यौं छाया प्रकास कौ आनँद अधिक बढ़ावै,
सहज सरलता उक्ति-चमत्कृति त्यौं चमकावै॥

कोउ रचना मैं उक्ति-अधिकताही अपकारी,
ज्यौं स्रोनित बिसेषता सौं बिनसैं तनधारी॥
अन्य किते निज सकल ध्यान भाषहिं पर राँचैं,
नर नारिनि लौं ग्रंथनि कौं बसननि सौं जाँचैं,

'लसति रीति उत्कृष्ट' सदा यौं भाषि सराहैं,
दरि अभिमान, अर्थ पर करि संतोष निबाहैं॥
सब्द लसैं पातनि लौं, जहँ तिनकी अधिकाई,
तहाँ अर्थ-फल-लाभ बिसेष न देत दिखाई॥

काँच पहलवारे लौं देति मृषा बाचाली,
प्रति ठामनि कौं निज भँड़हरी रंग प्रभाली,
परत पेखि नहिं प्रकृति जथारथ रूप रसीलौ,
सब इक रँग झलमलत भेद बिन अति भड़कीलौ,

पै सद-सब्द-प्रयोग, रहित परिवर्तन रबि लौं।
करत प्रकासित जाहि बढ़ावत तिहि सुखमा कौं;
करत परिस्कृत प्रभापुंज पूरित तिहि माहीं,
हेम कलित सब करत कछुक पै बदलत नाहीं।

सब्द, हृदयगत भावनि के पौसाक विराजैं,
जेते ठीकमठीक सुघर तेते नित भ्राजैं,
उत्प्रेच्छा कोउ तुच्छ, उक्त करि सब्दाडंबर,
यौं छवि देति गँवारि सजैं ज्यौं राज-साज-वर।
पृथक रीति अनुकूल प्रथम विषयनि सुखमा मैं,
भिन्न बसन ज्यौं ग्राम, नगर औ राजसभा मैं॥

किते पुरातन सब्द जोरि भए कीरति-कामी,
पदनि माहिं प्राचीन, अर्थ मैं नव-पथ-गामी,
ऐसी ये स्रमसाध्य अकारथ वस्तु नकारी,
ऐसी रीति विचित्र माहिं विरचित बरियारी,
मूरख के उर माहिं मृषा अजगुत उपजावैं,
पै पंडित परवीननि कौं केवल बिहँसावैं॥

दरसावत भाँड़नि लौं ये दुर्भाग भड़ंगी,
सुघर सुजन कल कौन बसन कीन्यौ हो अंगी;
औ बस यौं प्राचीननि कौं अनुहरहिं भगल भरि,
ज्यौं सतपुरुषनि कौं बानर, तिनके बागे धरि॥

सब्दऽरु बसन रीति दोउनि कौ इक गुरु मानौ,
अति नव, कै प्राचीन, एक सौ बेढब जानौ;
बनहु प्रथम जनि नव टकसाल चलावनहारे,
तथा न अंतिम तजन माहिं प्राचीन किनारे॥

पै बहुतेरे काव्य, जाँच मैं छंदहि देखैं;
सुढर, कुढर पै, सुद्ध असुद्ध ताहि नित लेखैं,
दिव्य सरस्वति माहिं सहस लावन्य जदपि हैं,
ये कन-रसिये मूढ़ सराहत स्वरहिं तदपि हैं,

जो सुर-गिरि पर चढ़त नाहिँ निज चित्त सुधारन,
वरन परम सामान्य स्रवन-सुख ही के कारन,
ज्यौँ केते हरि-कथा-मंडली मैँ आवैँ नित,
संचन सुभ उपदेस नाहिँ, वरु गान सुनन हित ॥

ये केवल चाहत मात्रा एकहि सी आवैँ,
जदपि खुले स्वर बहुधा स्रवनहिँ अति उकतावैँ,
त्यौँ अपनी बलहीन सहाय अधिक पद ल्यावैँ,
औ इक सिथिल चरन मैँ छुद्र सब्द दस पावैँ।

औ उत वे जब एकहि लय कौ चक्कर साधैँ,
औ नित बँधे अनुप्रासनि कौँ निस्चय नाधैँ
जहँ जहँ सीतल मंद पौन पच्छिम सौँ आवत,
तहँ तहँ पूरि परागपुंज परिमल बगरावत,
जौ कहुँ सरिता बिमल बहति, गति मंद, सुहाई,
तौ तहँ कंज, सिवार, मीन सोहत सुखदाई,
अंत माहिँ, दल जुगल मात्र पूरित करि, राखत,
कछुक अनर्थ वस्तु सौँ, जाहि उक्ति ये भाषत,
सोई दोहा बृथा पूर्न आहुति करि डारै,
डेढ़-टाँगवारनि लौँ भचकि भचकि पग धारै ॥

देहु तिन्हैँ अपने अनवीक्षत लय, तुक जोरन,
औ सामान्य सुढर मढ़ियल कौ ज्ञान बटोरन,
तथा सराहौ ता तुक की सु सहज प्रौढ़ाई,
जामैँ ओज पजन कौ, ठाकुर की मधुराई ॥

साँची सुभग सरलता जौ कविता मैँ भावै,
अभ्यासहि सौँ होहि न, ऐसहि औचक आवै,

जैसे वे, जिन सीख नृत्य विद्या की पाई,
चल फिर करत सहजतम भाँति, सहित सुघराई॥
एतौ ही नहिं इष्ट सदा कविता मैं, भाई,
के कर्कसता सहृदय कौं न होहि सुखदाई,
परमावस्यक धर्म, वरन, यह सुमति प्रकासैं,
के रचना के सब्द अर्थ-प्रतिध्वनि से भासैं।

चहियत कोमल बरन पवन जहँ मंद बहत वर,
सरिता सरल चाल बरनन हित छंद सरलतर,
पै भैरव तरंग जहँ रोरित तट टकरावैं,
उत्कट, उद्धत बरन, प्रबल प्रवाह लौं आवैं,
जहँ रावन लै जान चहत हठि हर-गिरि भारी,
होहि छंद-गति क्लिष्ट सब्दहू सिथिलित चारी,
पै ऐसो नहि जहँ हनुमत धावन वनि धावत,
नाँवत सिंधु निसंक. लंक गढ़ कूदि जरावत॥

देखौ किमि भवभूति-काव्य-वैचित्र लुभावै,
सब प्रकार के भावनि की तरंग उपजावै।
जब प्रति पलट माहिं दसरथसुत नई रीति सौं,
कबहुँ तेज सौं तपत, कबहुँ पुनि द्रवत प्रीति सौं,
कबहुँ नैन विकराल क्रोध की ज्वालनि जागैं,
कबहुँ उसास उठैं औ बहन आँसु दृग लागैं॥

सब देसनि मैं निज प्रभाव नित प्रकृति बगारति,
विस्व विजयतनि कौं सब्दहिं सौं जय करि डारति,
सब्द-माधुरी-सक्ति प्रबल मन मानत सब नर।
जैसौ हो भवभूति भयौ तैसौ पदमाकर॥

अति सौँ बचौ, तथा त्यागौ उनकी दूषित गति,
जो रीझैँ अत्यंत न्यून, कै सदा अधिक अति ॥
छुद्र छिद्र खोजन सौँ वृत्तिहिँ रखहु बिनाई,
प्रगटत यह गुमान गुरुता, कै मति-लघुताई,
वे मस्तिष्क, उदर ज्यौँ, निस्चय उत्तम नाहीँ,
सबहि अरोचक, पै कछु पचि न सकत, जिन माहीँ ॥
पै प्रति ओपित उक्तिहुँ दहु न मोह-उमाहन,
विस्मित मूरख होत, बिबुध कौ काज सराहन।
ज्यौँ कुहरे मैँ लखैं बस्तु गुरु देति दिखाई,
त्यौँ गौरवाभासप्रद सील सदा सिथिलाई ॥

किते बिदेसि, देस कबि सौँ केते घिन मानैं,
केवल प्राचीननि, कै आधुनिकनि भल जानैं ॥
या बिध सौँ प्रति व्यक्ति, धर्म लौँ, कवि-निपुनाई,
इक समाज मैँ गुनैं, अपर सब नष्ट सदाई ॥
चहत नीच इहिँ संपति मूँदि एक ठाँ ठासन,
बरबस एक देश पैं रवि को प्रभा-प्रकासन,
जो न बुधनि कौँ दक्खिन ही मैँ महत बनावै,
पै सीतल उत्तर देसहुँ मैँ बुद्धि पकावै,
जो गत जुगनि माहिँ आदिहि सौँ भयौ उदै है,
करत प्रकासित वर्तमान, भाविहुँ गरमैहै,
जद्यपि प्रति जुग उन्नति औ अवनति अवरेखैं,
कबहुँ दिव्य दिन लखैं, कबहुँ अति धूमिल देखैं ॥
तातैं कविता नव प्राचीन विचार न कीजै,
पै असदहिँ निंदा, औ सदहिँ सदा जस दीजै ॥

किते न अपनी निज विवेचना कबहुँ उमाहैं,
पै केवल निज नगर माहिं प्रचलित मत ग्राहैं;
ये तर्कहिं लहि लोक, तथा सिद्धांत सुधारैं,
भुसे निरर्थहिं गहैं, न सोऊ आप निकारैं॥

किते न रचना, पै रचिता के नामहिं जाँचैं,
औ लेखहिं नहिं भलौ बुरौ, वरु मनुषहिं खाँचैं,
यह सब नीच झुंड मैं सो अति अधम अभागौ,
जो सबमंड मंदता सौं धनिकनि पछलागौ,
बड़नि सभा कौ नियत विवेचक नितप्रति-वारौ,
प्रभु-हित लागि व्यर्थ वकवादहिं ढोवनहारौ,
महा दरिद्र बतावहि सो सृंगार - सवैया,
जाकौ कोउ भुक्खड़ कवि कै हम तुम रचवैया,
देहु, बेर इक, कोऊ धनिकहिं पै तिहिं अपनावन,
झलकन प्रतिभा लगति, कांतिमय रीति सुभावन,
ताके नाम पुनीत सामुहँ दोप उड़त सब,
डहडहात प्रति खंड पूरि वासना-ग्रसित फब॥

यौं वहकत गँवार अनुसरन कियैं, विन जोखे,
त्यौं पंडित बहुधा सब जग सौं होइ अनोखे॥

रखत सर्व साधारण सौं भिन यौं, जो कहुँ वह,
चलैं सुपथ, तौ जानि बूझि कै चलैं कुपथ यह,
सूधे विस्वासिनि त्यौं तजहिं धर्म नवग्राही,
नष्ट होहिं, वरु बुद्धि अधिक अति के ह्वै वाही॥
किते प्रसंसत प्रात जाहि, निसि ताहिं विनिंदत,
पै निरधारत सदा यथारथ निज अंतिम मत॥

उपवनिता लौं ये सदैव कबिता सौं बिहरत,
छन सब बिधि सनमानत, पुनि दूजे छन निदरत;
जब इनके निर्वल मस्तिष्क, कोट बिन पुर लौं,
प्रति दिन बूझ अबूझ बीच बदलत स्वपच्छ कौं॥
औ कारन बूझौ तौ कहैं बुद्धि-अधिकाई,
तौ अधिकै आजहु तैं कल्ह बुद्धि सवाई॥

पुरुषनि मूरख गनैं, बनैं हम इमि बुधिधारी,
निस्चय त्यौं गनिहैं हमकौं संतान हमारी।
गए हुते भरि, या उत्साही देस अनादी,
एक बेर बहु धर्माचार्य बितंडावादी;
उनमैं सबसौं अधिक वाक्य जाके मुख मंडित,
सोई मान्यौ गयौ सबनि तैं गुरुतर पंडित,
धर्म, बेद, सबही बिबाद के जोग थिराए,
काहू मैं नहिं मति एतौ कै जाहिं हराए॥

पै अब बसे सांत ह्वै शंखादिक-मतवारे,
निज अनुहारी घौंघनि माहिं समुंदर खारे॥
जब धर्महि धारयौ बसननि बहु रंग-बिरंगी,
कहा अचंभौ तौ जौ होहि बुद्धि बहु ढंगी?
बहुधा तजि तेहि जो स्वाभाविक औ सुजोग्य अति,
प्रचलित मूरखताही जानि परति तत्पर-मति;
औ लेखक निर्विघ्न लाभ जस कौ अनुमानैं,
जियत तबहिं लौं जो जब लौं मूरख मन मानैं॥

केते निज दल, औ मतिवारनि कौं सनमानैं,
निजहिं सदा परिमान मनुष्य-जाति कौ जानैं॥

औ लुभाय कै गुनैं करत गुन कौ आदर तव,
औरनि के मिस आत्मस्लाघा ही उचरत जव ॥
कविताई-तरु होति राजनैतिक अनुगामिनि,
औ सामाजिक पच्छ बढ़ावत घिन निज धामिनी ॥

गर्व, द्वेष, मूरखता, तुलसी पैं चढ़ि धाए,
धर्मध्वज, रसलंपट, जाँचक भेस बनाए।
भई सुमति थिर पै हाँसी औ खेल थिरायैं,
उन्नतिसील जोग्यता उभरति अंत दबायैं ॥

पै जो वह पुनि आइ हमैं दृग-लाहु लहावै,
तौ नव खल औ सठ-समूह उठि खंडन धावै।
बरु वर वालमीकिहू जौ अब सीस उठावै,
तौ कोउ दोप-दृष्टि निस्चय निज जीभ चलावै ॥

गुनहिं द्वेप नित ताको छाँह सरिस पछियावै,
पै छाया लौं सार वस्तु कौं सत्य थिरावै।
द्वेप-घिरे गुन, राहु-ग्रस्त दिनकर लौं भावैं,
नहिं निज बरु रोकहि को कलमसता दरसावैं ॥

पहिलैं जब यह रवि निज प्रखर किरण दरसावै,
खींचहि भाप-पुंज जो याकी छटा छिपावै,
अंत माहिं पै सो घनहू तेहि पथहिं सजावै,
प्रतिबिंबित नव प्रभा करै द्युति दिव्य बढ़ावै ॥

होहु अग्रसर करिबै मैं सदगुन-उत्साहन,
तब की स्लाघा व्यर्थ लगै जब जगत सराहन ॥
वर्तमान कविता है, हाय! अल्प अति वय मैं।
तासौं, उचित जिवैवौ तिहिं, अनुकूल समय मैं।

अब न दिखाई देत काल वह सुभ सुखदाई,
वर्ष सहस लौं जियत हुतौ जब कवि-कबिताई,
अब जस की चिरकाल-थिती सब भाँति बिलानी,
कौड़ी तीनहिं कौ बस होय सकत अभिमानी,
नित भाषा मैं खोट लखति संतान हमारी,
लहिहै सोइ गति देवहु अंत चंद जो धारी॥

जैसैं सुद्ध सुलेखिनि जब कोउ डौल बनावै,
चतुर चितेरे कौ हिय-भाव दिव्य दरसावै,
जामैं इक नव सृष्टि जगति ताकी इच्छा पर,
तथा प्रकृति तत्पर आधीन रहित ताकैं कर,
जब परिपक्व रंग कोमल ह्वै मेल मिलावैं,
उचित मंदता, चटक, माधुरी-जुत घुलि, पावैं,
जब मृदुता-प्रद काल परम पूरनता पागै,
औ प्रति उग्राकृति मैं जीव परन जब लागै,
रंग बिसासी होत कला कौ तब अपकारी,
सनै सनै मिटि जाति सृष्टि सब जगमगवारी॥

हतभागिनी कविता भ्रमदा वस्तुनि लौं भावै,
प्रतिकारै नहिं ताहि द्वेष जो सो उपजावै॥
तरुनाइहि मैं नर असार कीरति-मद धारै,
सो छनभंगुर मृषा दंभ पै वेगि सिधारै,
ज्यौं कोउ सुंदर सुमन वसंतागम उपजावै,
जो प्रमुदित ह्वै खिलै, खिलत पै मुरझनि पावै॥

कहा वस्तु कविता जापैं दीजै एतौ चित?
निज पति की पत्नी, पै जिहिं उत्पति भोगत नित,

जब अति अधिक प्रसंसित तब अति श्रम-अधिकाई,
जेतो अधिक प्रदान होहि तेतियै खुजाई,
जाकी कीरति कष्ट-रक्ष्य अरु सहज नसौनी,
अवसि खिजौनी किते, पै न सब कबहुँ रिझौनी,
यह वह जासौं आछे बचैं बुरे भय धारैं,
मूरख जाहि घिनाहिं, धूर्त नष्टहि करि डारैं!

जब चातुरिहिं अविद्यहि सौं एतौ दुख पावन,
देहु न विद्याहूँ कौं तासौं बैर जगावन॥
होत पुरस्कृत हुते श्रेष्ठ प्राचीन काल मैं,
तथा प्रसंसित सो, जो, सुभ उद्योग चाल मैं।
जदपि होत हे सेनापतिहि छत्र-अधिकारी,
तदपि मिलत हो मुकुट, सैनिकहुँ, सोभाकारी॥

अब जे उच्च हिमाचल-तुंग-शृंग पर आवैं,
निज श्रम कोऊ और के पात करन मैं लावैं,
करत आत्महित इत प्रति आतुर कविहिं स्वचारी,
उन मूढ़नि कौं खेल होति बुधि झगड़नवारी।
पै नित अधम प्रसंसा करिबै मैं दुख मानैं,
जेतहि लेखक तुच्छ नितोही अनहित आनैं॥

केहि कुत्सित फल ओर, तथा किहि नीच रीति सौं,
नस्वर उद्यत होत कीर्ति की अतज प्रीति सौं!
अहह कबहुँ इमि असुभ प्रतिष्ठा तृषा न धारौ,
तथा विवेचक बनि मनुष्यता नाहिं बिसारौ॥

सुभ स्वभाव औ सुमति मिलाप निरंतर ठानौ,
चूक-भरी नर प्रकृति, छमा ! वी गुन जानौ॥

पै ज उर उदार मैं गाद रहै कछु छाई,
जासौं द्वेष तथा आमर्ष-मैल न थिराई,
तौ ता छोभहिं कोउ अति असह दोष पैं डारौ,
या कुकाल मैं ताकौ नाहिं अकाल बिचारौ॥

अधमास्लील कैसहूँ नाहिं छमा अधिकारी,
उक्ति, जुक्ति, जद्यपि चितवृत्ति-लुभावनहारी,
सिथिलपनौ अस्लीलताहिं मिलि यौं घिनसान्यौ,
मानौ क्लीव कोऊ कुलटा के प्रेम समान्यौ।

सुख संपति और चैन कलित मुदवास काल मैं,
उपजी यह दुख घास, तथा बाढ़ी उताल मैं।
हुती चोप प्रेमहि की जब चैनी नृप माहीं,
जात हुते बिरलै ही सभा, कबहुँ रन नाहीं।

पुंसचलनि-करि हुते राजसासन के ताने,
प्रहसन लखिबै माहिं राजकाजी अरुझाने,
एती पै नहिं, जब सुकबिनि वरु पिनसिन पाई,
औ नव राजकुमार करन लागे कबिताई।

दरबारिनि-कृत नाटक पर सुंदरि हँसि लोटति,
कोउ नकल बिन अभिनय भयें रही नहिं खोटति,
घूँघट-ओट सुशील नाहिं अपनी छवि छाजति,
लगीं हँसन कन्या तापैं जासौं ही लाजति॥
बहुरि बिदेसी नृप राज्याधिकार अमनेकी।
दीन्ही पूरि पंक उद्दंड बिधर्मपने की,
नेष्टारहित पुरोहित लगे समाज सुधारन,
मुक्ति-प्राप्ति-सुख-साध्य रीति की सीख प्रचारन,

देव स्वतंत्र प्रजा जिहिं हृहिं सत्व निरधारी,
होहि कदाचित जौ जगदीसहु अत्याचारी।
उपदेसकहुँ उठाय रखन निंदा सुभ सीखे,
दुष्ट सराहे, करन हेत निज स्लाघी तीखे!
कवित-सृष्टि संपाति भाँति या चोप चढ़ाए,
सहित घमंड भानु मंडल चढ़िवे कौं धाए,
औ मुद्रालय कठिन लोह की छातिनवारे,
असद अरोक भँड़ौवन के भारन सौं हारे॥

इन राकसनि, कुतर्किनि लै निज अस्त्र प्रचारौ,
उत साधौ निज वज्र, तथा निज छोभ निकारौ!
तिनि कुवानि पै त्यागहु जो खुचुरी निंदारत,
जो वरवस कवि कौ भ्रम सौं दोपी निरधारत,
दूषनमय दिखराय सबै दोपी जो देखे।
जैसैं पांडु रोगवारो सब पीरेहिं पेखे॥

लखौ जाँचकनि उचित कहा आचार सिखैवौ,
न्यायक कौ आधौ करतव वस ज्ञान कमैवौ।
रस-अनुभव, विद्या, विवेक ही सब कछु नाहीं,
जौ भाषौ हिय स्वच्छ, सत्य दमकै तिहिं माहीं।
एतोहि नहिं, कै, जग मानै जौ तुम्हैं सुहानौ,
पै तुमहूँ औरनि सौं मेल मिलावन जानौ॥

मौन रहो नित जब तुमकौं निज मति पै संसय,
औ संसय लै बात कहौ जद्यपि दृढ़ निस्चय।
केते ढीठ हठी अडंवरी देखि परत हैं,
जौ जदि कहुँ भूलैं तौ सोई टेक धरत हैं,

पै तुम अपनी भूल चूक सानंद सकारौ।
औ प्रति धौसहिं गत दिन कौ सोधक निरधारौ॥

एतोही नहिं इष्ट, होहि सम्मति सद्चारी,
सुघर झूठ सौं भौंड़ो सत्य अधिक अपकारी,
ऐसैं सिखवहु नरनि मनौ तुम नाहिं सिखायौ,
यौं अज्ञात पदार्थ लखावहु मनहु भुलायौ॥
विना सुसीख सत्य नाहिंन उचितादर पावै,
केवल सोई श्रेष्ठ बुद्धि पर प्रेम जगावै॥

संमति-दान माहिं कैसहुँ न सूमपन ठानौ,
कृपिनाइनि मैं बुद्धि-कृपिनता अधम प्रमानौ॥
छुद्र-तोष-हित निज कर्तव्य कदापि न छोरौ,
होहु न इमि सुसील कै मुख न्यायहि सौं मोरौ।
करहु नैंकुँ भय नाहिं बुधनि के क्रुद्ध करन कौं,
होत सहिष्णु स्वभाव प्रसंसापात्र नरनि कौ॥

या अधिकार विवेचक धारि सकै जौ नित प्रति,
तौ यामैं संसय नहिं होइ जगत को हित अति,
लाल होत पै, लखहु, आत्मस्लाघी अति क्रोधी,
जब काहू सौं सुनत कहूँ कोउ सब्द विरोधी,
घूरत अति विकराल कियैं नैननि भयकारी,
ज्यौं प्राचीन चित्र मैं कोउ नृप अत्याचारी॥

मूढ़ प्रतिष्ठित के छेड़न सौं अति भय धारौ,
जाकौ सत्व अटक करन नित काव्य न कारौ॥

ऐसे प्रतिभा-विहीन कवि, जो मन - भावत,
ज्यौं वे जे बिन पढ़े परीक्षा सौं तरि आवत॥

वादि भँड़ौवन पैं छोड़ौ सदवाद भयंकर,
औ सुश्रूषा मृषा समर्पक वाचाली पर;
करत नाहिँ विस्वास जगत जिनकी स्लाघा पर,
जिनके कविताई-त्यागन-प्रण पर सौं गुरुतर॥

कबहुँ इष्ट अति, रखन रोकि निज ताड़नि बानी,
औ भद्दनि कौं होन देन मिथ्या अभिमानी।
गहिबौ मौन भलौ बरु तिन पैं सतरैबे सौं,
तब लौं निंदि सकै को सकहि खँचै यह जब लौं,
भनभनात ये सदा ऊँघदाई गति साजैं,
लतियावहु जेतौ लट्टुन लौं तेतहि गाजैं॥
चूक उन्हँ फिर सौं दौड़न वे हेतु उभारै,
ज्यौं अड़ियल टट्टू गिरि कै पुनि चाल सँवारै॥

कैसे इनके झुंड सकुच बिन-साहस-साने,
शब्द तथा मात्रा खटपट मैं अरुभि बुढ़ाने,
धावा करैं कविनि पैं भरैं छोभ नस नस लौं,
तरछट लौं औ दाबि कढ़ै मस्तिष्क कुरस लौं,
अपनी बुधि की सिथिलित अंतिम बूँद निचोरत,
औ क्लीवनि कौ सौं करि क्रोध क्रूर तुक जोरत॥

ऐसे निपट निलज्ज कुकवि जग माहिँ घनेरे,
पै तैसे ही मत्त, पतित जाँचक बहुतेरे॥
ग्रंथ ग्रथित गुट्टलमति, मूरखताजुत पंडित,
विद्या-पोट अपार भार सिर धरैं अखंडित,
निज मुख ही सौं निज श्रवनहिं नित बिरद सुनावैं,
औ अपनी ही सुनत सदा लखिबै मैं आवैं।

आज काल के जाँचक पै उलटी गति धारैं,
जाँचैं भरि औधत्य, लेख पै सिथिल सँवारैं॥

लखहु मुकुंददास सुकदेव सु-भनित परकासत,
प्रति पंक्तिनि सौं नए नए लावन्य निकासत।
कालिदास मैं सक्ति, चातुरी, दोउ छवि छावैं,
विद्वज्जन पांडित्य, सुसभ्य सहजता भावैं॥

अति गँभीर श्रीहर्ष महान ग्रंथ मैं सोभित,
परम युक्ततम नियमऽरु क्रम सपष्टतम निश्रित।
ज्यौं उपकारी अस्त्र जात अस्त्रालय धारे,
सब क्रम सौं जतबद्ध, सुधरता सहित सम्हारे,
पै न दृगनि-सुख हेत, बरन कर के वाहन हित,
नित प्रयोग के योग, यथा-इच्छाक्ति उपस्थित॥

उद्धत पंडितराजहिं कियौ कला सब मंडित,
निज विवेचकहिं दई दिव्य कवि-गिरा उमंडित।
उत्तेजित जाँचक जो नित करतव मैं उद्यत,
ह्वै तातौ सम्मति दै, पै नित रहत न्यायरत,
उदाहरन निज जाकौ जाके नियम दृढ़ावै,
औ आपुहि सो अति महान जिहिं लिखि दरसावै॥

जाँचक-परंपरा यौं सुभ अधिकार जमायौ,
दलि स्वाच्छंदहि उपकारी नियमनि बगरायौ।
विद्या, तथा राज, उन्नति इक संगहिं पाई,
औ फैली अधिकारहि संग कला-कुसलाई;
एकहि रिपु सौं अंत दुहुनि की अलहन आई,
भारत औ विद्या एकहि जुग अवनति पाई।

अत्याचार संग सिर दुरविस्वास उठायौ,
वह तन कौं ज्यौं, त्यौं यह मन कौं दास बनायौ;
बहुत जात मान्यौ हा, औ जान्यौ अति थोरौ,
औ ढिल्लड़पन गन्यौ जात उत्तमता वोरौ;
या विधि दूजी प्रलय बहुरि विद्या पर आई,
तुर्कारंभित विपत्ति, समाप्ति द्विजनि सौं पाई॥

पै नागेस भट्ट अति माननीय वर पंडित,
विद्वज्जन-मंडलिहिं करन गौरव सौं मंडित,
तेहि अवनति-रत-काल-प्रवाह प्रबल ठहरायौ,
रंगभूमि सौं मृषा विडंबिनि कौं बहरायौ॥

विट्ठलेस गोस्वामी के सुभ समय, निवारति,
सारद निद्रा, त्यक्त बीन, पुस्तक पुनि धारति;
भारत की प्रतिभा प्राचीन बहुरि तहँ छाई,
झारी धूरि, तथा ताकी वर ग्रीव उठाई॥

गई सिल्प, औ तिहि अनुरूप कला उद्धारी,
पाहन आकृति लई भए गिरि जीवनधारी।
मृदुतर स्वर सौं उठ्यौ गूँजि प्रति मंदिर भायौ;
तानसेन गायौ औ प्रभु-जस सूर सुनायौ,
अमर सूर जाके सुंदर उदार उर माहीं,
काव्य तथा साहित्य कला उपजी इक-ठाहीं।
केवल व्रजहिं न श्रेष्ठ नाम तुव गौरव दैहै,
बरु भारत-संतान सबै नित तव गुन गैहै।

प्राकृत भापन माहिं चलन बानी पुनि पाई,
गई फैलि चहुँ ओर अथोर कला-कुसलाई,

व्रजभाषा मैँ लागी होन सुखद कबिताई,
बहुत दिननि लौँ रही निरंकुसता, पर, छाई॥

बिना संसकृत जात हुत्यौ नाहिँन कछु जान्यौ,
औ यथेष्ट पढ़िबौ ताकौ हो अति श्रम सान्यौ,
भाषा सौँ घिन मानत हुते संस्कृतवारे,
'भाषा जाहो साहो' गुनत न हे मतवारे,
औ उदंड भाषा कबि काव्य करत मनमाने,
सुनत गुनत नहिँ संसकृतिनि के नियम पुराने॥
पै ऐसे कछु भए मंडली बुधिवारी मैँ,
न्यून गर्व मैँ जो औ बढ़े जानकारी मैँ,
जो साहस करि भे प्राचीन सत्व के बादी,
औ थिर थापे काव्य-कला-सिद्धांत अनादी॥

जाकौ है यह वाक्य, महाकवि ऐसौ सो हो,
"उक्ति विसेषो कव्वो, भाषा जाहो साहो।"
ऐसौ केसव ज्यौँ पंडित त्यौँही सुसीलवर,
जैसो श्रेष्ठ कुलीन उदार चरित तैसौ धर,
सुभग संसकृत वर साहित्य ज्ञान जेहि माहीँ,
प्रति कवि कौँ गुन मान, गर्व अपने कौँ नाहीँ॥

ऐसौ अवाह भयौ हरिचंद मित्र कविता कौ,
जाननिहारो उचित पंथ अस्तुति निंदा कौ॥
छमासील चूकन पैँ, औ तत्पर गुणग्राही,
अतिसय निर्मल बुद्धि तथा हिय सुद्ध सदाही॥[1]

१—पोप साहब के ग्रंथ का अनुवाद यहीं तक है। इसके आगे अनुवादकर्ता ने आज-कल के भाषा कवियों और समालोचकों

पै अब केते भए हाय इमि सत्यानासी,
कवि औ जाँचक रस-अनुभव सौं दोऊ उदासी,
सब्द अर्थ को ज्ञान न कछु राखत उर माहीं,
सक्ति, निपुनता औ अभ्यास लेसहू नाहीं॥

बिन प्रतिभा के लिखत तथा जाँचत विवेक बिन,
अहंकार सौं भरे फिरत फूले नित निसि दिन,
जोरि बटोरि कोऊ साहित्य-ग्रंथ निर्मानै,
अर्थसून्य कहुँ, कहूँ विरोधी लच्छन ठानै॥

जानतहू नहिं कहा अतिव्याप्ति, अव्याप्ति असंभव,
बनि बैठत साहित्यकार आचार्य स्वयंभव।
जात खड़ी बोली पैं कोऊ भयौ दिवानौ,
कोउ तुकांत बिन पद्य लिखन मैं है अरुझानौ॥

अनुप्रास-प्रतिबंध कठिन जिनके उर माहीं,
त्यागि पद्य-प्रतिबंधहु लिखत गद्य क्यौं नाहीं?
अनुप्रास कबहूँ न सुकवि की सक्ति घटावैं,
बरु सच पूछौ तौ नव सूझ हियैं उपजावैं॥

ब्रजभाषा औ अनुप्रास जिन लेखैं फीके,
माँगहिं बिधना सौं ते श्रवन मानुषी नीके।
हम इन लोगनि हित सारद सौं चहत विनय करि,
काहू विधि इनके हिय की दुर्गति दीजै दरि॥

का कुछ विवरण स्वतंत्र रीति से लिखा है। इस बात पर भी ध्यान रहे कि इस अनुवाद में यूरोपीय नामों के स्थान पर भारतवर्षीय लोगों के नाम रख दिए गए हैं।

जासौं ये साँचे आनँदप्रद सौं सुख पावैं,
औ हठ करि नित औरनि हूँ कौं नहिं वहकावैं।
होहिं वहुरि सद कवि औ काव्यकला सुखदाई,
रहै सदा भारत मैं उन्नति की अधिकाई॥

हरिश्चंद्र

पहला सर्ग

सुभ सरजू-तट बसति अवधपुरि परम सुहावनि ।
विदित वेद इतिहास माहिँ कलिकलुप-नसावनि ॥
दिव्य-दिनेस-बंस-महिपालनि की रजधानी ।
सब-सोभा-संपन्न सकल-सुख-संपति-सानी ॥ १ ॥

तिहिँ पुरि औ तिहिँ वंस माहि अवतंस वीरवर ।
अट्ठाइसवाँ भयौ भूप हरिचंद गुनाकर ॥
रामचंद सौँ भयौ पूर्व सो पैँतिस पीढ़ी ।
निज प्रन पालि सदेह चढ़यौ जो सुरपुर-सीढ़ी ॥ २ ॥

परम पुन्य कौ पुंज प्रौढ़-प्रन प्रखर-प्रतापी ।
सत्यव्रती दृढ़ धर्म-धैर्य-मर्जादा-थापी ॥
प्रजा-पाल खल-साल काल सम कुटिल कुजन कौँ ।
गुन-ग्राहक असि-वाहक दाहक दुष्ट दुवन कौँ ॥ ३ ॥

नृप-कुल-कल-किरीट-मनि-संज्ञा कौ अधिकारी ।
नहिँ छत्रिहिँ वरु मनुप मात्र कौ गौरव-कारी ॥
सकल सुखी तिहिँ राज माहिँ नित रहत धर्म-रत ।
निज निज चारहु वरन चारु आचरन आचरत ॥ ४ ॥

कहुँ कलेस कौ लेस देस मैं रह्यौ न ताके।
घर घर नित नव मंजुल मंगल मोद प्रजा के॥
ताकौ कछु इतिहास इहाँ संछेप बखानौं।
जो सादर बुध सुनहिं सकल तौ निज श्रम जानौं॥ ५॥

एक दिवस नारद मुनि-वर सुर-सभा पधारे।
गावत हरि-गुन बिसद बीन काँधे पर धारे॥
पेखि पुरंदर मानि मोद पग-परसन कीन्ह्यौ।
सिष्टाचार यथाविधि करि दिव्यासन दीन्ह्यौ॥ ६॥

पुनि पूछी कुसलात बात बहु भाँति चलाई।
निपट नम्रता सहित करी कल विनय बड़ाई॥
"अहो देव ऋषि-राज! आज आगमन तिहारे।
गृह पवित्र, मन मुदित, भये मम नैन सुखारे॥ ७॥

जो न अकारन करहिं कृपा तुम-से उपकारी।
तौ पावहिं सतसंग कहाँ हम से गृह-धारी"॥
सुनि सुरेस की सुघर वचन-रचना-चतुराई।
मुनिवर मृदु मुसुकात बात इमि कही सुहाई॥ ८॥

"सब देवनि के राज अहो तुम, इमि कत भाषत।
तुव संगति-सुख बरु सब सुर नर मुनि अभिलाषत॥
औ हमकौं तौ रहत सदा इहिं ढारिहिं ढरिबौ।
करिबौ हरि-गुन-गान मोद मढ़ि बिस्व बिचरिबौ"॥ ९॥

पुनि पूछ्यौ सुरराज—"आज मुनि आवत कित तैं।
लोकोत्तर आह्लाद परत छलक्यौ जो चित तैं"॥
सुनि मुनि सहित उछाह चाहि बोले मृदुबानी।
"अहो सहस-दृग साधु! बात साँची अनुमानी॥१०॥

साचहिँ अकथ-अनंद-मुदित मन आज हमारौ।
धन्य भूप हरिचंद धन्य जग जनम तिहारौ॥
धन्य धन्य पितु मातु तुमहिं जीवन जिन दीन्हौ।
जिहिं बिरंचि रचि जिन प्रपंच कौ प्राच्छित कीन्हौ" ॥११॥

सुनि सुरपति अति आतुरता-जुत कह्यौ जोरि कर।
"कौन भूप हरिचंद, कहौ हमसहुँ कछु मुनिवर"॥
"सुनहु सुनहु सुरराज", कह्यौ नारद उछाह सौं।
"ताकी चरचा करन माहिं चित चलत चाह सौं ॥१२॥

मृत्युलोक कौ मुकुट देस भारत जो सोहै।
ताके उत्तर-पच्छिम भाग माहिं मन मोहै॥
अवधपुरी अति रम्य परम पावनि मंगलमय।
है तिहिं कौ नरनाह भूप हरिचंद महासय ॥१३॥

ताही के लखि चरित आज मन मुदित हमारौ।
अति अमोघ आनंद परम लघु हृदय विचारौ॥
अहह होत ऐसे नर-रत्न जगत मैं थोरे।
सरल हृदय निष्कपट-भाव अविचल-व्रत भोरे" ॥१४॥

सुनि मघवा अति ईर्षा सौं मनहीं मन खीझ्यौ।
पै निज भाव दुराइ वचन ऐसैं पुनि सीझ्यौ॥
"साँचहिं जान परत हरिचंद उदारचरित अति।
संप्रति ताहि प्रसंसत सुनियत सबहिं धीरमति ॥१५॥

पै कहियै कछु गृह-चरित्र ताके हैं कैसे"।
बोले मुनि पुनि—"होन उचित सज्जन के जैसे॥
जिनके परम पवित्र चरित्र नाहिं घर माहीं।
कैसहु होहिं कदापि प्रसंसा-जोग सु नाहीं" ॥१६॥

करि कछु कूत मनहिं मन पुनि पुरहूत उचार्‌यौ।
"कहा भूप हरिचंद स्वर्ग-हित यह व्रत धार्‌यौ"॥
बोले मुनि—"यह कहत कहा तुम बात अनैसो।
सद-उदार-चरितनि कौं स्वर्ग-कामना कैसी॥१७॥

परम आत्म-संतोष-हेत निज चरित सुधारत।
कहुँ सज्जन स्वर्गासा करि निज जनम बिगारत॥
करि कर्तव्य सुधार चरित संतुष्ट सुखी जो।
स्वर्ग-लोक-सुख वरु औरनि करि दान सकत सो॥१८॥

उदाहरन ताको देखौ हम प्रगट लखावैं।
बैठे स्वर्गहु मैं ताको गुन गुनि सुख पावैं"॥
सुरपति मन मैं गुन्यौ-"जदपि साँचहि मुनि भाखत।
जद्यपि नृप हरिचद स्वर्ग-आसा नहिं राखत॥१९॥

निज चरित्र सौं ह्वैहै तदपि स्वर्ग अधिकारी।
तातैं करिबौ विघन कछुक अतिसय उपकारी"॥
कह्यौ—"जदपि हरिचंद लखात अमंद चरित अति।
तदपि परिच्छा की इच्छा कछु होति धीर मति॥२०॥

यातैं कोउ मिस ठानि ब्यौंत ऐसौ कछु कीजै।
जासौं ताके सत्यहिं परखि सहज मैं लीजै॥
सानुकूल सुभ समय सबहि सोभा सँग राखत।
सुबरन सोइ साँच आँच सहि जो रँग राखत॥२१॥

सुनि मुनि अति अनखाइ चढ़ाइ भौंह भरि भाख्यौ।
"सुमनराज, यह कहा तुच्छ आसय उर राख्यौ॥
अहह जाति तव मत्सरता अजहूँ न भुलाई।
हेर फेर सौ बेर जदपि मुँह की तुम खाई॥२२॥

तुमहिँ दीन्ह करतार अड़ोपन तौ इमि कीजै।
लघु गुरु सबके हित मैं चित सहर्ष निज दीजै॥
परहित लखि दहिबौ पर अनहित हेरि जुड़ैबौ।
परन-छुद्र-मति-काज जिन्हैँ नहिं कबहुँ लजैबौ ॥२३॥

औ हरिचंद अमंदचरित कौ तौ गुन खाँचत।
हृदय भूलि सब भाव एक आनँद-रस राँचत॥
जदपि उपद्रव-प्रिय सहजहिं नित प्रकृत हमारी।
तउ निस्छल हिय हेरि चहति नहिं ताहि दुखारी ॥२४॥

औ चाहैँ हूँ कहा सिद्धि कछु संभव है ना।
नारद कहा सारदहु तिहिं मति पलटि सकै ना" ॥
सुनि सुरेस खिसियाइ दियौ उत्तर कछु नाहीं।
लाग्यो करन विचार हारि औरै मन माहीं ॥२५॥

सोच्यौ सरत लखात काज इनके न सहारे।
ताही समय महा-मुनि विस्वामित्र पधारे॥
नारद माँगी विदा कियौ परनाम पुरंदर।
यह असीस दै हरि सुमिरत गवने गुन-सागर ॥२६॥

"करहिं कृपा अब हरि सो हरहिं सुभाव तिहारौ।
पर-उन्नति लखि वृथा तुम्हैँ जो दाहनहारौ" ॥
पूछ्यौ विस्वामित्र—"विचित्र आज यह कैसी बानी।
कहा भयौ सुरराज कही कत मुनिवर ज्ञानी" ॥२७॥

कह्यौ सुरेस बनाइ बचन तब स्वारथ-साधक।
"भयौ कछू ऋषिराज काज नहिं रिस-अवराधक॥
पै तिनकौ सुभाव तौ विदित सकल जग माहीं।
रुष्ट होन मैं तिन्हैँ खोज मिस की कछु नाहीं ॥ २८ ॥

कछु चरचा हरिचंद अवध-नरपति की आई।
ताके धर्म धैर्य की तिन अति कीन्हि बड़ाई॥
टोंकि उठे हम रोकि न जब अति सौं मन भाई।
होहि परिच्छा तौ कछु परहि जानि धरमाई॥२६॥

ताही पर बस बिगरि उठे करि नैन करारे।
हरिहर-नींदा-बचन कछुक हम मनहुँ उचारे"॥
सुनि मुनि कर भ्रूभंग कह्यौ—"जौ मुनि मन मोहैं।
कहा भूप हरिचंद माहिं ऐसे गुन सोहैं"॥३०॥

बोल्यौ विहँसि विड़ौजा—"हमहूँ तौ इहि भापत।
पै मिथ्या-स्लाघी औचित्य विवेक न राखत॥
तुमसे महानुभावनि हूँ के होते जग मैं।
इक सामान्य गृहस्थ भूप को व्रत किहिं मग मैं॥३१॥

करि मन इहै विचारि हारि सुनि अनुचित बानी।
सिच्छा हेत परिच्छा की इच्छा उर आनी"॥
यह सुनि विस्वामित्र कह्यौ टेढ़ी करि भौंहैं।
"यामैं अनुचित कहा जानि मुनि भये रिसौंहैं॥३२॥

सब संसय परिहरहु परिच्छा हम अब लैहैं।
निज तप-तेज तचाइ खोलि कलई सब दैहैं॥
मो आगैं जाकैं तप तीन्यौ लोक तपैहैं।
सो दानी ह्वै कहा कहौ निज सत्य निबैहैं॥३३॥

देखौ वेगिहि जौ ताको नहिं तेज नसावौं।
तौ पुनि पन करि कहौं न विस्वामित्र कहावौं"॥
यौं कहि आतुर दै असीस लै बिदा पधारे।
चपल धरत पग धरनि किये लोचन रतनारे॥३४॥

दूसरा सर्ग

चलि सुरपुर सौं विस्वामित्र अवधपुरि आए।
देखे तहाँ समाज साज सब सुभग सुहाए।
वन उपवन आराम सुखद सब भाँति मनोहर।
लहलहात ह्वै हरित - भरित फल - फूलनि तरवर ॥१॥

वापी कूप तड़ाग झील सरवर सरिता सर।
जीवन - धर सँताप - हर नर - ही - तल-सीतल-कर ॥
कियौ नैकुँ विस्राम आनि सरजू - तट वैठे।
तहँ अन्हाइ करि नित्य - कृत्य पुर - अंतर पैठे ॥ २ ॥

धवल - धाम - अभिराम - अवलि दोहूँ दिसि देखी।
रचना परम विचित्र चित्र मैं जाति न लेखी।
मध्य भाग मैं सोहति हाट चारु चौपर की।
दुहुँ दिसि दिव्य दुकान - पाँति वहु भाँति सुघर की ॥३॥

अपने अपने काज करत विन रोके टोके।
सहित अमंद अनंद चारहूँ वरन विलोके ॥
घर घर होत वेद - धुनि जिहिं सुनि पातक भाजैं।
हरि - हर - चरचा - सुरस-रसिक सव लोग विराजैं ॥ ४ ॥

जाँच्यौ सोधि समस्त न कहुँ दुखिया कोउ दीस्यौ।
जासौं चरचा चली नृपति - गुन गाइ असीस्यौ ॥
यह करतूति बिलोकि मनहिं मन लगे सराहन।
भये तुष्ट सोच्यौ बरवस पन पर्‌यौ निबाहन ॥ ५ ॥

विविध गुनावन करत राज-पौरी पर आए।
लखि रचना निज सृष्टि-सक्ति कौ गर्व भुलाए॥
रजत-हेम-मुकता-मय मंजुल भवन बिराजत।
बड़े बड़े मनि-अच्छर खचित द्वारि इमि भ्राजत॥ ६॥

"टरहिं चंद सूरज औ टरहि मेरु गिरि सागर।
टरहि न पै हरिचंद भूप कौ सत्य उजागर"॥
पढ़त प्रतिज्ञा साभिमान ईर्षा पुनि आई।
"भला देखिहैं तौ" मन मैं कहि भौंह चढ़ाई॥७॥

तब लौं दौरि पौरिया भूपहि यह सुधि दीन्ही।
"महाराज, इक ऋषिवर कृपा आज इत कीन्ही॥"
सुनि नृप आपहिं उमगि द्वार अति आतुर आए।
करि प्रनाम पग परसि सभा मैं सादर ल्याए॥ ८॥

बैठार्‌यौ सनमान सहित बहु विनय उचारी।
आनँद सौं तन पुलकि उठ्यौ नैननि भरि वारी॥
सहज अकृत्रिम भाव भूप के मुनि मन भाए।
श्रद्धा सील सुभाव नम्रता हेरि हिराए॥ ९॥

पै बानी करि उदासीन निज परिचय दीन्यौ।
"सुनहु भूप, हम कौन जासु आदर तुम कीन्यौ॥
जाकैं तप ब्रह्मांड तप्यौ हरि-आसन डोल्यौ।
जो तप-बल छत्री सौं ह्वै ब्रह्मर्षि कलोल्यौ॥१०॥

जिन बसिष्ठ-सौ-सुतनि क्रोध करि सहज नसायौ।
कठिन ब्रह्म-हत्यहुँ कौं निज तप-तेज जरायौ॥
निज तप-बल सदेह तब जनकहिं स्वर्ग पठायौ।
नवल सृष्टि करि ब्रह्मादिक कौ गर्व गिरायौ॥११॥

कौसिक विस्वामित्र सोइ हम तव गृह आए।
सकल मही के दान लेन कौ चाव चढ़ाए॥
जान्यौ हमैं तथा आवन कौ कारन जान्यौ।
कहौ वेगि अव जो विचार उर-अंतर आन्यौ" ॥१२॥

कह्यो भूप "कत जानि वूझ वूझत मुनि ज्ञानी।
या मैं सोच-विचार कहा जौ तुम यह ठानी॥
तुम सौं पाइ सुपात्र दान दैवे मैं चूकै।
तौ यह चूक सदैव आनि उर-अंतर हूकै॥१३॥

लीजै मानि प्रमोद सकल महि सादर दीन्ही।"
"स्वस्ति" भापि मुनि मन मैं विविध प्रसंसा कीन्ही॥
स्रवन सुन्यौ जैसौ तासौ वढ़ि आँखिनि देख्यौ।
साँचहिं नृप हरिचंद अमंद-चरित मुनि लेख्यौ॥१४॥

सद-गुन-गन-आगार धर्म-आधार लखत यह।
साँचहिं परम उदार भूमि भर्तार लसत यह॥
जिहिं महि के दस-हाथ-हेत नृप माथ कटावैं।
रुँडहु ह्वै उठि लरैं रुधिर सौं कुंड भरावैं॥१५॥

जिहिं हित तप करि तचैं पचैं नर स्वारथ-घेरे।
सो सव तृन-इव तजी नैंकु तेवर नहिं फेरे॥
अव करि कौन कुढंग भंग याकौ व्रत कीजै।
पुनि कछु गुनि वोले—"अव दान प्रतिष्ठा दीजै" ॥१६॥

कह्यो भूप कर जोरि—"होहि इच्छा सो लीजै"।
वोले ऋषिवर "सहस-स्वर्ण-मुद्रा वस दीजै"॥
"जो आज्ञा" कहि नृपति वेगि मंत्रिहिं वुलवायौ।
सहस स्वर्ण-मुद्रा आनन-हित हरपि पठायौ॥१७॥

यह लखि ऋषि विकराल लाल लोचन करि बोले।
भृगुटी जुगल मिलाइ किये नासा-पुट पोले॥
"रे मिथ्या धर्मध्वज, मृषा सत्य-अभिमानी।
धर्म-धीरता प्रन-दृढ़ता तेरी सब जानी॥१८॥

ऐसहिं तुच्छ कपट छल सौं महिमा विस्तारी।
भयौ सकल जग मैं विख्यात सत्य-व्रत-धारी॥
दई दान तैं अब समस्त महि भई हमारी।
राज-कोष को अब तैं मूढ़ कौन अधिकारी॥१९॥

जो बुलाइ मंत्रिहिं ऐसी यह कीहि ढिठाई।
मुद्रा आनन की आयसु सानंद सुनाई॥
रे मतिमंद! अमंद! कुटिल! रे कपट-कलेवर!
कहा घटत कहु बिना बने ऐसो दानी नर"॥२०॥

सुनि मुनिवर के परुष बचन कछु भूप सकाए।
बोले बचन निहोरि जोरि कर बिनय-बसाए॥
"छमा छमा ऋषिराज दया-सागर गुन-आगर।
छमा छमा तप-तेज-तरनि तिहुँ-लोक-उजागर॥२१॥

साँचहिं अब समुझात बात हम अनुचित कीन्हीं।
मंत्रिहिं जो मुद्रा आनन की आयसु दीन्हीं॥
हम अवगुन के कोस किये सब दोष तिहारे।
तुम गुन-सिंधु अगाध छमहु अपराध हमारे॥२२॥

जिहिं तिहिं भाँति सहस्र स्वर्ण-मुद्रा सब देहैं।
दारा सुअन समेत याहि ऋण-हेत बिकैहैं॥
पुनि मुनि करि भ्रू बंक सहित आतंक उचार्‌यो।
"रे रवि-कुल-कलंक मति रंक हमैं निरधार्‌यो॥२३॥

जा हित माँगत छमा न सो छल छाँड़त नैंकहु ।
निज मुख-पानिप संग वहावत विसद विवेकहु ॥
अरे मूढ़मति भई सकल वसुधा जव मेरी ।
काकैं धन तव अधम देह विकिहै कहु तेरी" ॥२४॥

यह सुनि नृपति सभीति सोचि करि नीति-गुनावन ।
बोले वचन विनीत विसद इहिं रीति सुहावन ॥
"करि कुबेर सौं जुद्ध आनि धन सुद्ध चुकैहैं" ।
बोले मुनि—"तव तौ जव अस्त्र तुम्हैं हम दैहैं" ॥२५॥

यह सुनि पुनि नरनाह सोच के सिंधु समाने ।
बहु विधि सोधि मुखाग्र वचन-मुकता ये आने ॥
"सब सास्त्रनि सौं सिद्ध लोक-बाहिर जो कासी ।
निज त्रिसूल पर धारत जाहि संभु अविनासी ॥२६॥

अघ-ओघनि करि दूर मोच्छ-पद वरवस दैनी ।
कहा कठिन जो होहि हमारेहु ऋन की छैनी ॥
दारा सुवन समेत जाइ हम तहाँ विकैहैं ।
एक मास की अवधि दयासागर जौ दैहैं" ॥२७॥

सुनि भूपति के वचन भए मुनि प्रथम चकित अति ।
लगे प्रसंसा करन मनहिं मन वहुरि जथामति ॥
"धन्य धर्म-दृढ़ता हरिचंद अमंद तिहारी ।
साँचहि तुम तिहुँ लोक माहिँ नर-गौरव-कारी ॥२८॥

पुनि वानी करि उदासीन यह आज्ञा कीन्हीं ।
"एक मास की अवधि तुम्हैं करुना करि दीन्हीं ॥
पै जौ एक मास मैं सब मुद्रा नहिं पैहैं ।
तौ तोहिं पुरुषनि संग साप दै नरक पठैहैं" ॥२९॥

"जो आज्ञा" कहि नृपति हर्षजुत सीस नवायौ।
मंत्रिहिँ अपर समस्त राजकाजिन्हि बुलवायौ॥
सब सौं सहित उछाह विदित वेगिहि यह कीन्ह्यौ।
"हम सब राज समाज आज ऋषिराजहिँ दीन्ह्यौ॥३०॥

अब तुम इनके होहु हृदय सौं आज्ञाकारी।
राज-काज इमि करहु रहै जिहिँ प्रजा सुखारी॥
दारा सुअन समेत अबहिँ कासी हम जैहैं।
ऋषि-ऋण सौं उद्धार-हेत बिन सोच बिकैहैँ॥३१॥

भयौ होहि कोउ कबहुँ कूर बरताव जु हमसौं।
सो सब अब बिसराइ देहु निज हिय उत्तम सौं"॥
यह सुनि सब अकुलाइ लगे नृप-बदन निहारन।
"कहत कहा यह आप" सहित स्वरभंग उचारन॥३२॥

वेगिहिँ उठि सिंहासन कौं प्रनाम नृप कीन्ह्यौ।
रोहितास्व बालकहिँ महिषि सैव्यहिँ सँग लीन्ह्यौ॥
चले राज तजि हरष बिषाद न कछु उर आन्यौ।
भूलि भाव सब और एक ऋण-भंजन ठान्यौ॥३३॥

चले प्रजागन संग लागि दृग-बारि बिमोचत।
मंत्रि आदि सब मौन मलीन-बदन-जुत सोचत॥
पुर बाहिर ह्वै भूप सबहि सब बिधि समुझायौ।
निज पन पालन कौं आवस्यक धर्म जतायौ॥३४॥

जद्यपि समुझावन सौ लह्यौ तोष कछु नाहीं।
पै लौटे लूटे से गुनि आज्ञा मन माहीँ॥
सहत विविध संताप दोप आतप कौ भारी।
सुत-पत्नी-जुत चले कासिका सत-ब्रत-धारी॥३५॥

—०❀०—

तीसरा सर्ग

पहुँचि कासिका मैं विश्राम नैकुँ नृप लीन्ह्यौ।
स्नानादिक करि चंदचूर कौ वंदन कीन्ह्यौ॥
पुनि विकिवे के हेत हाट-दिसि चले विचारत।
पुर-सोभा-धन-धाम विविध अभिराम निहारत॥१॥

"अहो संभुपुर की सुखमा कैसी मन मोहै।
पै निज चित्त उदास भए सोऊ नहिं सोहै॥
दै सब महि मुनिवरहिं नाहिं तेतौ सुख लीन्ह्यौ।
जेतौ दुख अब लहत जानि ऋन अजहुँ न दीन्ह्यौ" ॥२॥

तिहिं अवसर पुनि गाधि-सुवन तहँ आनि प्रचार्‌यौ।
किये हगनि विकराल व्याल लौं वचन उचार्‌यौ॥
"अरे भ्रष्ट-पन वोलि मास पूर्‌यौ कै नाहीं।
अब विलंब किहिं हेत दच्छिना दैवे माहीं॥३॥

अब हम इक छन मात्र तोहिं अवसर नहिं दैहैं।
नैकुँ न सुनिहैं वात सकल मुद्रा चुकवैहैं॥
वोलि देत कैं नाहिं नतरु अब वेगि नसैहै।
ब्रह्म-डंड अति कठिन साप-वस तव सिर ऐहै" ॥४॥

करि प्रनाम कर जोरि नृपति वोले मृदु वानी।
"ह्वैहै अवधि आज पूरी मुनिवर विज्ञानी॥
विकन हेत हम जात हाट मैं धनिकनि हेरत।
पहुँचि तहाँ क्रयकर्त्तनि कौं तुरतहिं अब टेरत॥५॥

सुत - पत्नी - जुत दास होइ तिनसौं धन लैहैं।
ऋषिवर राखहु छमा नैकुँ ऋण सकल चुकै हैं" ॥
सुनि मुनि मन मैं कह्यौ "अजहुँ मति नैकु न फेरी।
अरे भूप हरिचंद, धन्य छमता यह तेरी" ॥ ६ ॥

बोले पुनि करि क्रोध—"भला. रे मृषाभिमानी।
साँझ होत ही तव दृढ़ता जैहै सब जानी ॥
सूर्य - अस्त के पूर्व दच्छिना जौ नहिं पैहैं।
तोहिं धृष्टता कौ तेरी तौ फल भल दैहैं" ॥७॥

यौं कहि, धिरइ, चढ़ाइ भौंह ऋषिराइ सिधाए।
हरि सुमिरत हरिचंद हाट अति आतुर आए ॥
सिर धरि तृन लगे पुकारि यौं सबहिं सुनावन।
"सुनौ - सुनौ सब नगर धनीगन सेठ महाजन ॥ ८ ॥

हम अपने कौं बेंचत सहस स्वर्न - मुद्रा पर।
लेन होहि जिहिं लेहि बेगि सो आनि कृपा कर" ॥
तब महिषी सैब्या सभंग - स्वर कंपित - बानी।
बोली नृपहिं निहारि जोरि कर सोच - सकानी ॥ ९ ॥

"महाराज ! हम होत बिकन नहिं उचित तिहारौ।
तातैं प्रथम बेंचि हमकौं ऋन - भार निबारौ ॥
जौ एतहु पर चुकै नाहिं सब ऋन ऋषिवर कौ।
तौ चाहै सो करहु ध्यान धरि उर हरि - हर कौ" ॥१०॥

यौं कहि लगी पुकारि कहन भरि बारि बिलोचन।
"कोउ लै मोल हमैं करि कृपा करै दुख - मोचन" ॥
निज जननी दृग बारि हेरि बालक बिलखायौ।
ह्वै उदास अंचल गहि आनन लखि मुरझायौ ॥११॥

बहुरि तोतरे वचन बोलि आरत - उपजैया।
बूझ्यो "एँ ये कहा भयौ, रोवति क्यौं मैया"॥
सुनि बालक की बात अधिक करुना अधिकाई।
दंपति सके न थाँभि आँसु - धारा वहि आई॥१२॥

जदपि विपति-दुख-अनुभव-रहित रुचिर लरिकाई।
मात - पिता की गोद छाँड़ि नहिं मोद - निकाई॥
रोवत तऊ देखि तिनकौं लाग्यौ सिसु रोवन।
इनके कबहुँ कबहुँ उनके आनन - रुख जोवन॥१३॥

लखि दंपति कातर ह्वै लै लगाइ उर लीन्ह्यौ।
फेरि माथ पर हाथ चिबुक कौ चुंबन कीन्ह्यौ॥
बहुरि बिकन के हेत लगे ग्राहक कौं टेरन।
आसाकृत चल चखनि चपल चारहुँ दिसि फेरन॥१४॥

जित तित चरचा चली बिकत इक दासऽरु दासी।
लखन हेत सब ओरनि सौं उमड़े पुर-बासी॥
एकत्रित तहँ भए आनि बहु लोग लुगाई।
लागे पूछन मोल, कहन निज - निज मन - भाई॥१५॥

उपाध्याय इक वृद्ध सिष्य - जुत सुनि यह धायौ।
करि श्रम भीड़ हटाइ आइ तिन सौं नियरायौ॥
लखि तिनकौं ह्वै चकित हृदय - अंतर इमि भाष्यौ।
"छत्र, मुकुट के जोग सीस यह, क्यौं तृन राख्यौ॥१६॥

अति प्रलंब आजानु बाहु दृग कानन - चारी।
उन्नत ललित ललाट बिसद बच्छस्थल धारी॥
को यह जामैं लखियत चिह्न चक्रवर्ती के।
औ तैसेही सुभ सोहत लच्छन इहिं ती के॥१७॥

रूप-शील-गुन-खानि सुघर सबही बिधि सोहति।
लाजनि बोलति मंद नैंकु सौंहैं नहिं जोहति॥
साँचहिं यह कोउ अति पुनीत कुल की कुलनिधि है।
जानि परत नहिं बाम भयौ ऐसौ क्यौं बिधि है" ॥१८॥

यौं गुनि मन पसीजि नृप सौं बोल्यौ मृदु बानी।
"कहहु महासय कौन आप ऐसी कत ठानी॥
सब संसय करि दूर हमैं हित-चिंतक जानौ।
होहि उचित तौ कछु अपनौ वृत्तांत बखानौ" ॥१९॥

करि प्रनाम अवलोकि अवनि उत्तर नृप दीन्हौ।
"छत्री-कुल मैं जन्म सुनहु द्विजबर हम लीन्हौ॥
इक ब्राह्मन-ऋन-काज आज बिकिबे की ठानी।
इहै मुख्य सब कथा, अपर अब बृथा कहानी" ॥२०॥

उपाध्याय बोल्यौ—"हम सौं धन लै ऋन दीजै।"
कह्यौ भूप कर जोरि—"छमा हम पर बस कीजै॥
यह तौ द्विज की बृत्ति कबहुँ ऐसो नहिं ह्वैहै।
जौ यह तन धन लै सँतहिं निज भार चुकैहै॥२१॥

पै अपने कौं बेंचि आप सौं जौ धन पावैं।
तौ ऋषि-ऋन हम तुरत सहित संतोष चुकावैं" ॥
कह्यौ बिप्र—"तौ पंच सत स्वर्नखंड यह लीजै।
दोउनि मैं सौं एक दासपन स्वीकृत कीजै" ॥२२॥

यह सुन सैब्या कह्यौ जोरि कर दृग भरि बारी।
"हमहिं अछत तुम नाथ न होहु दास-ब्रत-धारी॥
बिकन देहु हमहीं पहिलैं सुनि बिनय हमारी।
जामैं ये दृग लखैं न ऐसी दसा तिहारी" ॥२३॥

कह्यौ थाम्हि हिय भूप—"कहा कछु हम अब कहिहैं।
अच्छा प्रथम जाहु तुमहीं याहू दुख सहिहैं॥
उपाध्याय सौं कह्यौ बहुरि महिषी—"हम चलिहैं"।
पूछ्यौ द्विज तब—"कौन काज तुम पाहिं निकलिहैं"॥२४॥

"संभाषन पर-पुरुष संग उच्छिष्ट असन तजि।
करिहैं हम सब काज" कह्यौ रानी धर्महिं भजि॥
कियौ विप्र स्वीकार कह्यौ—"पुत्रीवत रहियौ।
गृह के काम काज की सुधि छमता-जुत लहियौ"॥२५॥

यह सुनि द्विज सौं तुरत स्वर्णमुद्रा लै आई।
नृप के वसन माहिं बाँधत करुना अधिकाई॥
कह्यौ विप्र सौं—"कीजै छमा नैंकु अब द्विजवर।
लेहिं निरखि भरि नैन नाह कौ आनन सुंदर॥२६॥

फिर यह आनन कहाँ, कहाँ यह नैन अभागी"।
यौं कहि बिलखि निहारि नृपति-रुख रोवन लागी॥
कह्यौ विप्र—"हम चलत सिष्य के सँग तुम आवौ।
निज पति सौं मिलि माँगि विदा दुख नैंकु न पावौ"॥२७॥

यौं कहि द्विज कौंडिन्यहिं छाँड़ि गए निज घर कौं।
सैव्या लगी पाइँ पारि विनवन नाह सुघर कौं॥
"दरसन हूँ दुर्लभ अब तौ लखि परत तिहारे।
छमहु भए जो होहिं नाथ अपराध हमारे"॥२८॥

यह सुनि महा धीर भूपहु कौ साहस छूट्यौ।
अश्रु-बाह कौ प्रबल पूर दोहूँ दिसि फूट्यौ॥
पै पुनि करि हिय प्रौढ़ भूप रानिहिं समुझायौ।
बहु बिधि करि उपदेस धर्म-पथ कठिन दिखायौ॥२९॥

कह्यौ—"बिप्र की आयसु पैं नित प्रति मन दीज्यौ ।
जासौं रहैं प्रसन्न सदा सोई कृत कीज्यौ ॥
बिप्रानिहुँ कौं तुष्ट सुखद सेवा सौं रखियौ ।
औ सिष्यनि की ओर समुद मातावत लखियौ ॥३०॥

जथासक्ति बालक हू को प्रतिपालन कीज्यौ ।
रहै धर्म जासौं करि कर्म सोई जस लीज्यौ" ॥
लखि बिलंब अनखाइ "चलौ" कौंडिन्य कह्यौ तव ।
कह्यौ भूप दृग - बारि ढारि "हाँ देवि जाहु अब" ॥३१॥

चलत देखि दुसकृत - बिकृत मुख बालक खोल्यौ ।
"कहाँ जाति, जनि जाइ माइ" अंचल गहि बोल्यौ ॥
पुनि बिलंब जिय जानि क्रूर कौंडिन्य रिसायौ ।
कह्यो—"बेगि चलि" झटकि बालकहिं भूमि गिरायौ ॥३२॥

रोवन लाग्यौ फूटि झपटि हरिचंद उठायौ ।
धूरि पोंछि मुख चूमि लाइ हिय मौन गह्यायौ ॥
कह्यौ बिप्र सौं—"सुनौ देवता, यह अबोध है ।
बालक पै न कबहुँ उचित कहुँ इतौ क्रोध है" ॥३३॥

पुनि बालक कौं बोधि कह्यौ—"माता सँग जावो" ।
कह्यौ महारानी सौं—"अब जनि देर लगावौ" ॥
चली बटुक के संग उछंग लिए बालक कौं ।
फिरि फिरि करुना-सहित बिलोकति नरपालक कौं ॥३४॥

इहिँ बिधि ओझल भई दृगनि सौं उत महरानी ।
इत आए दृग लाल किये कौसिक मुनि मानी ॥
सहित अमोघ अतंक बंक भृकुटी करि भाष्यौ ।
"अब बिलंब केहि हेत दच्छिना मैं करि राख्यौ ॥ ३५ ॥

साँझ होन मैं देर दिखाति नैंकहूँ नाहीं।
देत क्यौं न अब मूढ़ कहा सोचत मनमाहीं" ॥
परसि चरन नरनाह कह्यौ—"आधी यह लीजै।
सेसहु वेगिहिं देत छमा करुना करि कीजै" ॥३६॥

वोले ऋषि करि क्रोध—"कहा आधी लै करिहैं।
एकहि वेर विना लीन्हैं सव अव नहिं टरिहैं॥
हम व्यवहारी नाहिं लेहिं जो खंड खंड करि"।
सुनि मुनि की यह वात गई धुनि यह नभ मैं भरि॥ ७॥

"धिक सव तप, व्रत, ज्ञान तथा धिक वहुश्रुतताई।
जो हरिचंद भुआलहिं यह दुर्दसा दिखाई" ॥
सुनि यह धुनि मुनि मानि माख मुख नभ-दिसि कीन्ह्यौ।
विश्वेदेवनि निरखि साप अति रिस भरि दीन्यौ ॥३८॥

"रे छत्री-कुल-पच्छ सदा उर रच्छनहारे।
अंतरिच्छ सौं वेगिहिं गिरौ समच्छ हमारे॥
छत्रिहिं कुल मैं होहि जन्म पुनि जाइ तिहारे।
वालपनहिं मैं जाहु वहुरि दुज-हाथनि मारे" ॥३९॥

जल छोड़त इमि भापि भयौ कोलाहल भारी।
लगे गगन सौं गिरन सकल ह्वै परम दुखारी॥
यह लखि भूप सराहि तपोवल मन मैं भाख्यौ।
"साँचहि मुनि अति दयाभाव हम पर यह राख्यौ ॥४०॥

जो नहिं अव लौं दियौ साप करि दाप हृदय मैं।
पुनि वोले कर जोरि वचन वर वोरि विनय मैं॥
"दासी करि महिषीहिं दिरम आधे ही पाए।
यह लीजै तन वेचि देत अव सेस चुकाए" ॥४१॥

यौँ कहि गाँठि निवारि डारि धन महि पर दीन्ह्यौ।
तिरस्कार ताकौ करि मुनि यह उत्तर दीन्ह्यौ॥
"हम आधौ नहिं चहत एक बेरहिं सब लैहैं।
राखहु दृढ़ यह जानि और अवसर नहिं दैहैं" ॥४२॥

लागे भूप ससंक बहुत ग्राहक-गन टेरन।
लगी भीर पुनि आइ चारिहू दिसि तैं हेरन॥
डोम चौधरी मरघट कौ तिहिं अवसर आयौ।
इक सेवक कैं संग सुरा कैं रंग रँगायौ॥४३॥

कारौ तन विकराल वदन लघु दृग मतवारे।
लाल भाल पै तिलक केस छोटे घुँघरारे॥
अकबक बोलत बैन कह्यौ—"हम तुम्हैं बिकै हैं।
तुम जो माँगत मोल पाँच सौ मोहर दैहैं" ॥४४॥

यह सुनि नृप हरषाइ कह्यौ—"आऔ, इत आऔ"।
लखि सकाइ पूछ्यौ—"पै को तुम प्रथम बताऔ"॥
सो बोल्यौ—"हम डोम चौधरी मरघटवारे।
अमल हमारौ रहत नदी के दुहूँ किनारे ॥४५॥

फूलमती कौ पूजन करत कलेस-नसावन।
बिना लिएँ कर कफन देत नहिं मृतक जरावन॥
धन-तेरस की साँझ और अधिरात दिवाली।
नाचि कूदि बलि दै पूजैं मसान औ काली॥४६॥

सोई हम यह सुनौ मोल तुमकौं अब लैहैं" ॥
तुरत गाँठि सौं खोलि पाँच सौं मोहर दैहैं" ॥
यह सुनि अति दुख पाइ नाइ सिर भूप विचार्यौ।
"तब नहिँ तौ अब सबहिं भाँति विधि ब्यौंत बिगार्यौ॥४७॥

विकैं होत चंडाल विकैं विन ऋन न चुकत है।
कीजै कौन उपाय हाय नहिं धीर रुकत है॥
औ अब साँझहु होन माहिं कछु औसर नाहीं।
अरे कहूँ ह्वै जाइ न दिन इनि झगड़नि माहीं" ॥ ४८॥

पुनि ह्वै विकल कह्यौ ऋषि सौं—"करुना अव कीजै।
इहि अवसर गहि वाँह उवारि हमैं जस लीजै॥
करि निज दास जन्म भर सव सेवा करवाऔ।
हा हा पै चंडाल होन सौं हमैं वचाऔ" ॥४९॥

"कौन काज करिहै" वोले मुनि "दास हमारौ।
हम तपस्वि निज दास आपहीं तुमहिं विचारौ"॥
कह्यौ भूप पुनि—"नैंकु दया उर अंतर आनौ।
करिहैं सो सव जो आज्ञा ह्वैहै, मुनि मानौ" ॥५०॥

"सुनौ धर्म साखी सव" मुनि यह सुनत पुकार्यौ।
"मम आज्ञा पालन कौ पन देखौ यह धार्यौ"॥
कह्यो भूप—'हाँ हाँ ह्वैहैं आज्ञा सो करिहैं।
सव संसय परिहरहु प्रतिज्ञा सौं नहिं टरिहैं" ॥५१॥

वोले मुनि—"तौ होति इहै आज्ञा, न वकाऔ।
विकि याहीं कै हाथ दच्छिना अवहिं चुकाऔ"॥
सुनि यह अधर दवाइ नाइ सिर मौन भए छन।
फिर वोले—"अच्छा याही कैं कर वेचत तन" ॥५२॥

वहुरि डोम सौं कह्यौ—"सुनहु पहिलहि हम भाषत।
विकत रावरैं हाथ नियम पर ये करि राखत॥
रखिहैं भिच्छा असन वसन-हित कंवल लैहैं।
वसिहैं विलग वेगि करिहैं आयसु जो पैहैं" ॥५३॥

सो सुनि नृप के वचन नियम सब स्वीकृत कीन्हे ।
पँच सत स्वर्न खंड सेवक सौं लै गिनि दीन्हे ॥
भूपति अति सुख मानि धरे लै मुनिवर आगे ।
मुनि उठाइ कहि—'स्वस्ति' चहूँ दिसि बाँटन लागे ॥५४॥

कह्यौ भूप—"ऋषिराज, सकल अपराध छमौ अब ।
जो विलंब सौं भयो कष्ट बिसराइ देहु सब" ॥
"तजहु सँक हम भए तुष्ट लखि चरित तिहारे" ।
यौं कहि नैन नवाइ बेगि ऋषिराइ सिधारे ॥५५॥

बोले नृप भरि साँस आँसु तब पौंछि बसन सौं ।
"आयसु होहि सो करहिँ,चौधरी ! अब तन मन सौं"॥
कह्यौ चौधरी—"तुम दक्खिन मसान पर जाऔ ।
तगाँ कफन के दान लेन मैं नित चित लाऔ ॥५६॥

बिना दिए कर मृतक फुकन कबहूँ नहिँ पावै ।
धनी रंक राजा परजा कैसहु कोउ आवै ॥
घाट निवास सचेत करौ ह्वै दास हमारे" ।
यह आयसु सुनि भूप तुरत तिहिँ दिसि पग धारे ॥५७॥

लगे कफन-कर लेन जाइ तहँ इत महिदानी ।
उपाध्याय घर जाइ भई दासी उत रानी ॥
इहिँ विधि दारा संग बेचि निज अंग दास ह्वै ।
राख्यौ नृप निज रंग इंद्र भौ दंग जाहि ज्वै ॥५८॥

चौथा सर्ग

कीन्हे कंवल वसन तथा लीन्हे लाठी कर ।
सत्यव्रती हरिचंद हुते टहरत मरघट पर ॥
कहत पुकारि पुकारि—"विना कर कफन चुकाए ।
करहि क्रिया जनि कोइ देत हम सबहिं जताए" ॥ १ ॥

कहुँ सुलगति कोउ चिता कहूँ कोउ जाति वुझाई ।
एक लगाई जाति एक की राख वहाई ॥
विविध रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति ।
कहुँ चरवी सौं चटचटाति कहुँ दह दह दहकति ॥ २ ॥

कहुँ फूकन हित धर्‍यौ मृतक तुरतहिं तहँ आयौ ।
पर्‍यौ अंग अधजर्‍यो कहूँ कोऊ कर खायौ ॥
कहूँ स्वान इक अस्थिखंड लै चाटि चिचोरत ।
कहुँ कारी महि काक ठोर सौं ठोकि टटोरत ॥ ३ ॥

कहुँ सृगाल कोउ मृतक-अंग पर ताक लगावत ।
कहुँ कोउ सव पर वैठि गिद्ध चट चोंच चलावत ॥
जहँ तहँ मज्जा माँस रुधिर लखि परत वगारे ।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे ॥ ४ ॥

हरहरात इक दिसि पीपर कौ पेड़ पुरातन ।
लटकत जामैं घंट वने माटी के वासन ॥
वरपा ऋतु के काज औरहू लगत भयानक ।
सरिता वहति सवेग करारे गिरत अचानक ॥५॥

सो बोल्यौ—"हम जोग दृष्टि सौं सब कछु जानत।
करहु न नृप संकोच सोचि कछु यह उर ठानत॥
जदपि भई यह दसा तदपि हम कहत पुकारे।
महाराज सब काज आज करि सकत हमारे" ॥१८॥

कह्यौ भूप—"तौ नैंकुहु नहिं संसय उर आनौ।
होहिं हमारे जोग काज सो बेगि बखानौ"॥
कह्यौ जोगि—"बैताल, जोगिनी, बज्र, रसायन।
बहुरि पादुका, धातु-भेद, गुटिका औ आँजन ॥१९॥

सब के सिद्धि-बिधान भली भाँतिनि हम जानत।
बिघ्न उपस्थित होत आनि पै नैंकु न मानत॥
तिन्हैं निवारौ तुम तौ सिद्धि बेगि हम पावैं।
निकट सिद्धि-आकर ह्याँ सौं तहँ जाइ जगावैं" ॥२०॥

लहि उत्तर अनुकूल गयौ उत सुख सौं साधक।
इत नृप बिघनंनि रोकि होन दीन्ह्यौं नहिं बाधक॥
पुनि कछु समय बिताइ तहाँ जोगी सो आयौ।
अति आनंद सौं उमगि भूप कौं टेरि सुनायौ ॥२१॥

"महाराज, तव कृपा आज हम सब कछु पायौ।
देखौ महानिधान सिद्ध यह भयौ सुहायौ॥
जोगी जन जाके प्रभाव ह्वै अमर अमर लौं।
बिहरहिँ निपट निसंक जाइ गिरि मेरु-सिखर लौं ॥२२॥

लीजे आपहु ह्वै प्रसन्न हम सादर लाए'।
कह्यौ भूप—"बस छमा करहु हम दास पराए॥
बिन स्वामी के कहैं कछू काहू सौं लैबौ।
जानि परत हमकौं जैसे करि कपट कमैबौ" ॥२३॥

कह्यौ कपालिक—"तौ न वृथा एतौ दुख पाओ।
यासौं स्वर्न बनाइ जाइ निज दास्य छुड़ाओ" ॥
सत्यव्रती हरिश्चंद बहुरि यह उत्तर दीन्ह्यौ।
"जोगिराज निज-मत प्रकास प्रथमहिं हम कीन्ह्यौ ॥२४॥

होइ चुके जब दास गुनत तब यह मत नीकौ।
जो कछु हमकौं मिलै सबहि धन है स्वामी कौ ॥
यातैं करि अब कृपा मानि बिनती यह लीजै।
जौ कछु दैबौ होइ जाइ स्वामिहिं कौं दीजै" ॥२५॥

यह सुनि अजगुत मानि मनहिं मन धर्म सराह्यौ।
"अहो भूप हरिचंद इहाँ लौं सत्य निबाह्यौ" ॥
बहुरि बिदा लै दै असीस यह भाषि सिधार्‌यौ।
"अच्छा सोई कर जाइ जो तुम उच्चार्‌यौ" ॥२६॥

पुनि आए तिहिं ठोम अनेक देव देवी तत्र।
आठहु सिद्धि नवौ निधि द्वादसहू प्रयोग सत्र ॥
लगे कहन—"जय होइ भूप हरिचंद तिहारी।
तुम करि कृपा समस्त विघ्न-बाधा निरवारी ॥२७॥

अब जो आज्ञा होइ करहिं हैं सुबस तिहारे"।
यह सुनि गुनि मन माहिं नृपति इमि बचन उचारे ॥
"कृपा भाव यह आहि सुनहु सब भाँति तिहारे।
पराधीन हम पै यातैं यह कहत पुकारे ॥२८॥

जौ प्रसन्न तौ महासिद्धि जोगिनि पहँ जाओ।
औ सज्जन के सदन सदा निधि बास बनाओ ॥
औ प्रयोग साधकनि प्राप्त ह्वै मोद बढ़ाओ।
पै भाषत यह भेद ताहि गुनि हृदय बसाओ ॥२९॥

जो षट भले प्रयोग सहज हीँ होहिं सिद्ध सो ।
सधहिँ बिलंब सौँ पै प्रयोग षट आहिँ बुरे जो" ॥
यह सुनि भौचक ह्वै समस्त यह उत्तर दीन्हौ ।
"धन्य भूप हरिचंद, लोक-उत्तर कृत कीन्हौ ॥३०॥

तुम बिन को महि जो ऐसी संपति लहि त्यागै ।
आपुनपौ बिसराइ जगत के हित मैँ पागै" ॥
यौँ कहि दै असीस सब देवी देव सिधारे ।
पुनि नृप टहरन लगे लट्ठ काँधे पर धारे ॥३१॥

गई राति रहि सेस रँचक पौ फाटन लागी ।
नृप के अंतिम परखन की पारी तब जागी ॥
टहरत टहरत बाम अंग लागे कछु फरकन ।
औ ताही कैँ संग अनायासहिँ हिय धरकन ॥३२॥

लगे चित्त मैँ अनुभव होन असुभ संघाती ।
भई बृत्ति उच्चाट भभरि आई भरि छाती ॥
एकाएक अनेक कल्पना उठीँ भयानक ।
कियौ गुनावन भूप—"भयौ यह कहा अचानक ॥३३॥

यह असगुन क्यौँ होत कहा अब अनरथ ह्वैहै ।
गयौ कहा रहि सेस जाहि बिधना अब स्वैहै ॥
छूट्यौ राज समाज भए पुनि दास पराए ।
ऐसी महिषीहूँ कौँ उत दासी करि आए ॥३ ॥

औ अबोध बालकहूँ कौँ बिलखत सँग भेज्यौ ।
इक मरिबे कौँ छाड़ि कहा जौ नाहिँ अँगेज्यौ" ॥
फरकी बाईं आँख बहुरि सोचत बालक कौँ ।
औ यह धुनि सुनि परी परम दृढ़-ब्रत-पालक कौँ ॥३५॥

"सावधान अब वत्स, परिच्छा अंतमि है यह।
डगन न पावै सत्य हरिच्छा अंतिम है यह॥
ऐसौ कठिन कलेस सह्यौ कोऊ नृप नाहीँ।
अपनेहिँ कैसौ धैर्य धरौ याहू दुख माहीँ॥३६॥

तव पुरुपा इछ्वाकु आदि सब नभ मैं ठाढ़े।
सजल नयन धरकत हिय जुत इहिँ अवसर गाढ़े॥
संसय संका सोक सोच संकोच समाए।
साँस रोकि तव मुख निरखत विन पलक गिराए॥३७॥

देखहु तिनके सीस होन अवनत नहिँ पावैँ।
ऐसी विधि आचरहु सकल-जग-जन जस गावैँ"॥
यह सुनि नृप ह्वै चकित चपल चारिहु दिसि हेर्‌यौ।
"ऐसे कुसमय माहिँ कौन हित सौं इमि टेर्‌यौ"॥३८॥

जब कोउ दीस्यो नाहिँ हृदय तव यह निरधार्‌यौ।
"ज्ञात होत कुलगुरु सूरज यह मंत्र उचार्‌यौ॥
ह्वै आतुर निज आवन मैं करि विलँव गुनावन।
उदयाचल की ओटहि सौं यह दीन्ह सिखावन"॥३६॥

यह विचार पुनि धारि धीर दृढ़ उत्तर दीन्ह्यौ।
"महानुभाव महान अनुग्रह हम पर कीन्ह्यौ॥
तजहु संक सब अंक कलंक लगन नहिँ दैहैँ।
जब लौं घट मैं प्रान, आन करि सत्य निवैहैँ॥४०॥

एतेहि मैं श्रुति माहिँ सब्द रोवन कौ आयौ।
भूलि भाव सब और स्वामि-हित पर चित लायौ॥
लट्ठ ठोँकि तिहिँ ओर चले आतुर आहट पर॥
सांति मुनिनि की वारि गई तिहिँ घबराहट पर॥४१॥

पग उठावतहिँ भए असुभ सुभ सगुन एक सँग ।
जंबुक काटी बाट लगे फरकन दहिने अँग ॥
विगत बिषाद हर्ष-हत हिय करि धैर्य भाव भरि ।
होत हुतो जहँ रुदन तहाँ पहुँचे सुमिरत हरि ॥४२॥

देखी सहित बिलाप बिकल रोवति इक नारी ।
धरे सामुहैँ मृतक देह इक लघु आकारी ॥
कहति पुकारि पुकारि—"बत्स, मैया, मुख हेरौ ।
वीरपुत्र ह्वै ऐसे कुसमय आँखि न फेरौ ॥४३॥

हाय हमारौ लाल लियौ इमि लूटि बिधाता ।
अब काकौ मुख जोहि मोहि जीवै यह माता ॥
पति त्यागैँ हूँ रहे प्रान तव छोह सहारे ।
सो तुमहूँ अब हाय विपति मैँ छाँड़ि सिधारे ॥४४॥

अबहिँ साँझ लौँ तौ तुम रहे भली विधि खेलत ।
औचकहीँ मुरझाइ परे मम भुज मुख मेलत ॥
हाय न बोले बहुरि इतोही उत्तर दीन्ह्यौ ।
'फूल लेत गुरु हेत साँप हमकौँ डसि लीन्ह्यौ' ॥४५॥

गयौ कहाँ सो साँप आनि क्यौँ मोहु डसत ना ।
अरे प्रान किहिँ आस रह्यौ अब बेगि नसत ना ॥
कबहुँ भाग-बस प्राननाथ जौ दरसन देहैं ।
तौ तिनकौँ हम बदन कहौ किहिँ भाँति दिखैहैँ ॥४६॥

उन तौ सौंप्यौ हमैँ दसा हम यह करि दीन्ही ।
हाय हाय क्यौँ सुमन चुनन की आयसु दीन्हीँ ॥
अहो नाथ अब तौ आवौ इत नैँकु कृपा करि ।
लेहु निरखि निज हृदय-खंड कौ बदन नैन भरि ॥४७॥

प्रानदंड दै हमैं कष्ट सब बेगि निवारौ।
सुनत क्यौं न इहिं बेर फेर निज न्याव सम्हारौ॥
हाय वत्स किन सुनि पुकारि मैया की जागत।
अरे मरे हूँ पै तुम तौ अति सुंदर लागत" ॥४८॥

करि विलाप इहिं भाँति उठाइ मृतक उर लायौ।
चूमि कपोल विलोकि वदन निज गोद लिटायौ॥
हिय-बेधक यह दृस्य देखि नृप अति दुख पायौ।
सके न सहि बिलगाइ नैंकु हटि सीस नवायौ॥४९॥

लगे कहन मन माहिं—"हाय याकौ दुख देखत।
हम अपनोहूँ दुसह दुःख न्यूनहिं करि लेखत॥
ज्ञात होत काहू कारन याकौ पति छूट्यौ।
पुत्र-सोक कौ वज्र हृदय ताहू पर टूट्यौ॥५०॥

हाय हाय याकौ दुख देखत फाटति छाती।
दियौ कहा दुख अरे याहि विधना दुरघाती॥
हाय हमैं अब याहू सौं माँगन कर परिहै।
पै याके सौं हैं कैसैं यह बात निकरिहै" ॥५१

पुनि भूपति कौ ध्यान गयौ ताके रोवन पर।
विलखि विलखि इमि भाषि सीस धुनि मुख जोवनपर॥
"पुत्र! तोहिं लखि भाषत हैं सब गुनि औ पंडित।
ह्वैहै यह महराज भोगिहै आयु अखंडित॥५२॥

तिनके सो सब वाक्य हाय प्रतिकूल लखाए।
पूजा पाठ दान जप तप सब बृथा जनाए॥
तव पितु कौ दृढ़-सत्य-व्रतहु कछु काम न आयौ।
बालपनेहिं मैं मरे जथाबिधि कफन न पायौ॥५३॥

यह सुनि औरै भए भाव सब भूप हृदय के।
लगे दृगनि मैं फिरन रूप संसय अरु भय के॥
चढ़ी ध्यान पै आनि पूर्व घटना सम ह्वै ह्वै।
हिचकिचान से लगे कछुक सबकी दिसि ज्वै ज्वै॥५४॥

एतहि मैं रोवत रोवत सो बिलखि पुकारी।
"हाय आज पूरी कौसिक सब आस तिहारी॥
यह सुनि एकाएक भई धक सौं नृप छाती।
भरी भराई सुरँग माहिँ लागी जनु वाती॥५५॥

धीरज उड़्यौ धधाइ धूम दुख कौ घन छायो।
भयौ महा अंधेर न हित अनहित दरसायौ॥
विविध गुनावन महा मर्म-भेदी जिय जागे।
"हाय पुत्र! हा रोहितास्व! कहि रोवन लागे॥५६॥

"हाय भयौ हो कहा हमैं यह जात न जान्यौ।
जो पत्नी अरु पुत्रहिं अब लौं नहिं पिछान्यौ॥
हाय पुत्र तुम कहा जनमि जग मैं सुख पायौ।
कीन्ह्यौ कहा विलास कहा खेल्यौ अरु खायौ॥५७॥

हाय, हमारे काज कष्ट भोग्यौ तुम भारी।
राजकुँवर ह्वै हाय भूख औ प्यास सहारी॥
पातक ही ह्वै गयौ आज लौं जो हम कीन्ह्यौ।
नतरु पुत्र कौ सोच दुसह अति क्यौं विधि दीन्ह्यौ ५८॥

कहिहैं सब संसार हमैं अब हाय पातकी।
सहिहैं कैसैं हाय चोट पर चोट बात की!
हाय! पुत्र यह कहा गई ह्वै दसा तिहारी।
गए कहाँ तजि माता पितहिँ ससोक दुखारी॥५९॥

हम तौ साँचहिं किये सवहि अपराध तिहारे।
पै दुखिनी मैया कौं क्यौं तजि वृथा सिधारे॥
हाय-हाय जग मैं कैसे अव वदन दिखैहैं।
कहा महारानी के सौंहैं वात वनैहैं॥६०॥

जग कौं यह वृत्तांत जनावन के पहिलैं हीं।
महिपी कौं यह वदन दिखावन के पहिलैं हीं॥
जानि परत अति उचित प्रान तजि देन हमारौ।
जामैं सव संसार माहिं मुख होहि न कारौ॥६१॥

यह विचार दृढ़ करि पीपल के पास पधारे।
लीन्हीं डोरी खोलि द्वैक वंदनि करि न्यारे॥
मेलि तिन्हैं पुनि एक छोर पर फाँद वनायौ।
चढ़ि इक साखा वाँधि छोर दूजौ लटकायौ॥६२॥

पै ज्यौंहीं गर माहि फाँद दै कूदन चाह्यौ।
त्यौंहीं सत्य विचार वहुरि उर माहिं उमाह्यौ॥
"हरे हरे यह कहा वात हम अनुचित ठानी।
कहा हमैं अधिकार भई जव देह विगानी॥६३॥

जौ हम तजिवौ प्रान होइ मतिअंध विचार्‌यौ।
हाय जाय कैसैं यह मनसा-पाप निवार्‌यौ॥
दुख सौं गई हाय ऐसी ह्वै मति मतवारी।
अंतरजामी नाथ छमहु यह चूक हमारी॥६४॥

अव तो हम हैं दास डोम के आज्ञाकारी।
रोहितास्व नहिं पुत्र न सैव्या नारि हमारी॥
चलैं स्वामि के काज माहिं दृढ़ ह्वै चित लावैं।
लेहिं कफन कौ दान वेगि नहिं विलँव लगावैं॥६५॥

यह निरधारि निवारि फाँद हिय प्रौढ़ महा करि ।
उतरि आइ रानी पाछैं ठमके उर कर धरि ॥
सुन्यौ वहुरि ताकौ विलाप अति विकल करैया ।
"हाय वत्स अव उठौ हमैं टेरौ कहि मैया ॥६६॥

हाय-हाय काकैं हित अव हम असन बनैहैं ।
काकौं मुख की धूरि पौंछि कै अंक लगैहैं ॥
अव काकैं अभिमान विपति हूँ मैं सुख मानैं ।
दासी हूँ ह्वै रानिनि सौं निज कौं वढ़ि जानैं ॥६७॥

हाय वत्स तुम विन अव जग जीवति नहिं रैहैं ।
याही छन इहिं ठाम प्रान काहूँ विधि दैहैं ॥
याहि विटप मैं लाइ गरैं फाँसी मरि जैहैं ।
कै पाथर उर धारि धार मैं धाइ समैहैं" ॥६८॥

यौं कहि उठि अकुलाइ चह्यो धावन ज्यौं रानी ।
त्यौं स्वर करि गंभीर धीर वोले नृप वानी ॥
'वेचि देह दासी ह्वै तव तौ धर्म सम्हार्‌यौ ।
अव अधरम क्यौं करति कहा यह हृदय विचार्‌यो ॥६९॥

या तन पै अधिकार कहा तुमकौं सोचौ छिन ।
जानि वूझि जो मरन चलौं स्वामी-आयसु विन' ॥
यह सुनि ह्वै चैतन्य महारानी मन जान्यौ ।
'ऐसे कुसमय माँहिं कौन हित-मंत्र वखान्यौ ॥७०॥

साँचहि अनरथ होन चहत हो यह अति भारी ।
धन्य धर्मवक्ता सो जो गहि वाँह उवारी ॥
हमैं जौन अधिकार रह्यौ अव प्रान तजन कौ ।
दीसत और उपाय न दुख सौं दूरि भजन कौ ॥७१॥

तौ छाती धरि वज्र लोक-आचार सम्हारैं ।
जिन कर पाल्यौ तिन कर...! हाहा काहिं पुकारैं ॥
इहिं विधि करत विलाप काठ चुनि चिता बनाई ।
धाड़ मारि सो मृतक देह ताकैं ढिग ल्याई ॥७२॥

तब नृप बरबस रोकि आँसु, सौं हैं बढ़ी आए ।
थाम्हि करेजौ धारि धीर ये सब्द सुनाए ॥
'है मसानपति की आज्ञा कोउ मृतक फुकै ना ।
जब लौं फूकनहार कफन आधौ कर दै ना ॥७३॥

यातैं देवी देहु तुमहुँ कर, क्रिया करौ तब" ।
भर्‍यौ गगन यह सब्द भूप इमि टेरि कह्यौ जब ॥
"धन्य धैर्य बल सत्य दान सब लसत तिहारे ।
अहो भूप हरिचंद सकल लोकनि तैं न्यारे" ॥७४॥

यह सुनि सैव्या भई चकित बोली इत उत ज्वै ।
"आर्यपुत्र की करत प्रसंसा कौन हितू ह्वै ॥
पै इहि वृथा प्रसंसा हूँ सौं होत कहा फल ।
जानि परत सब सास्त्र आदि अब तौ मिथ्या छल ॥७५॥

निसंदेह सुर सकल महीसुर स्वारथरत अति ।
नातरु ऐसे धर्मी की कैसैं ऐसी गति" ॥
यह सुनि स्रवननि धारि हाथ भूपति तिहिं टोक्यौ ।
"हरे हरे, यह कहत कहा तुम"—यौं कहि रोक्यौ ॥७६॥

"सूर्य-बंस की बधू चंद्र-कुल की ह्वै कन्या ।
मुख सौं काढ़त हाय कहा यह बात अधन्या ॥
बेद ब्रह्म ब्राह्मन सुर सकल सत्य जिय जानौ ।
दोष आपने कर्महिं को निहचय करि मानौ ॥७७॥

यह निरधारि निवारि फाँद हिय प्रौढ़ महा करि ।
उतरि आइ रानी पाछैं ठमके उर कर धरि ॥
सुन्यौ वहुरि ताकौ विलाप अति विकल करैया ।
"हाय वत्स अव उठौ हमैं टेरौ कहि मैया ॥६६॥

हाय-हाय काकैं हित अव हम असन बनैहैं ।
काकौं मुख की धूरि पौंछि कै अंक लगैहैं ॥
अव काकैं अभिमान बिपति हूँ मैं सुख मानैं ।
दासी हूँ ह्वै रानिनि सौं निज कौं वढ़ि जानैं ॥६७॥

हाय वत्स तुम विन अव जग जीवति नहिं रैहैं ।
याही छन इहिं ठाम प्रान काहूँ विधि दैहैं ॥
याहि विटप मैं लाइ गरैं फाँसी मरि जैहैं ।
कै पाथर उर धारि धार मैं धाइ समैहैं" ॥६८॥

यौं कहि उठि अकुलाइ चह्यौ धावन ज्यौं रानी ।
त्यौं स्वर करि गंभीर धीर वोले नृप वानी ॥
'वेचि देह दासी ह्वै तव तौ धर्म सम्हार्‌यौ ।
अब अधरम क्यौं करति कहा यह हृदय विचार्‌यौ ॥६९॥

या तन पै अधिकार कहा तुमकौं सोचौ छिन ।
जानि वूझि जो मरन चलौ स्वामी-आयसु विन' ॥
यह सुनि ह्वै चैतन्य महारानी मन जान्यौ ।
'ऐसे कुसमय माँहिं कौन हित-मंत्र वखान्यौ ॥७०॥

साँचहि अनरथ होन चहत हो यह अति भारी ।
धन्य धर्मवक्ता सो जो गहि वाँह उबारी ॥
हमैं जौन अधिकार रह्यौ अब प्रान तजन कौ ।
दीसत और उपाय न दुख सौं दूरि भजन कौ ॥७१॥

तौ छाती धरि वज्र लोक-आचार सम्हारैं ।
जिन कर पाल्यौ तिन कर...! हाहा काहिं पुकारैं ॥
इहिं विधि करत विलाप काठ चुनि चिता बनाई ।
धाड़ मारि सो मृतक देह ताकैं ढिग ल्याई ॥७२॥

तब नृप बरबस रोकि आँसु, सौँ हैँ बढ़ी आए ।
थाम्हि करेजौ धारि धीर ये सब्द सुनाए ॥
'है ससानपति की आज्ञा कोउ मृतक फुकै ना ।
जब लौँ फूकनहार कफ़न आधौ कर दै ना ॥७३॥

यातैं देवी देहु तुमहुँ कर, क्रिया करौ तब" ।
भन्यौ गगन यह सब्द भूप इमि टेरि कह्यौ जब ॥
"धन्य धैर्य बल सत्य दान सब लसत तिहारे ।
अहो भूप हरिचंद सकल लोकनि तैं न्यारे" ॥७४॥

यह सुनि सैव्या भई चकित बोली इत उत ज्वै ।
"आर्यपुत्र की करत प्रसंसा कौन हितू ह्वै ॥
पै इहि वृथा प्रसंसा हूँ सौँ होत कहा फल ।
जानि परत सब सास्त्र आदि अब तौ मिथ्या छल ॥७५॥

निसंदेह सुर सकल महीसुर स्वारथरत अति ।
नातरु ऐसे धर्मी की कैसैं ऐसी गति" ॥
यह सुनि स्रवननि धारि हाथ भूपति तिहिं टोक्यौ ।
"हरे हरे, यह कहत कहा तुम"—यौं कहि रोक्यौ ॥७६॥

"सूर्य-बंस की वधू चंद्र-कुल की ह्वै कन्या ।
मुख सौँ काढ़त हाय कहा यह बात अधन्या ॥
वेद ब्रह्म ब्राह्मन सुर सकल सत्य जिय जानौ ।
दोष आपने कर्महिं को निहचय करि मानौ ॥७७॥

यह निरधारि निवारि फाँद हिय प्रौढ़ महा करि ।
उतरि आइ रानी पाछैं ठमके उर कर धरि ॥
सुन्यौ वहुरि ताकौ विलाप अति विकल करैया ।
"हाय वत्स अब उठौ हमैं टेरौ कहि मैया ॥६६॥

हाय-हाय काकैं हित अब हम असन बनैहैं ।
काकौं मुख की धूरि पौंछि कै अंक लगैहैं ॥
अब काकैं अभिमान विपति हूँ मैं सुख मानैं ।
दासी हूँ ह्वै रानिनि सौं निज कौं बढ़ि जानैं ॥६७॥

हाय वत्स तुम बिन अब जग जीवति नहिं रैहैं ।
याही छन इहिं ठाम प्रान काहू विधि दैहैं ॥
याहि विटप मैं लाइ गरैं फाँसी मरि जैहैं ।
कै पाथर उर धारि धार मैं धाइ समैहैं" ॥६८॥

यौं कहि उठि अकुलाइ चह्यौ धावन ज्यौं रानी ।
त्यौं स्वर करि गंभीर धीर बोले नृप बानी ॥
'वेचि देह दासी ह्वै तब तौ धर्म सम्हार्यौ ।
अब अधरम क्यौं करति कहा यह हृदय विचार्यो ॥६९॥

या तन पै अधिकार कहा तुमकौं सोचौ छिन ।
जानि बूझि जो मरन चलीं स्वामी-आयसु बिन' ॥
यह सुनि ह्वै चैतन्य महारानी मन जान्यौ ।
'ऐसे कुसमय माँहि कौन हित-मंत्र बखान्यौ ॥७०॥

साँचहि अनरथ होन चहत हो यह अति भारी ।
धन्य धर्मवक्ता सो जो गहि बाँह उबारी ॥
हमैं जौन अधिकार रह्यौ अब प्रान तजन कौ ।
दीसत और उपाय न दुख सौं दूरि भजन कौ ॥७१॥

तौ छाती धरि वज्र लोक-आचार सम्हारैं ।
जिन कर पाल्यौ तिन कर...! हाहा काहिं पुकारैं ॥
इहिं विधि करत विलाप काठ चुनि चिता बनाई ।
धाड़ मारि सो मृतक देह ताकैं ढिग ल्याई ॥७२॥

तब नृप बरबस रोकि आँसु, सौंहैं बढ़ी आए ।
थाम्हि करेजौ धारि धीर ये सब्द सुनाए ॥
'है मसानपति की आज्ञा कोउ मृतक फुकै ना ।
जब लौं फूकनहार कफन आधौ कर दै ना ॥७३॥

यातैं देवी देहु तुमहुँ कर, क्रिया करौ तब" ।
भन्यौ गगन यह सब्द भूप इमि टेरि कह्यौ जब ॥
"धन्य धैर्य बल सत्य दान सब लसत तिहारे ।
अहो भूप हरिचंद सकल लोकनि तैं न्यारे" ॥७४॥

यह सुनि सैब्या भई चकित बोली इत उत ज्वै ।
"आर्यपुत्र की करत प्रसंसा कौन हितू ह्वै ॥
पै इहि वृथा प्रसंसा हूँ सौं होत कहा फल ।
जानि परत सब सास्त्र आदि अब तौ मिथ्या छल ॥७५॥

निसंदेह सुर सकल महीसुर स्वारथरत अति ।
नातरु ऐसे धर्मी की कैसैं ऐसी गति" ॥
यह सुनि स्त्रवननि धारि हाथ भूपति तिहिं टोक्यौ ।
"हरे हरे, यह कहत कहा तुम"—यौं कहि रोक्यौ ॥७६॥

"सूर्य-बंस की बधू चंद्र-कुल की ह्वै कन्या ।
मुख सौं काढ़त हाय कहा यह बात अधन्या ॥
वेद ब्रह्म ब्राह्मन सुर सकल सत्य जिय जानौ ।
दोष आपने कर्महिं को निहचय करि मानौ ॥७७॥

मुख सौं ऐसी बात भूलि फिरि नाहिं निकारौ ।
होत बिलँब, दै हमैं कफन करि क्रिया पधारौ" ॥
सुनि यह अति दृढ़ बचन महिपि निज नाथहिं जान्यौ ।
कछु सुभाव कछु स्वर कछु आकृति सौं पहिचान्यौ ॥७८॥

परी पायँ पर धाइ, फूटि पुनि रोवन लागी ।
औरहु भई अधीर अधिक आरति जिय जागी ॥
कह्यौ हुचकि—"हा नाथ ! हमैं ऐसो बिसरायौ ।
कहाँ हुते अब लौं कबहूँ नहिं वदन दिखायौ ॥७९॥

हाय आपने प्रिय सुत की यह दसा निहारौ ।
लूट गई हम हाय करहिं अब कहा उचारौ" ॥
सुनि भूपति गहि सीस उठाइ विविध समुझायौ ।
"प्रिये, न छाँड़ौ धैर्य लखौ जो दैव लखायौ ॥८०॥

अब बिलंब कौ समय नाहिं चेतौ मत रोवौ ।
भोर होनही चहत उठौ अवसर जनि खोवौ ॥
कोउ इत उत तैं आनि कहूँ पहिचानि जु लैहै ।
इक लज्जा बचि रही अहै सोऊ चलि जैहै ॥८१॥

चलौ हमैं दै कफन क्रिया करि भौन सिधारौ ।
सुनौ वीर-पत्नी हौ धीरज नाहिं बिसारौ ॥
यह सुनि सैव्या कह्यौ बिलखि अतिसय मन माहीं ।
"नाथ, हमारे पास हुतौ बस्तर कोउ नाहीं ॥८२॥

अंचल फारि लपेटि मृतक फूँकन ल्याई हैं ।
हा हा ! एती दूर बिना चादर आई हैं ॥
दीन्हैं कफनहिं फारि लखहु सब अंग खुलत हैं ।
हाय ! चक्रवर्ती कौ सुत बिन कफन फुकत हैं ॥८३॥

कह्यौ भूप—"हम करहिँ कहा हैं दास पराए।
फुकन देन नहिँ सकत मृतक बिन कर चुकवाए॥
ऐसे ही अवसर मैं पालन धर्म काम है।
महा बिपति मैं रहै धैर्य सोई ललाम है॥८४॥

बेंचि देह हूँ जिहिँ सत्यहिँ राख्यौ, मन ल्याओ।
एक टूक कपड़े पर तेहिँ जनि आज छुड़ाओ॥
फाड़ि कफन तैं अर्ध बसन कर बेगि चुकाओ।
देखौ चाहत भयौ भोर जनि देर लगाओ"॥८५॥

सुनि महिषी बिलखाइ कफन फारन उर ठायो।
पै ज्यौंहीं उत "जो आज्ञा" कहि हाथ बढ़ायौ॥
त्यौंहीं एकाएक लगी काँपन महि सारी।
भयौ महा इक घोर सब्द अति बिस्मयकारी॥८६॥

बाजे परे अनेक एकही बेर सुनाई।
बरसन लागे सुमन चहूँ दिसि जय-धुनि छाई॥
फैलि गई चहुँ ओर बिज्जु कैसी उँजियारी।
गहि लीन्ह्यौ कर आनि अचानक हरि असुरारी॥८७॥

लगे कहन दृग वारि ढारि "बस, महाराज बस।
सत्य धर्म की परमावधि ह्वै गई आज बस॥
पुनि-पुनि काँपति धरा पुन्य-भय लखहु तिहारे।
अब रच्छहु तिहुँ लोक मानि मन बचन हमारे॥८८॥

करि दंडवत प्रनाम कह्यौ महिपाल जोरि कर।
"हाय! हमारे काज कियौ यह कष्ट कृपाकर"॥
एतोही कहि सके बहुरि नृप-गर भरि आयौ।
तब सैब्या सौं नारायन यह टेरि सुनायौ॥८९॥

"पुत्री अब मत करौ सोच सब कष्ट सिरायौ।
धन्य भाग हरिचंद भूप लौं पति जो पायौ"॥
रोहितास्व की देह ओर पुनि देखि पुकारयौ।
"उठो भई बहु बेर! कहा सोवन यह धारयो?" ॥९०॥

एतौ कहतहिं भयौ तुरत उठिकैं सो ठाढ़ौ।
जैसैं कोऊ उठत बेगि तजि सोवन गाढ़ौ॥
लग्यौ चकित ह्वै चारहु ओर स-विस्मय देखन।
कबहुँ मातु अरु कबहुँ पिता कौ बदन निरेखन॥९१॥

नारायन कौं लखि प्रनाम पुनि सादर कीन्ह्यौ।
मात-पिता के बहुरि धाइ चरननि सिर दीन्ह्यौ॥
अजगुत आनंद औ करुना पुनि प्रेम समाए।
दंपति सके न भापि कछू दृग आँसु बहाए॥९२॥

सत्य, धर्म, भैरव, गौरी, सिव, कौसिक, सुरपति।
सब आए तिहिं ठाम प्रसंसा करत जथामति॥
दंपति पुत्र समेत सबहिं सादर सिर नायौ।
तब मुनि बिस्वामित्र दृगनि भरि बारि सुनायौ॥९३॥

"धन्य भूप हरिचंद लोक-उत्तर जस लीन्ह्यौ।
कौन सकत करि महाराज जैसौ ब्रत कीन्ह्यौ॥
केवल चारहु जुग मैं तव जस अमर रहन हित।
हम यह सब छल कियौ छमहु सो अति उदार-चित॥९४॥

लीजै संसय त्यागि राज सब आहि तिहारौ।
कह्यौ धर्म तब "हाँ हमकौं साखी निरधारौ"॥
बोलि उठ्यौ पुनि सत्य "हमैं दृढ़ करि धारयौ जो।
पृथ्वी कहा त्रिलोक राज सब है नाही को"॥९५॥

गद्गद स्वर सौं सम्हरि बहुरि बोले त्रिपुरारी।
"पुत्र! तोहिं दै कहा लहैं हमहूँ सुख भारी॥
निज करनी हरि कृपा आज तुम सब कुछु पायौ।
ब्रह्मलोकहूँ पै अविचल अधिकार जमायौ॥९६॥

तदपि देत हम यह असीस "कुल-कीर्ति तिहारी।
जब लौं सूरज चंद रहैं तिहुँ पुर उजियारी॥
तव सुत रोहितास्व हूँ होहि धर्म-थिर-थापी।
प्रबल चक्रवर्त्ती चिरजीवी महा प्रतापी"॥९७॥

तब अति उमगि असीस दीन्हि गौरी सैब्या कौं।
लक्ष्मी करहि निवास तिहारैं सदन सदा कौं॥
पुत्रवधू सौभाग्यवती सुभ होहि तिहारी।
तव कीरति अति विमल सदा गावैं सुर-नारी॥९८।

यह असीस सुनि दंपति कौं दंपति सिर नायौ।
तैसहिं भैरवनाथ वाक मैं बाक मिलायौ॥
"औ गावहिं कै सुनहिं जु कीरति विमल तिहारी।
सो भैरवी-जाचना सौं नहिं होहिं दुखारी॥९९॥

देवराज तब लाज सहित नीचे करि नैननि।
कह्यौ भूप सौं हाथ जोरि अतिसय मृदु बैननि॥
"महाराज, यह सकल दुष्टता हुती हमारी।
पै तुमकौं तौ सोऊ भई महा उपकारी॥१००॥

स्वर्ग कहै को? तुम अति श्रेष्ठ ब्रह्म-पद पायौ।
अब सब छमहु दोष जो कछु हमसौं बनि आयौ॥
लखहु तिहारे हेत स्वयं संकर बरदानी।
उपाध्याय ह्वै बने बटुक नारद मुनि ज्ञानी॥१०१

कल-काशी

श्रीकैलास बिहाइ आइ जहँ बसत पुरारी ।
गिरिजाहू सुख लहति चहत आनँद-घन भारी ॥
हाट-बाट के ठाट लखत दोउ बालक जो हैं ।
हरित भरित लहि भूमि झूमि नंदीगन मोहैं ॥
तिहि कासी की करि बंदना ताही कौ बरनन करौं ।
रज ध्यान सिद्ध अंजन समुझि हरषि हृदय आँखिन धरौं ॥

परम रम्य सुख-रासि कासिका पुरी सुहावनि ।
सुर - नर - मुनि - गंधर्व-यच्छ-किन्नर मन भावनि ॥
संभु सदासिव बिस्वनाथ की अति प्रिय नगरी ।
बेद पुराननि माँहिं गनित गुनगन मैं अगरी ॥ १ ॥

तीन लोक दस-चार भुवन तैं निपट निराली ।
निज त्रिसूल पर धारि संभु जो जुग-जुग पाली ॥
जाके कंकर मैं प्रभाव संकर कौ राजै ।
जग - किंकर जिहिं जानि भयंकर दूरहि भाजै ॥ २ ॥

जामैं तजत सरीर पीर जग जनम-मरन की ।
छूटति बिनहिं प्रयास त्रास जम-पास परन की ॥
जामैं धारत पाय हाय करि कूटत छाती ।
पातक पुंज परात गात के जनम सँघाती ॥ ३ ॥

जाके गुन गंभीर-नीर-निधि के तट ही थल ।
लुटत पुंज के पुंज मंजु मुकती मुकताहल ॥
पै जाके वासी उदार चित सुकृति सभागे ।
लघु वराटिका सम समभत निज आनँद आगे ॥ ४ ॥

सुचि सुरराज-समाज जाहि सेवन कौं तरसत ।
दरस परस लहि सरस आँस आनँद के वरसत ॥
ब्रह्मा विस्नु महेस सेस निज वैभव भूले ।
धरि धरि वेस असेस जहाँ विचरत सुख फूले ॥ ५ ॥

सुठि सुढार त्रिपुरारि पिनाकाकार वसी है ।
उत्तर वरुना औ दक्खिन कौ कोट असी है ॥
उत्तर-वाहिनि गंग प्रतिंचा प्राची दिसि वर ।
उन्नत मंदिर मंजु सिखर-जुत लसत प्रखर सर ॥ ६ ॥

वम-वम की हुंकार धनुष-टंकार पसारै ।
जाकौ धमक-प्रहार पापगिरि-हार विदारै ॥
जिहि पिनाक की धाक धरामंडल मैं मंडित ।
जासौं होत त्रिताप-दाप त्रिपुरासुर खंडित ॥ ७ ॥

घेरी उपवन वाग वाटिकनि सौं सुठि सोहै ।
ज्यौं नंदन-वन वीच वस्यौ सुरपुर मन मोहै ॥
वापी कूप तड़ाग जहाँ तहँ विमल विराजैं ।
भरे सुधा सम सलिल रसिकजन हिय लौं भ्राजैं ॥ ८ ॥

धवल धाम अभिराम अमित अति उन्नत सोहैं ।
निज सोभा सौं वेगि विस्वकर्मा मन मोहैं ॥
ध्वजा पताका तोरन सौं बहु भाँति सजाए ।
चित्रित चित्र विचित्र द्वार पर कलस धराए ॥ ९ ॥

हाट बाट घर घाट घने अति बिसद बिराजैं ।
गुदड़ी गोला गंज चारु चौहट छबि छाजैं ॥
नीकी निपट नखास सुघर सट्टी सब सोहैं ।
कल कटरा वर बार मंजु मंडी मन मोहैं ॥१०॥

चारहु बरन पुनीत नीतजुत बसत सयाने ।
सुंदर सुघर सुसील स्वच्छ सदगुन सरसाने ॥
जातिधर्म कुलधर्म मर्म के जाननिहारे ।
मर्यादा-अनुसार सकल आचार सुधारे ॥११॥

सब बिधि सबहिं सुपास सुलभ कासी-बासिनि कौं ।
निज-निज रुचि अनुसार लहति सब सुख-रासिनि कौं ॥
असन बसन बर बाम धाम अभिराम मनोहर ।
ज्ञान गान गुन मान सकल सामग्री बर ॥१२॥

लहहिं साधु सतसंग ज्ञानरत बिमल बिवेकहिं ।
बिद्यावाही पढ़हिं ग्रंथ गुनि गूढ़ि अनेकहिं ॥
पावहिं सद उपदेस धर्म-रत कर्म सुधारैं ।
जोगी जंगम साधि जोग जप तप मन मारैं ॥१३॥

धन-रत करि ब्यापार बिबिध धन-भार भरावत ।
सिल्पकार अति निपुन कला कौ सार सरावत ॥
कामिनि हूँ कौं कुपथ चलत नहिं खलत अँधेरी ।
दीपति दामिनि सरिस बार-कामिनि बहुतेरी ॥१४॥

कहुँ सज्जन द्वै चार चारु हरि-जस-रस राँचे ।
पुलकित तन मन मुदित सील सद्गुन के साँचे ॥
भक्ति-भाव भरपूर धूर भव-बिभव बिचारे ।
भगवत - लीला - ललित - मधुर - मदिरा मतवारे ॥१५॥

हरि-हर-गुन-गान गूढ़ उमगि अति गुनत गुनावत ।
पावन चरित अमंद दंदहर सुनत सुनावत ॥
पाप-ताप के दाप रह्यौ जो तपि महि हीतल ।
प्रेम-वारि दृग ढारि करत ताकौं सुचि सीतल ॥१६॥

कहुँ परम्हंस प्रसंस वंस मन-मानसचारी ।
जीवन मुक्ति महान मंजु मुकता अधिकारी ॥
उज्ज्वल प्रकृति प्रवीन हीन-भव-पंक पच्छधर ।
जगज्जाल-जंजाल-गहन-वन अगम पारकर ॥१७॥

गौरव - गूढ़ाचल - उतंग - वर - शृंग - विहारी ।
सुभ गति विमल विवेक एकरस दृढ़-व्रत-धारी ॥
दलन मोह-तम-तोम भासकर भावत नीके ।
विसद विसुद्धानंद रूप भूपन पुहुमी के ॥१८॥

सिखा सूत्र ओ दंड कमंडल सव करि न्यारे ।
दिव्य सरीर सतोगुन जनु सोहत तन धारे ।
द्वैत तथा अद्वैत विसिष्टाद्वैत प्रचारत ।
ब्रह्म जीव वर छीर नीर कौ न्याव निवारत ॥१९॥

कहुँ पंडित सु-उदार वुद्धि-धर गुन-गन मंडित ।
सास्त्र सस्त्र संग्राम करन सुरगुरु-मद खंडित ॥
विद्या-वारिधि मथन माहिँ मंदर अति नीके ।
कठिन करारे वेन विदित व्यौहार नदी के ॥२०॥

दलन विपच्छिनि-पच्छ माहिँ अति दच्छ राम से ।
नैयायिक अति निपुन वेद-वेदांत धाम से ।
षट सास्त्रनि कौ गूढ़ ज्ञानधर सिवकुमार से ।
वैयाकरन विदग्ध सुमति वारिधि अपार से ॥२१॥

ज्योतिषसुधा मयूष-आगार सुधाकर वर से।
पानिनि ग्रंथित सूत्र विभूषित दामोदर से॥
फलादेस मरजाद मृदुल अवधेस सरीखे।
गननागन मैं गुरु गनेस से अति मति तीखे॥२२॥

आयुर्वेद प्रभेद परम भेदी गनेस से।
रस-प्रयोग आचार्य चारुमति त्रिवकेस से॥
सुरुचि सौम्य साहित्य सलिलधर गंगाधर से।
रोचक कवितारत्न रुचिर गृह रतनाकर से॥२३॥

गौर गात अति गोल उदर त्रिवली जुत भावै।
परम तेज को सदन वदन मन मोद वढ़ावै॥
गोखुर-परिमित सिखा ग्रंथिजुत सिर छवि छाजै।
सुंदर भाल विसाल भव्य अति तिलक विराजै॥२४॥

सुभ्र जग्यउपवीत मँज्यौ मेले कल काँधे।
कोरदार दुपटा काँखा-सोती करि बाँधे॥
नागपूर की नवल धवल धोती कटि धारे।
बैठे गादी पैं उसीस के कछुक सहारे॥२५॥

सिष्य पाँनि कौं गूढ़ ग्रंथ बहु भाँति पढ़ावत।
अन्वयार्थ सब्दार्थ भरे भावार्थ बतावत।
धर्म कर्म व्यवहार विषय जो पूछन आवैं।
तिनकौं करहि प्रबोध भली विधि बोध बढ़ावैं॥२६॥

कहुँ पौरानिक सूत सरिस बक्ता ग्रंथनि के॥
यथारीति मर्मज्ञ कथा पावन पंथनि के॥
भारत भाव अमोल महाधन रमानाथ से।
रामचरितमानस निबंध बंधन सुगाथ से॥२७॥

लटपट लपट्यौ सीस फवत फेंटा जरतारी।
केसर रोचन तिलक भाव भावत रुचिकारी॥
गोरे गात सुहात चारु चौकस चौबंदी।
लोचन ललित लखाति ललक लीला आनंदी॥२८॥

सोहति बच्छस्थल विसाल फूलनि की माला।
वाम कंध सौं ढरि जानुन सौं दर्‍यौ दुसाला॥
पोथी-वेठन खोलि चारु चौकी पर धारी।
धूप दीप फल फूल द्रव्य की सजी पत्यारी॥२९॥

वालमीकि अरु व्यास वदित वानी वर वाँचत।
भव्य भाव वहु श्रोतनि के उर अंतर खाँचत॥
इक-इक भावनि के वहु वहु विधि पुष्ट करन कौं।
कथा प्रसंग अनेक कहत भ्रमजाल दरन कौं॥३०॥

हरिकीर्तन की कहूँ मंडली सुघर सुहाई।
हरि-हर-गुन-गन-गान वितान तनति सुखदाई॥
काम क्रोध मद मोह दनुजदल दलन सदाहीं।
रामचंद्र से वचन वान साधक जिहि माहीं॥३१॥

चटकीली अति पाग कुसुम रँग सिर पर वाँधे।
साजे वागा अंग द्रवित दुपटा कल काँधे॥
दिव्य देह वर वदन ललित लोचन अरुनारे।
भाल विसाल सुलाल तिलक कुंकुम कौ धारे॥३२॥

भगवत-लीला-गान तानपूरा कर लीन्हे।
करत विविध मंजीर मृदंगहु कौ संग दीन्हे॥
करि-करि वर व्याख्यान वहुरि भावहिं दरसावैं।
उदाहरन दृष्टांत आनि वहु रस सरसावैं॥३३॥

श्रोतनि की भरि भीर रही चारिहु दिसि भारी ॥
राव रंक युव बृद्ध मूर्ख पंडित नर-नारी ॥
पै कोउ कहत न बैन नैन बक्तादिसि कीन्हैं ।
तन्मय ह्वै सब सुनत मौन मुद्रा मुख दीन्हैं ॥३४॥

अग्निहोत्र की लपट झपटि पातक कहुँ जारै ।
स्वाहा ध्वनि की दपट रपटि कुल-कुमति बिदारै ॥
सब सुरराज-समाज सदा जासौं सुख पावै ।
प्रजा लहै कल्यान बारि बादर बरसावै ॥३५॥

लसत धाम अभिराम दिव्य गोमय सौं लीपे ।
कुंकुम चंदन चारु चून ऐपन सौं टीपे ॥
तिल तंदुल यव पात्र घने घृत भांड भराए ।
असन बसन साहित्य सकल जिन माहिं धराए ॥३६॥

गोमय औ पलास समिधा कहुँ सूखत सोहैं ।
कहूँ दर्भ के मूठ श्रुवा लटकत मन मोहैं ॥
बँधी बरोठे बीच बत्सजुत सुरभि सुहाई ।
सुंदर सुघर सुसील स्वच्छ सुभ सुख सरसाई ॥३७॥

जाके अंगनि बीच बसति देवनि की श्रेनी ।
सेवति जाहि उमाहि सुघर घरनी सुखदेनी ॥
रोचन रंजित पुच्छ रजत शृंगनि चढ़ि चमकै ।
परी पीठि पर लाल झूल झबिया-जुत झमकै ॥३८॥

बैठे होता दिव्य देह बर हवनकुंड पर ।
भाल बिसाल त्रिपुंड धरे घन सिखा मुंड पर ॥
पहिरे परम पुनीत पाटमय पाढ़र धोती ।
ओढ़ि उपरना अमल अच्छ अति काँखासोती ॥३९॥

मौंजी औ उपवीत अच्छ कंठा कल धारे।
वेद विदित ब्यौहार मर्म के जाननिहारे॥
करत यथाविधि तृप्त हव्यवाहन कौं रुचि करि।
साधत सब संसार हेत सुखसार सुमिरि हरि॥४०॥

कहूँ पाँति की पाँति विप्रगन सहज सुभाए।
कलित कुसासन पै बैठे मन मोद मढ़ाए॥
सुंदर गोरे गात वस्त्र उपवस्त्र सँवारे।
सिखा सूत्र औ भस्म रीति-जुत अंगनि धारे॥४१॥

लघु दीरघ प्लुत औ उदात्त अनुदात्त सकल स्वर।
करन्यास के सहित सुघर विधि साधि सविस्तर॥
सहित विरति विस्राम सामगायन अनुरागत।
जाकैं प्रबल प्रभाव दुरित दुरि दूरहि भागत॥४२॥

कहूँ साधु संतनि के सोहत सुभग अखारे।
घंटा संख मृदंग बजत जहँ साँझ सकारे॥
होति आरती पूज्य देव गुरु ग्रंथ सु-गथ की।
पूजा अर्चा भाँति भाँति सों निज निज पथ की॥४३॥

चहुँ दिसि द्विघट दलान देखियत दीरघ कोठे।
भरे भव्य भंडार बिसद बर बने बरोठे॥
आँगन बीच नगीच कूप के मंदिर राजत।
जापै चढ़्यौ निसान सान सौं फबि छबि छाजत॥४४॥

कहूँ कढ़ाह प्रसाद स्वादु लगि भोग बँटत है।
कहूँ मालपूवा रसाल तिहुँ काल कटत है॥
बहुरि बनत मध्याह्न समय बहु रुचिर रसोई।
तब भोजन सब लहत रहत तहँ जब जो कोई॥४५॥

आवत अभ्यागत अनेक मधुकर-व्रतधारी।
पंच भवन भ्रमि पंचभूत पोषन अधिकारी॥
आँचल औ कौपीन कसे कटि कर झोली गहि।
लै मधुकरी प्रथम जात सो नारायन कहि॥४६॥

बैठि साधु द्वै चार जहाँ जहँ सुचि मतिवारे।
वदन तेज की छटा जटा सिर सुंदर धारे॥
कोउ काषायी बसन पहिरि कोउ सिमिरिष रंगी।
सज्जन सुघर सुजान सीलसागर सतसंगी॥४७॥

कोउ हरि-लीला कहत सुनत पुलकत पुलकावत।
कोऊ न्याय बेदांत बरनि मुलकत मुलकावत॥
कोउ सितार करतार मेलि हरि-गुरु-गुन गावत।
कोउ उमंग सौं संग संग ढोलक ढमकावत॥४८॥

संन्यासिनि के कहुँ महान मंजुल मठ राजैं।
दर-दलान कोठे जिनमैं चहुँ दिसि छवि छाजैं॥
छत छतरी वर बंद खंभ गेरू रँग राखे।
अलकतरे रँग कल किवार सित सोहत पाखे॥४९॥

बट पीपर औ मौलसिरी के विटप सुहाए।
सुखद सुसीतल छाँह देत अति अजिर लगाए॥
जिनके नीचे लसत लिए कर दंड कमंडल।
विसद विराजत जम-अदंड दंडनि कौ मंडल॥५०॥

आँचल औ कौपीन धरे काषाय रँगाए।
भाल विसाल त्रिपुंड मुंड सह सिखा मुँड़ाए॥
सिव हर-हर धुनि धुनत गुनत सिव-गुन-गन नीके।
कीट भृंग के न्याव भए सिव रूप मही के॥५१॥

महामंत्र कोउ भनत कोऊ नारायन टेरत।
कोऊ वेद वेदांत वदित सिद्धांत निवेरत॥
करि अनुराग सभाग कोऊ गुरु-चरन-तरनि पर।
करत दंडवत दौरि दंड निज धरि धरनि पर॥५२॥

धर्म स्वरूप उदार भूप तहँ छेत्र चलावत।
तामैं इच्छा पूरि भूरि भिच्छा सब पावत॥
साहूकार उदार सेठ श्रद्धा सरसाए।
राजा राउत राव भक्ति के भाव भराए॥५३॥

कबहुँ तहाँ वर वेष भूरि भोजन ठनवावत।
रसना रंजन रुचिर विविध व्यंजन बनवावत॥
सकल जथा करि विनय यथाविधि न्यौति बुलावत।
पुलकित अंग उमंग संग देखत उठि धावत॥ ५४॥

पग पखारि कर ढारि वारि सादर बैठारत।
स्वजन सहित कर व्यजन लिए स्रम स्वेद निवारत॥
आत्म-ज्ञान गंभीर नीर निधि थाहनहारे।
पंच तत्त्व कौ तत्त्व भली विधि ठाहनहारे॥५५॥

पावन परम समाज जुर्‌यौ तकि पातक हहरैं।
दुख वारिद दुर्भाग्य दुरति दुर्मति टरि टहरैं॥
सोभा सुभग ललाम लाहु लोचन कौं भावत।
इत उत तैं बहु लोग ललकि दरसन कौं आवत॥५६॥

पातल दोने दिव्य विमल कल कदली दल के।
परत पाँति के पाँति स्वच्छ धोए सुचि जल के॥
भाँति भाँति के जात पुनीत पदारथ परसे।
सुंदर सोंधे स्वादु स्वच्छ सब रस सौं सरसे॥५७॥

बासमती कौ भात रमुनिया दाल सँवारी।
कढ़ी पकौरी परी कचौरी मोयनवारी॥
दधि-भीने बर बरे वरी सह साग निमोने।
पापर अति परपरे चने चरपरे सलोने॥५८॥

नीबू आम अचार अम्ल मीठे रुचिकारी।
चटनी चटपट अ-रस स-रस लटपट तरकारी॥
मोदक मोतीचूर जाल-जुत मालपुवा तर।
मेवामय श्रीखंड केसरिया खीर मनोहर॥५९॥

हर हर हर हर महादेव धुनि धाम मढ़ावत।
कृपा मंद मुसकानि आनि आनंद बढ़ावत॥
पंच कवल करि अँचै आचमन रुचि उपजावत।
अति आमोद प्रमोद भरे भिच्छा सब पावत॥६०॥

अंचल छाँधे सहित पाय काषाय रँगाए।
निज निज आसन ओर चलत सुठि सुख सरसाए॥
सो सोभा सुभ चहत बनै कछु कहत बनै ना।
मनहुँ अमंगल जीति चली मंगल की सैना॥६१॥

कहूँ सकल सुखधाम धर्मसाले मनभाए।
सब सुविधा कौं साधि व्यौंत सौं बिसद बनाए॥
चहुँ दिसि दीसत दिव्य रचे लघु दीरघ कोठे।
जिनके आगे अति विसाल बर बने बरोठे॥६२॥

एक ओर चौकन की राजति रुचिर पँत्यारी।
गोमय माटी मृदुल मेलि सुचि स्वच्छ सँवारी॥
आँगन माँहिं अनूप कूप सुंदर सुखदाई।
जाकी जगति सुरूप मनहु जल-भूप बनाई।६३॥

विद्यारत वर विप्र ब्रह्मचारी व्रत बाहे।
वसत तहाँ प्रमुदित प्रसन्न उन्नति उत्साहे॥
बहु विधि कष्ट उठाय ठाय निज इष्टहिं साधत।
यथा लाभ लहि असन वसन बानी आराधत॥६४॥

बड़े भोर हठि उठत मोरि मुख सुख-निद्रा सौं॥
जद्यपि पाये पूर्व रात्रि हू दुख-निद्रा सौं॥
सकल सौच करि तुरत फुरत गंगा दिसि धावत।
तहँ अन्हाय निर्वाहि नित्य निज-निज थल आवत॥६५॥

सघन सिखा सुठि ग्रंथि भाल पर तिलक लगाए।
हाथ सुपावन पाय पूरि लोटा लटकाए॥
कटि धोती पनरँगी धरे गमछा कल काँधे।
उतर्‌यौ वसन पछारि गारि आसन मैं बाँधे॥६६॥

पुनि पुंजनि के पुंज पधारत पाठ पढ़न कौं।
विद्यावाट विराट विकट विय वेगि बढ़न कौं॥
बहु विधि वाद विवाद विनोद करत मन भाए।
पोथी चोंगा माहिं राखि निज काँख दबाए॥६७॥

कोउ गुरु-गृह-दिसि कोऊ पाठसाला कौं धावत।
निज-निज इच्छा सरिस सास्त्र सिच्छा तहँ पावत॥
पढ़ि-पढ़ि परम प्रसन्न पलटि पुनि डेरनि आवत।
आपस मैं बतरात बताई बात लगावत॥६८॥

तब सब जथा-सँजोग उदर-पोपन विधि बाँधत।
कोउ छेत्रनि दिसि चलत धाम कोउ निज कर राँधत॥
कोउ कहुँ न्यौतो पाइ चलत अति चपल चाह सौं।
आनन अन्न प्रसन्न-वदन कोउ उठि उछाह सौं॥६९॥

इहिं बिधि सुविधा बहु बिधान सौं बिबिध लगावत।
त्रितिय जाम बिस्राम भोजनादिक करि पावत॥
जहँ तहँ जित तित जाइ आइ बतराय बैठि उठि।
करि ठठोलि हँसि बोलि वितावत सेष दिवस सुठि॥७०॥

अथवत भानु प्रमान आनि सब जुरत तहाँ पुनि।
संध्या-बंदन करत यथाबिधि सुमिरि देव-मुनि॥
करि-करि कछु जलपान जहाँ तहँ दीपक धरि-धरि।
भरि भरि सब जलपात्र पढ़न बैठत कहि हरि-हरि॥७१॥

कोऊ न्याय बेदांत गुनत कोउ गणित लगावत।
कोऊ काव्य साहित्य संहिता कोउ सुरझावत॥
कोउ बाँधे धुनि धमकि पढ़े पाठहिं परिपोषत।
अमरसिंह को कोप सूत्र पानिनि के घोषत॥७२॥

कहुँ धनिकनि के धवल धाम अभिराम सुहाए।
चौखँड पँचखँड सप्तखंड बर बिसद बनाए॥
गृह वाटिका समेत सुघर सुंदर सुखदाई।
जिनकी रचना रुचिर निरखि मति रहति लुभाई॥७३॥

बारहदरी विसाल अपर घर विविध सँवारे।
तिदरे औ चौदरे पँचदरे परम उज्यारे॥
दुहरे दिव्य दलान रचे पाषान खंभ पर।
आँगन परम प्रसस्त प्राकार सविस्तर॥७४॥

चित्रित चित्र विचित्र चित्रसारी रँगवारी।
उन्नत अनिल अवास अटित आकास अटारी॥
दुहरे तिहरे सिसिर सुखद हम्माम मनोहर।
ग्रीषम हित सीरे उसीर-गृह तहखाने वर॥७५॥

देस काल उपभोग जोग सब रुचिर रँगाए।
लता सुमन पसु पच्छि चित्र सौं चारु चिताए॥
सब सुविधा कौं सोधि सजे सब सुघर सुहाए।
विविध भाँति बहुमूल्य साज सौं अति मन भाए॥७६॥

झाड़ कमल कल विमल चारु चित्रत बहुरंगी।
विसद बैठकी वृच्छ स्वच्छ मंजुल मिरदंगी॥
सुर नर मुनि के चारु चित्र चख आनँद-दाई।
फूलदान चंगेर महक जिन सौं उठि छाई॥७७॥

पँचरँग परदे पटापटी के पाट सँवारे।
चारु चीन की चिकैं चित्र निज पर अति प्यारे॥
छीर-फेन सम स्वच्छ बिछायत अच्छ बिछाई।
परम नरम गादी मखमल की ललित लगाई॥७८॥

गिलिम गलीचे कल कालीन पीन पारस के।
सुघर सोजनी नव नमदा हरता आरस के॥
छोटे बड़े उसीस धरे दस-बीस सँवारे।
जिनपैं उठकत होत चैन लहि नैन घुमारे॥७९॥

करत सुगंधित सदन अगर-बाती कहुँ सोहैं।
कहुँ फूलनि की ललित लरैं लटकत मन मोहैं॥
कहुँ स्यामा कहुँ अगिन कोकिला कहुँ कल गावैं।
कहुँ चकोर कहुँ कीर सारिका सब्द सुनावैं॥८०॥

कमला-कृपा-कटाच्छ लच्छ तहँ यच्छराज से।
सुघर सखा सुचि दासि दास लै सुर-समाज से॥
बैभव भव प्रभुता नरेस प्रभु नारायन से।
संपति सलिल अपार सार मोती विधुगन से॥८१॥

माधौलाल समान मान-धन-मधु सौं छाके।
कृस्नचंद से सौम्य प्रीति-भाजन कमला के॥
साहूकार पहार धरे धन के गिरिधर से।
दाऊ से व्यवहार-दच्छ सुख संपति करसे॥८२॥

सुघर सोम से भाल विभूषन वैभव भव के।
रामचंद से सहज करन कारज गौरव के॥
नित नव उत्सव ठानि मानि आनँद मनभाए।
विलसत बिबिध बिलास हास सुखरासि सुहाए॥८३॥

षट् रस व्यंजन तुष्टि पुष्टिदायक स्रमहारी।
लेह पेय अरु चर्व चोष रसना रुचिकारी॥
वासित वर बरास मृगमद केसर गुलाब सौं।
सजे रजतमय वासन मैं सब सुघर फाव सौं॥८४॥

माखन मिश्री मँजु मधुर मेवा मनमाने।
देस देस के फल बिसेस वहु व्यय करि आने॥
हँसमुख चतुर सुआर परौसत कहि मृदु वानी।
परत दीठि जिहिं भरत पाकसासन मुख पानी॥८५॥

विविध वसन वहुमोल लोल लोचनहिं छकित कर।
झीन पीन रंगीन स्वेत सादे फुलवर वर॥
पाट टसर सन सूत ऊन सौं विरचित नीके।
चारु सचिक्कन पोत मनहुँ गाभा कदली के॥८६॥

साँतिपूर मदरास नागपुर की कल धोती।
द्रविड़ पाटमय पाढ़ निपुनता की जनु सोती॥
ढाके की मलमल सु डोरिया राधानगरी।
विष्णुपूर मुरसिदावाद पाटंवर पगरी॥८७॥

आजमगढ़ के चमचमात गलता अरु संगी।
कासी के बहुमूल्य वसन बहु विधि बहुरंगी॥
अतलस चिनियापोत बासकट तास ताफता।
अमरू मसरू धूपछाँह कमखाब बाफता॥८८॥

सुघर जामदानी वर टाँड़े की टिकसारी।
चिकन लखनऊ रचित बेल अरु बूटनवारी॥
चारु चँदेली की चादर मंदील मनोहर।
जैपुर साँगानेर चीर छापे अति सुंदर॥८९॥

ललित लायचा दरियाई च्यौली पंजाबी।
तिब्बत के संबूर छाल रूसी संजाबी॥
साल दुसाले कलित कृपारामी कस्मीरी।
जिनके नेरें जात सीत नहिं सिसिर समीरी॥९०॥

चिलको चिक्कन चारु चीर चीनी जापानी।
पाट पीठिवारो मखमल कोमल कासानी॥
मोटी गुदमे गहब नवल नमदे मुलतानी।
बगदादी कम्मल बनात सुंदर मुलतानी॥९१॥

भूषन दूषन रहित सुघरता सहित सँवारे।
रुचिर रजत सुठि स्वर्ण मंजु मुक्तामनि वारे॥
सादे सुथरे सुखद चारु चित्रित मनभाए।
हीराकट कल कटक काम अभिराम बनाए॥९२॥

ललित लखनऊ जयपुर मीना-मंडित सुंदर।
खुले बंद नगजटित विविध काँटे कुंदन पर॥
जिनकी जगमग ज्योति होति दारिद चखचौंधी।
कबहुँ भूलि तेहिं ओर तकत जो करि मति औंधी॥९३॥

पद्मराग कुरुविंद नीलगंधी मानिक बर।
स्वच्छ स्निग्ध समगात वृत्त गरुवे किरनाकर॥
ब्रह्म बदखसाँ औ तिब्बत महि के कल भूषन।
है जिनसौं अनुरक्त प्रीति परिपालित पूषन॥९४॥

बसरा सिंघल द्वीप अदन मुक्ता मर्यादी।
अमल सजल सित स्निग्ध वृत्त हरुवे आह्लादी॥
जलनिधि नातौ मानि जानि निज किरननि बोरे।
हिमकर कृपा कटाच्छ करत निज निपट निहोरे॥९५॥

गरुए गोल सुडौल पीन ब्रन-हीन असीले।
पारस खाड़ी के प्रवाल अति लाल लसीले॥
मंगल बरन बिसाल बिसद मंगल-दुखहारी।
दरन अमंगल मूल महा-मुद-मंगलकारी॥९६॥

चिक्कन चिनकी चारु चटक रंग रोचक धानी।
छूट सहित गुरु स्निग्ध मंजु मरकत मुलतानी॥
चोनी चारु अमोल अमीचंदी ध्वज-धारन।
बुध-गृह-बाधा-बधन बिबिध बिषधर-बिष बारन॥९७॥

पुष्पराग पृथु स्निग्ध स्वच्छ गुरु समघटवारे।
कर्निकार - कल - कुसुम - कांति - कोमल- किरनारे॥
जानि त्रिंध्य गुरु-भक्त खानि-संभूत सुहाए।
जिनसौं रहत प्रसन्न सदा सुरगुरु सुख-पाए॥९८॥

कुलिस एक-रस रुचिर ओज सो द्विगुनित दरसत।
तिहुँ जाति चहुँ बरन इंद्रधनु पँचरँग परसत॥
सुभ छकोन सप्तास्त्र-प्रभा-पूरित सुखदायक।
अष्ट फलक सौं फबित नवौ रत्ननि के नायक॥९९॥

विसद वारितर तरल तड़प तीखे त्यौनारे।
मसृन मंजु स्फुट स्निग्ध स्वच्छ अति कठिन करारे।।
असुर-अस्थि-संभूत असुर-गुरु-कृपाधिकारी।
पन्ना पुहुमि गोलकुंडा के गौरवकारी।।१००।।

इंद्रनील-मनि कलित कृष्न आभा गर्भीले।
इकछाया गुरु स्निग्ध स्वच्छ मृदु पिंडित डौले।।
सुघर साम कसमीर धाम के सुघटित सुंदर।
अमल अमोल अमंद मंद-ग्रह-द्वंद-मंदकर।।१०१।।

गोमेदक गोमेद-रंग गुरु सुभग सजीले।
स्वच्छ स्निग्ध समतल निर्दल चिक्कन चमकीले।।
सिंघल द्वीप प्रदीप मलय महिमा विस्तारन।
जिनकौ जागत लाहु राहुग्रह-आहु-निवारन।।१०२।।

असित सिताभा सहित स्वच्छ सम गुरु गुनपूरे।
अभ्र सुभ्र सुचि रुचिर रेख रंजित अति रूरे।।
वर विराट कैकेय खानि के पानिप भीने।
तिव्वत औ नैपाल भोट के खोट-विहीने।।१०३।।

सुभग सार्ध द्वै सूत सहित अति अहित-विरोधी।
दारिद-दरन दरेरि धरनि घृत संपति सोधी।।
तरनि-किरन लहि विविध वरन वर धरन सुहाए।
कुटिल केतु दुख दूर हेतु वैदूर वराए।।१०४।।

तीखे तरल तुरंग विविध बहुरंग असीले।
करत कुलंग कुरंग संग सब अंग सजीले।।
बोटी बोटी फरकि उठत जो परसत चोटी।
बदलि कनौटी कनमनात कर चहत चमोटी।।१०५।।

चपल उठावत धरत पाय पुहुमी जनु तापी।
ग्रीवा पुच्छ उठाइ चलत जिमि नचत कलापी॥
दावत रान उरान करत ज्यौं बान चलाए।
उच्चैश्रवा समान सुघर सुभ सान चढ़ाए॥१०६॥

वाजिनि के सिरताज तेज तुरकी औ ताजी।
जो वातहुँ सौं वदत बेग-विक्रम मैं बाजी॥
सुंदर सुघर सुसील स्वामि-तर रुचि अनुगामी।
जिनकी चाहत चाल चकत पच्छिनि के स्वामी॥१०७॥

विसद बदखसानी वर वलखी बिदित बुखारी।
गरवी गुनगन माहिं मंजु अरबी अनुहारी॥
कावुल औ खंधार देस के वहु-मग-गामी।
पुष्ट सरीर सुधीर कोट कूदन मैं नामी॥१०८॥

कठिन काठियावार चुटीले के परिपोखे।
चंचल चपल चलाँक वाकपन आँक अनोखे॥
सुंदरता के ग्वैंड ऐंड सो पैंड चलैया।
जिनकी सुघर कनौतिनि विच रुकि रहत रुपैया॥१०९॥

कच्छी कलित कमान पीठवारे सुभ लच्छी।
पग मग धरत अलच्छ जात अधरहिं जनु पच्छी॥
उन्नत ग्रीव नितंव पुच्छ गुच्छित मनभाई।
जिनके आगे सौं सवार नहिं देत दिखाई॥११०॥

वर वलोतरे औ कुलंग जंगल के जाए।
भक्खर के अति भव्य भाड़वाड़ी मनभाए॥
वेलर विसद विसाल काय वलगद वलसाली।
गुन गँभीर गौरंड देस के सुवर सुचाली॥१११॥

गिरिवर लाँघन कदमबाज टाँघन भोटानी।
जिनपै चलत सवार थार छलकत नहिँ पानी॥
वितर्तैं डेढ़ो करनि करन टेढ़ी के टट्टू।
जो खुटपुट इमि अटत नटत जैसैं नट लट्टू॥११२॥

अंग ढंग औ रंग भूरि भौंरी सुभ लच्छन।
सालिहोत्र मत सोधि लिए सब विविध विचच्छन॥
जिनके सुभग प्रसंग माहिँ नामहुँ दोपन के।
लेन न उचित विहाय भाय गुनगन पोषन के॥११३॥

चारि सुदीरघ अंग चारि लघु ललित सुहाए।
आयत चारि सुढार चारि सूच्छम मनभाए॥
ऊरधचारी चारि चारि अधगति गुन भीने।
अरुन वरन वर चारि चारि पुनि माँस विहीने॥११४॥

स्वेत अरुन वर वरन पीत मन मनहरन सुहाए।
सुभ सारंग सुर्खिगि नील मेचक मन-भाए॥
सवजे सुभग सुढार गहव गुलदार गुनीले।
चीनी सुरखे सुठि सुरंग गर्रे गरवीले॥११५॥

ललित लखौटे चलित कलित कुम्मैत करारे।
कुल्ले कठिन सरीर समुद अति जीवटवारे॥
अवलख लखिवैँ जोग सुभग सुंदर कल्यानी।
पँचकल्यान पुनीत अष्टमंगल मुददानी॥११६॥

गंगा-जमुनी रजत साज सौँ सज्जित सुहाए।
जिनकी चमकनि चहत रहत रवि-बाजि चकाए॥
सादे सुथरे सुघर मंजु मीना मनि धारे।
कासी कटक सुरचित खचित हीराकटवारे॥११७॥

पूज़ी कलगी करनफूल कल हैकल सेली।
झाँझनि झंविया जाल सहित दुमची रुचि रेली॥
मृदु मखतूल मुकेस फूँदने फवत सुहाए।
यालनि की सुचि रुचिर चारु चोटिनि लटकाए॥११८॥

औ काहू पर कसी कलित काठी अँगरेजी।
दुहरी दिढ़ लागी लगाम रोकन हित तेजी॥
पुनि काहू पर सजे साज रूमी तुरकानी।
जिनमैं कसे कुवूल जंघमूलनि सुखदानी॥११९॥

खुले थान तैं थमत न थिरकत जमत जकंदत।
कौतुक लागे लोग लखत लोभत अभिनंदत॥
उच्चैश्रवा सिहात सान सजधज अवलोकत।
चमक दमक अरु तमक ताकि रविहू रथ रोकत॥१२०॥

विविध यान वहु रंग ढंग के सुघर सजीले।
गाधी पखरो पीठि लगे लोने लचकीले॥
वने वंवई कलकत्ता कासी के नीके।
जिन पर चलत न हलत अंग रस-रंगरली के॥ २१॥

टमटम फिटन पालगाड़ी लैंडो सुखदाई।
विसद वैगनेट वर वहली रथ रुचि अनुयाई॥
पौनवेग अति मौन गौन मोटर मनभाए।
कला कलित गौरंड देस के दिव्य वनाए॥१२२॥

तामजान सुखपाल सुखद सुभ पिनस पालकी।
वक्रतुंड चंडोल चारु वहुमोल नालकी॥
सज्जित सुघर कहार कंदला कलित कसीले।
पदपाटव मैं निपुन सुखद-गति अति फुरतीले॥१२३॥

गजसालनि मैं त्यौं मतंग झूमत मतवारे।
मकने मंजुल एकदंत सुभ दिव्य दँतारे॥
ऐरावत-कुल-कलस दिग्गजनि के श्रमहारी।
उन्नत-भाल बिसाल-काय बल-बिक्रम-धारी॥१२४॥

सजल जलद वर बरन कलिंदहु के मदहारी।
जिनके अंग अनूप रूप जग बिसमयकारी॥
कच्छप कैसे कलित-गंडमंडल मद-मंडित।
जिन पर मधुकर निकर मंजु गुंजत रस पंडित॥१२५॥

दर मुकलित कलविंक नैन चल श्रौनि सुविस्तर।
अरुन बरन वर बिसद ओठ तालू मुख पुसकर॥
सुंडादंड बिसाल बृत्त सुभ ढार मनोहर।
मनु कलिंद तैं गिरति कलिंदी धार धरनि पर॥१२६॥

दिढ़ दीरघ दोउ दंत एक-सम सुघर सजीले।
हेम कलित वर बलय-बलित चिक्कन चमकीले॥
जुगल द्वैज द्विजराज बिभूषित बिज्जु छटा सौं।
मानहु निकसे सुचि सावन की स्याम घटा सौं॥१२७॥

पीन प्रलंबित बदन चारु चित्रित मनभाए।
स्निग्ध सँवारे सीस उच्च चल सुभग सुहाए॥
ग्रीवा गोल सुडौल लोल लाँबी लहकारी।
गजपालनि सुखदानि भरनि रद सिर भर भारी॥१२८॥

पीठिडंड कोदंड मांस-मंडित दीरघ कल।
सुढर ढार दोउ पच्छ ढरे मानहु कदली दल॥
पुच्छ सुगुच्छित छोर कछुक पुहुमी सौं ऊँची।
मनु अदभुत रस रूप लिखन की लेखन कूँची॥१२९॥

रंभ खंभ के दंभ-दलन चहुँ पाय सुहाए।
मनहु लदाऊ स्याम सिला मंडप के पाए॥
अँगुरी विसद बिसाल सुभग सम संख्य सघन बर।
कमठ पीठि से उच्च गोल नख स्वच्छ सुविस्तर॥१३०॥

मदजल पुस्कर पौन सुभग सौरभ बगरावत।
मधुकर-निकर अथोर डोर जाकी लगि धावत॥
गति अति सुंदर सुघर जाहि जानत कोबिद जन।
जिहिँ अनुहरत सुहात मंद गवनी रवनीगन॥१३१॥

तीनि जाति के जे करिवर ग्रंथनि मैं गाए।
सब सुभ लच्छन सहित स्वच्छ सोहत मनभाए॥
पुनि संकीरन विविध भाँति के मिस्रित लच्छन।
दूपन भूपन सोधि लिए मनबोधि बिचच्छन॥१३ ॥

मृगा सु मंजुल गात लिए लघुता हरुवाई।
मदजल मैं रुचि स्याम दृगनि कछु दीरघताई॥
पंच हस्त परिमान उच्च कर सप्त प्रलंबित।
अष्ट हस्त परिनाह माँहि अलि गति अविलंबित॥१३३॥

थूल-काय गति मंद मंद लघु दृग लंबोदर।
बली बलित उर कच्छि कुच्छि जुत पेचक लरबर॥
सदल त्वचा गुरुग्रीव स्रवत, मद-नीत-चरन वर।
डील डौल मैं अधिक मृगा सौं एक हाथ भर॥१३४॥

विसद बिसाल सुढाल काय अवयव अलगाने।
धनुष पीठि कल कोलजंघ समगात सयाने॥
मधुरुचि दीरघ दंत हरित मदवंत भद्र बर।
मंदहु तैं परिमान माँहि इक हाथ अधिकतर॥१३५॥

सुंडाडंड उदंड करत नभ-मंडल थाहत।
मनु गनपति की अकस चंद गहि धारन चाहत॥
कै मेघनि सौं संचि चंचला की चिलकाई।
निज-पट-भूषन भरन चहत झलमल अधिकाई॥१३६॥

लसत जथाविधि जथा जोग सब साज सजाए।
हेम रजत मुकता प्रवाल मनिमय मन भाए॥
पंखा झूल सचंदसिरी गजगा झुकि झमकैं।
कंठा - हैकल - हार - किरन - दुमची - दुति दमकैं॥१३७॥

अंबर परसत मंजु मेघडंबर काहू कौ।
मनु कलिंद पर कलित कनक मंडप आहू कौ॥
हलकति झलकति झूल झालरनि जुत इमि भावै।
स्यामघटा पर विज्जुछटा मानौ छबि छावै॥१३८॥

द्रविन-पाट पट-ठाट ठटे गज-रच्छक राजत।
जिनकैं कर बर रजत-बंक-अंकुस छबि छाजत॥
निज करतब मैं दच्छ सकल गुन औगुन जानत।
अंग-फुरन तैं निज मतंग मन रंग पिछानत॥१३९॥

इक इक करि के संग लगे द्वै द्वै फुरतीले।
कुंतलग्राही निपुन सोहसी सजग सजीले॥
कोउ कहुँ साँटेमार सटकि साँटौं निज परखत।
जाकी धुनि सौं धमकि मत्त सिंधुर-मद घरषत॥१४०॥

इहिं विधि वाहन विविध सविध सज्जित मनभाए।
चहल-पहल नित रहत पौरि पर मंजु मचाए॥
पुरजन-परिजन-सखा सुहृद सचिवनि की टोली।
आवति जाति लखाति परस्पर करत ठठोली॥१४१॥

मित्र-मंडली चलति कबहुँ आराम-रमन कौं।
सेवन सुचि जल बात तथा श्रम बिसम समन कौं॥
बहु प्रकार व्यापार-जनित दुख-द्वंद्व दमन कौं।
... ... ॥१४२॥

उद्धव-शतक

मंगलाचरण

जासौं जाति विषय-विषाद की विवाई बेगि
चोप-चिकनाई चित चारु गहिबौ करै।
कहै रतनाकर कवित्त-बर-व्यंजन मैं
जासौं स्वाद सौगुनौ रुचिर रहिबौ करै॥
जासौं जोति जागति अनूप मन-मंदिर मैं
जड़ता-विषम-तम-तोम दहिबौ करै।
जयति जसोमति के लाड़िले गुपाल, जन
रावरी कृपा सौं सो सनेह लहिबौ करै॥१॥

[उद्धव का मथुरा से ब्रज जाना]

न्हात जमुना मैं जलजात एक देख्यौ जात
जाकौ अध-ऊरध अधिक मुरझायौ है।
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास-बासना सौं नैंकु नासिका लगायौ है॥
त्यौंहीं कछु घूमि झूमि बेसुध भए कै हाय
पाय परे उखरि अभाय मुख छायौ है।
पाए घरी द्वैक मैं जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर
राधा-नाम कीर जब औचक सुनायौ है॥२॥

आए भुज-बंध दिए ऊधव-सखा कैँ कंध,
डग-मग पाय मग धरत धराए हैँ ।
कहै रतनाकर न बूझैँ कछू बोलत औ
खोलत न नैन हूँ अचैन चित छाए हैँ ॥
पाइ वहे कंज मैँ सुगंध राधिका कौ मंजु
ध्याए कदली-बन मतंग लौँ मताए हैँ ।
कान्ह गए जमुना नहान पै नए सिर सौँ
नीकैँ तहाँ नेह की नदी मैँ न्हाइ आए हैँ ॥३॥

देखि दूरि ही तैँ दौरि पौरि लगि भैँटि ल्याइ
आसन दै साँसनि समेटि सकुचानि तैँ ।
कहै रतनाकर यौँ गुनन गुबिंद लागे
जौ लौँ कछू भूले से भ्रमे से अकुलानि तैँ ॥
कहा कहैँ ऊधौ सौँ कहैँ हूँ तौ कहाँ लौँ कहैँ
कैसैँ कहैँ कहैँ पुनि कौन सी उठानि तैँ ।
तौलौँ अधिकाई तैँ उमगि कंठ आइ भिंचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अँखियानि तैँ ॥४॥

बिरह-बिथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रबीन सुकबीनि सौँ ।
कहै रतनाकर बुझावन लगे ज्यौँ कान्ह
ऊधौ कौँ कहन-हेत ब्रज-जुवतीनि सौँ ॥
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौँ
प्रेम पर्यो चपल चुचाइ पुतरीनि सौँ ।
नैँकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौँ,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौँ ॥५॥

नंद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की,
लाड-भरे लालन की लालच लगावती।
कहै रतनाकर सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी,
मंजु मृगनैनिनि के गुन-गन गावती॥
जमुना कछारनि की रंग-रस-रारनि की,
बिपिन-बिहारनि की हौंस हुमसावती।
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती॥६॥

चलत न चारयौ भाँति कोटिनि विचारयौ तऊ
दाबि दाबि हारयौ पै न टारयौ टसकत है।
परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली
चाह-चिमटी हूँ सौं न खैंचौ खसकत है॥
कढ़त न क्यौं हूँ हाय बिथके उपाय सबै
धीर-आक-छीर हूँ न धारैं धसकत है।
ऊधौ ब्रज-बास के बिलासनि कौ ध्यान धँस्यौ
निसि-दिन काँटे लौं करेजैं कसकत है॥७॥

रूप-रस पीवत अघात ना हुते जो तब
सोई अब आँस ह्वै उबरि गिरिबौ करैं।
कहै रतनाकर जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं
याद किए तिनकौं अवाँ सौं घिरिबौ करैं॥
दिननि के फेर सौं भयौ है हेर-फेर ऐसौ
जाकौं हेरि फेरि हेरिबोई हिरिबौ करैं।
फिरत हुते जू जिन कुंजनि मैं आठौं जाम
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करैं॥८॥

गोकुल की गैल-गैल गैल-गैल ग्वालनि की
गोरस कैं काज-लाज-बस कै बहाइबौ।
कहै रतनाकर रिझाइबौ नवेलिनि कौं
गाइबौ गवाइबौ औ नाचिबौ नचाइबौ॥
कीबौ स्रमहार मनुहार कै बिबिध बिधि
मोहिनी मृदुल मंजु बाँसुरी बजाइबौ।
ऊधौ सुख-संपति-समाज ब्रज-मंडल के
भूलैं हूँ न भूलै भूलैं हमकौं भुलाइबौ॥९॥

मोर के पखौवनि कौ मुकुट छबीलौ छोरि
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा।
कहै रतनाकर त्यौं माखन-सनेही बिनु
षट-रस व्यंजन चबाइ करिहैं कहा॥
गोपी ग्वाल-बालनि कौं झोंकि बिरहानल मैं
हरि सुरबृंद की बलाइ करिहैं कहा।
प्यारौ नाम गोबिंद गुपाल कौ बिहाय हाय
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा॥१०॥

कहत गुपाल माल मंजु मनि-पुंजनि की
गुंजनि की माल की मिसाल छबि छावै ना।
कहै रतनाकर रतन-मैं किरीट अच्छ
मोर-पच्छ-अच्छ-लच्छ अंसहू सु-भावै ना॥
जसुमति मैया की मलैया अरु माखन कौ
काम-धेनु-गोरस हूँ गूढ़ गुन पावै ना।
गोकुल की रज के कनूका औ तिनूका सम
संपति त्रिलोक की बिलोकन मैं आवै ना॥११॥

राधा-मुख-मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं
प्रेम-रतनाकर हियैं यौं उमगत है।
त्यौंहीं बिरहातप प्रचंड सौं उमंडि अति
ऊरध उसास कौ झकोर यौं जगत है॥
केवट बिचार कौ बिचारौ पचि हारि जात
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गत है।
करत गँभीर धीर-लंगर न काज कछू
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है॥१२॥

सील-सनी सुरुचि सु-बात चलैं पूरब की
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुराने तैं।
कहै रतनाकर अचानक चमक उठी
उर घनस्याम कैं अधीर अकुलाने तैं॥
आसाछन्न दुरदिन दीस्यौ सुरपुर माहिं
ब्रज मैं सुदिन वारि-बृंद हरियाने तैं।
नीर कौ प्रवाह कान्ह-नैननि कैं तीर वह्यौ
धीर बह्यौ ऊधौ-उर-अचल रसाने तैं॥१३॥

प्रेम-भरी कातरता कान्ह की प्रगट होत
ऊधव अवाइ रहे ज्ञान-ध्यान सरके।
कहै रतनाकर धरा कौ धीर धूरि भयौ
भूरि-भीति-भारनि फनिंद-फन करके॥
सुर सुर-राज सुद्ध-स्वारथ-सुभाव-सने
संसय समाए धाए धाम बिधि हर के।
आई फिरि ओप ठाम-ठाम ब्रज-गामनि के
बिरहिनि बामनि के बाम अंग फरके॥१४॥

ऊधव कैं चलत गुपाल उर माहिँ चल-
आतुरी मची सो परै कहि न कबीनि सौं।
कहै रतनाकर हियौ हूँ चलिबै कौं संग
लाख अभिलाष लै उमहि बिकलीनि सौं॥
आनि हिचकी ह्वै गरैं बीच सकस्यौई परै
स्वेद ह्वै रस्यौई परै रोम-झंझरीनि सौं।
आनन-दुवार तैं उसाँस ह्वै बढ्यौई परै
आँसु ह्वै कढ्यौई परै नैन-खिरकीनि सौं॥२१॥

[*उद्धव की व्रज-यात्रा*]

आइ व्रज-पथ रथ ऊधौ कौं चढ़ाइ कान्ह
अकथ कथानि की व्यथा सौं अकुलात हैँ।
कहै रतनाकर बुझाइ कछु रोकैं पाय
पुनि कछु ध्याइ उर धाइ उरझात हैँ॥
उससि उसाँसनि सौं वहि वहि आँसनि सौं
भूरि भरे हिय के हुलास न उरात हैँ।
सीरे तपे विविध सँदेसनि की बातनि की
घातनि की झोँक मैं लगेई चले जात हैँ॥२२॥

लै कै उपदेस औ सँदेस-पन ऊधौ चले
सुजस-कमाइबैं उछाह-उदगार मैं।
कहै रतनाकर निहारि कान्ह कातर पै
आतुर भए यौं रह्यौ मन न सँभार मैं॥
ज्ञान-गठरी की गाँठि छरकि न जान्यौ कब
हरैं हरैं पूँजी सब सरकि कछार मैं।
डार मैं तमालनि की कछु बिरमानी अरु
कछु अरुझानी है करीरनि के झार मैं॥२३॥

हरैं-हरैं ज्ञान के गुमान घटि जान लगे
जोग के विधान ध्यान हूँ तैं टरिबै लगे।
नैननि मैं नीर रोम सकल सरीर छयौ
प्रेम-अद्भुत-सुख सूझि परिबै लगे॥
गोकुल के गाँव की गली मैं पग पारत हीं
भूमि कैं प्रभाव भाव औरै भरिबै लगे।
ज्ञान-मारतंड के सुखाए मनु मानस कौं
सरस सुहाए घनस्याम करिबै लगे॥२४॥

[उद्धव का ब्रज में पहुँचना]

दुख सुख ग्रीषम औ सिसिर न व्यापै जिन्हैं
छापै छाप एकै हिये ब्रह्म-ज्ञान-साने मैं।
कहै रतनाकर गँभीर सोई ऊधव कौ
धीर उधरान्यौ आनि ब्रज के सिवाने मैं॥
औरै मुख-रंग भयौ सिथिलित अंग भयौ
बैन दबि दंग भयौ गर गरुवाने मैं।
पुलकि पसीजि पास चाँपि मुरझाने काँपि
जानैं कौन बहति बयारि बरसाने मैं॥२५॥

धाईं धाम-धाम तैं अवाई सुनि ऊधव की
बाम-बाम लाख अभिलापनि सौं भ्वै रहीं।
कहै रतनाकर पै बिकल बिलोकि तिन्हैं
सकल करेजौ थामि आपुनपौ ख्वै रहीं॥
लेखि निज-भाग-लेख रेख तिन आनन की
जानन की ताहि आतुरी सौं मन म्वै रहीं।
आँस रोकि साँस रोकि पूछन-हुलास रोकि
मूरति निरास की सी आस-भरी ज्वै रहीं॥२६॥

भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गाँवनि मैं पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि झौरि
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं॥
उझकि-उझकि पदकंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छ्वै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं॥२७॥

देखि देखि आतुरी विकल ब्रज-बारिनि की
ऊधव की चातुरी सकल बहि जाति हैं।
कहै रतनाकर कुसल कहि पूछि रहे
अपर सनेस की न बातैं कहि जाति हैं।
मौन रसना है जोग जदपि जनायौ सबै
तदपि निरास-बासना न गहि जाति हैं।
साहस कै-कछुक उमाहि पूछिबे कौं ठाहि
चाहि उत गोपिका कराहि रहि जाति हैं॥२८॥

दीन दसा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव कौ
गरि गौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहै रतनाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से॥
सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से।
हौले से हले से हूल-हूले से हिये मैं हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से॥२९॥

मोह-तम-रासि नासिबे कौं स-हुलास चले
ब्रह्म कौ प्रकास पारि मति रति-माती पर।
कहै रतनाकर पै सुधि उधिरानी सबै
धूरि परी धीर जोग-जुगति-सँघाती पर॥
चलत विषम ताती बात ब्रज-बारिनि की
विपति महान परी ज्ञान-बरी बाती पर।
लच्छ दुरे सकल विलोकत अलच्छ रहे
एक हाथ पाती एक हाथ दिए छाती पर॥२०॥

[उद्धव के ब्रजवासियों से वचन]

चाहत जौ स्ववस सँजोग स्याम-सुंदर कौ,
जोग के प्रयोग मैं हियौ तौ विलस्यौ रहै।
कहै रतनाकर सु-अंतर-मुखी ह्वै ध्यान,
मंजु हिय-कंज-जगी जोति मैं धस्यौ रहै॥
ऐसैं करौ लीन आतमा कौं परमातमा मैं,
जामैं जड़-चेतन-विलास विकस्यौ रहै।
मोह-वस जोहत विछोह जिय जाकौ छोहि,
सो तौ सब-अंतर निरंतर बस्यौ रहै॥२१॥

पंच तत्त्व मैं जो सच्चिदानँद की सत्ता सो तौ
हम तुम उनमैं समान ही समोई है।
कहै रतनाकर विभूति पंच-भूत हू की
एक ही सी सकल प्रभूतनि मैं पोई है॥
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
काँच-फलकनि ज्यौं अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिनि सौं
कान्ह सब ही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है॥२२॥

सोई कान्ह सोई तुम सोई सबही हैं लखौ
घट-घट अंतर अनंत स्यामघन कौं।
कहै रतनाकर न भेद-भावना सौं भरौ
वारिधि और बूँद के विचारि बिछुरन कौं॥
अविचल चाहत मिलाप तौ बिलाप त्यागि
जोग-जुगती करि जुगावौ ज्ञान-धन कौं।
जीव आतमा कौं परमातमा मैं लीन करौ
छीन करौ तन कौं न दीन करौ मन कौं॥३३॥

सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं थिरानी हैं।
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं॥
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीं,
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ,
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं॥३४॥

[*उद्धव के प्रति गोपियों का वचन*]

रस के प्रयोगनि के सुखद सु जोगनि के,
जेते उपचार चारु मंजु सुखदाई हैं।
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन,
देत ना सुदर्सन हूँ यौं सुधि सिराई हैं॥
करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि कौ,
भाय क्यौं अनारिनि कौ भरत कन्हाई हैं।
ह्याँ तौ विषमज्वर-वियोग की चढ़ाई यह,
पाती कौन रोग की पठावत दवाई हैं॥३५॥

ऊधौ कहौ सूधौ सौ सनेस पहिलैं तो यह,
प्यारे परदेस तैं कबैं धौं पग पारिहैं।
कहै रतनाकर तिहारी परि बातनि मैं,
मीड़ि हम कब लौं करेजौ मन मारिहैं॥
लाइ-लाइ पाती छाती कब लौं सिरैहैं हाय,
धरि-धरि ध्यान धीर कब लगि धारिहैं।
बैननि उचारिहैं उराहनौ कबै धौं सबै,
स्याम कौ सलोनौ रूप नैननि निहारिहैं॥२६॥

षटरस-व्यंजन तौ रंजन सदा ही करैं,
ऊधौ नवनीत हूँ स-प्रीति कहूँ पावैं हैं।
कहै रतनाकर बिरद तौ बखानैं सबै,
साँची कहौ केते कहि लालन लड़ावैं हैं॥
रतन-सिंहासन बिराजि पाकसासन लौं,
जग-चहुँ-पासनि तौ सासन चलावैं हैं।
जाइ जमुना-तट पै कोऊ बट-छाहिँ माहिँ,
पाँसुरी उमाहि कबौं बाँसुरी बजावैं हैं॥२७॥

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप,
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजबारी की।
कहै रतनाकर पै प्रीति-रीति जानत ना,
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की॥
मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एकही, कह्यौ जो तुम,
तौहूँ हमैं भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि-बिगरि न बारिधिता बारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की॥२८॥

चोप करि चंदन चढ़ायौ जिन अंगनि पै,
तिनपै बजाइ तूरि धूरि दरिबौ कहौ।
रस-रतनाकर स-नेह निरवार्‌यौ जाहि,
ता कच कौं हाय जटा-जूट बरिबौ कहौ॥
चंद अरविंद लौं सराह्यौ ब्रजचंद जाहि,
ता मुख कौं काकचंचवत करिबौ कहौ।
छेदि-छेदि छाती छलनी कै बैन-बाननि सौं,
तामैं पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहौ॥३६॥

चिंता-मनि मंजुल पँवारि धूरि-धारनि मैं,
काँच-मन-मुकुर सुधारि रखिबौं कहौ।
कहै रतनाकर बियोग-आगि सारन कौं,
ऊधौ हाय हमकौं बयारि भखिबौ कहौ॥
रूप-रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके,
ताकौ रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ।
एते बड़े बिस्व माँहि हेरैं हूँ न पैयै जाहि,
ताहि त्रिकुटी मैं नैन मूँदि लखिबौ कहौ॥४०॥

आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तोपै,
ऊधौ ये बियोग के बचन बतरावौ ना।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ,
दुख दरिबै कौं, तोपै अधिक बढ़ावौ ना॥
टूक-टूक ह्वैहै मन-मुकुर हमारौ हाय,
चूकि हूँ कठोर-बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यौ मोहिं,
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना॥४१॥

चुप रहौ ऊधौ सूधौ पथ मथुरा कौ गहौ,
कहौ ना कहानी जौ विविध कहि आए हौ।
कहै रतनाकर न बूझिहैं बुझाएँ हम,
करत उपाय वृथा भारी भरमाए हौ॥
सरल स्वभाव मृदु जानि परौ ऊपर तैं,
पर उर घाय करि लौन सौ लगाए हौ।
रावरी सुधाई मैं भरी है कुटिलाई कूटि,
बात की मिठाई मैं लुनाई लाइ ल्याए हौ॥४२॥

नेम व्रत संजम के पींजरैं परे को जब,
लाज-कुल-कानि-प्रतिबंधहिं निवारि चुकीं।
कौन गुन गौरव कौ लंगर लगावै जब,
सुधि बुधि ही कौ भार टेक करि टारि चुकीं।
जोग-रतनाकर मैं साँस घूँटि बूड़ै कौन,
ऊधौ हम सूधौ यह बानक बिचारि चुकीं।
मुक्ति मुकुता कौ मोल माल ही कहा है जब,
मोहन लला पै मन-मानिक ही वारि चुकीं॥४३॥

ल्याए लादि बादि·हीं लगावन हमारे गरैं,
हम सब जानी कहौ सुजस-कहानी ना।
कहै रतनाकर गुनाकर गुविंद हूँ कैं,
गुननि अनंत वैधि सिमिटि समानी ना॥
हाय बिन मोल हूँ बिकी न मग हूँ मैं कहूँ,
तापै बटपार-टोल लोल हूँ लुभानी ना।
केती मिली मुकति वधू वर के कूबर मैं,
ऊबर भई जो मधुपुर मैं समानी ना॥४४॥

हम परतच्छ मैं प्रमान अनुमानैं नाहिँ,
तुम भ्रम-भौंर मैं भलैं ही वहिबौ करौ।
कहै रतनाकर गुबिंद-ध्यान धारैं हम,
तुम मनमानौ ससा-सिंग गहिबौ करौ॥
देखति सो मानति हैं सूधौ न्याव जानति हैं,
ऊधौ! तुम देखि हूँ अदेख रहिबौ करौ।
लखि ब्रज-भूप-रूप अलख अरूप ब्रह्म,
हम न कहैंगी तुम लाख कहिबौ करौ॥४५॥

रंग-रूप-रहित लखात सबही हैं हमैं,
वैसौ एक और ध्याइ धीर धरिहैं कहा।
कहै रतनाकर जरी हैं बिरहानल मैं,
और अब जोति कौं जगाइ जरिहैं कहा॥
राखौ धरि ऊधौ उतै अलख अरूप ब्रह्म,
तासौं काज कठिन हमारे सरिहैं कहा।
एक ही अनंग साधि साध सब पूरी अब,
और अंग-रहित अराधि करिहैं कहा॥४६॥

कर-बिनु कैसैं गाय दुहिहै हमारी वह,
पद-बिनु कैसैं नाचि थिरकि रिझाइहै।
कहै रतनाकर बदन-बिनु कैसैं चाखि
माखन, बजाइ बेनु गोधन गवाइहै॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवनि बिनाहीं हाय,
भोरे ब्रजबासिनि की बिपति बराइहै।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म,
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारैं काम आइहै॥४७॥

वे तौ बस बसन रँगावैं मन रंगत ये,
भसम रमावैं वे ये आपुहीं भसम हैं।
साँस साँस माहिं बहु बासर बितावत वे,
इनकैं प्रतेक साँस जात ज्यौं जनम हैं॥
ह्वै कै जग-भुक्ति सौं बिरक्त मुक्ति चाहत वे,
जानत ये भुक्ति मुक्ति दोऊ विष-सम हैं।
करिकै बिचार ऊधौ सूधौ मन माहिं लखौ,
जोगी सौं बियोग-भोग-भोगी कहा कम हैं॥४८॥

जोग को रमावै औ समाधि को जगावै इहाँ,
दुख-सुख-साधनि सौं निपट निबेरी हैं।
कहै रतनाकर न जानैं क्यौं इतै धौं आइ,
साँसनि की सासना की बासना बखेरी हैं॥
हम जमराज की धरावतिं जमा न कछू,
सुर-पति-संपति की चाहतिं न ढेरी हैं।
चेरी हैं न ऊधौ! काहू ब्रह्म के बबा की हम
सूधौ कहे देतिं एक कान्ह की कमेरी हैं॥४९॥

सरग न चाहैं अपवरग न चाहैं सुनौ,
भुक्ति-मुक्ति दोऊ सौं बिरक्ति उर आनैं हम।
कहै रतनाकर तिहारे जोग-रोग माहिं,
तन मन साँसनि की साँसति प्रमानैं हम॥
एक ब्रजचंद कृपा-मंद-मुसकानि हीं मैं,
लोक परलोक कौ अनंद जिय जानैं हम।
जाके या बियोग-दुख हू मैं सुख ऐसौ कछू,
जाहि पाइ ब्रह्म-सुख हू मैं दुख मानैं हम॥५०॥

जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हैं,
तातैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की,
जोई मुँह आवत सोई बिवस बयात हौ॥
सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि,
त्यौंहीं तुम आपहीं सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग-जोग कबहूँ न जानैं कहा जोहि जकौ,
ब्रह्म-ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ॥५१॥

ऊधौ यह ज्ञान कौ बखान सब बाद हमैं,
सूधौ बाद छाँड़ि बकबादहिं बढ़ावै कौन।
कहै रतनाकर बिलाइ ब्रह्म-काय माहिं,
आपने सौं आपुनपौ आपुनौ नसावै कौन॥
काहू तौ जनम मैं मिलैंगी स्यामसुंदर कौं,
याहू आस प्रानायाम-साँस मैं उड़ावै कौन।
परि कै तिहारी ज्योति-ज्वाल की जगाजग मैं,
फेरि जग जाइबे की जुगति जरावै कौन॥५२॥

वाही मुख मंजुल की चहतिं मरीचैं सदा,
हमकौं तिहारी ब्रह्म-ज्योति करिबौ कहा।
कहै रतनाकर सुधाकर-उपासिनि कौं,
भानु की प्रभानि कौं जुहारि जरिबौ कहा॥
भोगि रहीं बिरचे बिरंचि के सँजोग सबै,
ताके सोग सारन कौं जोग चरिबौ कहा।
जब ब्रजचंद कौ चकोर चित चारु भयौ,
बिरह-चिंगारिनि सौं फेरि डरिबौ कहा॥५३॥

उधौ जम-जातना की वात ना चलावौ नैंकु,
अब दुख-सुख कौ विवेक करिवौ कहा।
प्रेम-रतनाकर - गँभीर - परे मीननि कौं,
इहिं भव-गोपद की भीति भरिवौ कहा॥
एकै वार लैंहैं मरि मीच की कृपा सौं हम,
रोकि-रोकि साँस विनु मीच मरिवौ कहा।
छिन जिन झेली कान्ह-विरह-बलाय तिन्हैं,
नरक-निकाय की धरक धरिवौ कहा॥५४॥

जोगिनि की भोगिनि की विकल वियोगिनि की,
जग मैं न जागती जमातैं रहि जाइँगी।
कहै रतनाकर न सुख के रहै जौ दिन,
तौ ये दुख-द्वंद की न रातैं रहि जाइँगी॥
प्रेम-नेम छाँड़ि ज्ञान-छेम जो वतावत सो,
भीति ही नहीं तौ कहा छातैं रहि जाइँगी।
घातैं रहि जाइँगी न कान्ह की कृपा तैं इती,
ऊधौ कहिवे कौं वस वातैं रहि जाइँगी॥५५॥

कठिन करेजौ जो न करक्यौ वियोग होत
तापर तिहारो जंत्र मत्र खँचिहै नहीं।
कहै रतनाकर वरी हैं विरहानल मैं
ब्रह्म की हमारैं जियति जँचिहै नहीं।
ऊधौ ज्ञान-भान की प्रभानि ब्रजचंद विना
चहकि चकोर चित चोपि नचिहै नहीं।
स्याम-रंग-राँचे साँचे हिय के हम ग्वारिनि कैं
जोग की भगौंहीं भेष-रेख रँचिहै नहीं॥५६॥

नैननि के नीर औ उसीर पुलकावलि सौं
जाहि करि सीरौ सीरी बातहिं बिलासैं हम।
कहै रतनाकर तपाई बिरहातप की,
आवन न देतिं जामैं बिषम उसासैं हम॥
सोई मन-मंदिर तपावन के काज आज,
रावरे कहे तैं ब्रह्म-जोति लै प्रकासैं हम।
नंद के कुमार सुकुमार कौं बसाइ यामैं,
ऊधौ अब हाइ कै बिसास उदबासैं हम॥५७॥

जो हैं अभिराम स्याम चित की चमक ही मैं,
और कहा ब्रह्म की जगाइ जोति जोहैंगी।
कहै रतनाकर तिहारी बात ही सौं रुकी,
साँस की न साँसति कै औरौ अवरोहैंगी॥
आपुही भई हैं मृगछाला ब्रज-बाला सूखि,
तिनपै अपर मृगछाला कहा सोहैंगी।
ऊधौ मुक्ति-माल बृथा मढ़त हमारे गरैं,
कान्ह बिना तासौं कहौ काकौ मन मोहैंगी॥५८॥

कीजै ज्ञान-भानु कौ प्रकास गिरि सृंगनि पै,
ब्रज मैं तिहारी कला नैंकु खटिहैं नहीं।
कहै रतनाकर न प्रेम-तरु पैहै सूखि,
याकी डार-पात तृन-तूल घटिहैं नहीं॥
रसना हमारी चारु चातकी बनी हैं ऊधौ,
पी-पी को बिहाइ और रट रटिहैं नहीं।
लौटि-पौटि बात कौ बवंडर बनावत क्यौं,
हिय तैं हमारे घन-स्याम हटिहैं नहीं॥५९॥

नैननि के आगैं नित नाचत गुपाल रहैं,
ख्याल रहैं सोई जो अनन्य-रसवारे हैं।
कहै रतनाकर सो भावना भरीयै रहै,
जाके चाव भाव रचैं उर मैं अखारे हैं॥
ब्रह्म हूँ भए पै नारि ऐसियै बनी जौ रहैं
तौ तौ सहैं सीस सबै बैन जो तिहारे हैं।
यह अभिमान तौ गवैहैं ना गए हूँ प्रान,
हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे है॥९०॥

सुनीं गुनीं समझीं तिहारी चतुराई जिती,
कान्ह की पढ़ाई कविताई कुबरी की हैं।
कहै रतनाकर त्रिकाल हू त्रिलोक हू मैं,
आनैं आन नैंकु ना त्रिदेव की कही की हैं॥
कहहिं प्रतीति प्रीति नीति हूँ त्रिवाचा बाँधि,
ऊधौ साँच मन की हिये की अरु जी की हैं।
वै तौ हैं हमारे ही हमारे ही हमारे ही औ,
हम उनही की उनही की उनही की हैं॥९१॥

नेम ब्रत संजम के आसन अखंड लाइ
साँसनि कौं घूटिहैं जहाँ लौं गिलि जाइगौ।
रतनाकर धरैंगी मृगछाली अरु
धूरि हूँ दरैंगी जऊ अंग छिलि जाइगौ॥
पाँच-आँचि हूँ की झार झेलिहैं निहारि जाहि
रावरौ हू कठिन करेजौ हिलि जाइगौ।
सहि हैं तिहारे कहैं साँसति सबैं पै बस
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जायगौ॥९२

प्रथम भुराइ चाय-नाय पै चढ़ाइ नीकैं,
न्यारी करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं।
प्रेम-रतनाकर की तरल तरंग पारि,
पलटि पराने पुनि प्रन-पतवारी तैं,
और न प्रकार अब पार लहिवै कौ कछू,
अटकि रही हैं एक आस गुनवारी तैं,
सोऊ तुम आइ बात विषम चलाइ हाय,
काटन चहत जोग-कठिन कुठारी तैं ॥६९॥

प्रेम-पाल पलटि उलटि पतवारी-पति,
केवट पराग्यौ कूब-तूँबरी अधार लै।
कहै रतनाकर पठायौ तुम्हैं तापै पुनि,
लादन कौं जोग कौ अपार अति भार लै॥
निरगुन ब्रह्म कहौ रावरौ बनैहै कहा,
ऐहै कछु काम हूँ न लंगर लगार लै।
विषम चलावौ ज्ञान-तपन-तपी ना बात,
पारी कान्ह तरनी हमारी मँझधार लै॥७०॥

प्रथम भुराइ प्रेम-पाठनि पढ़ाइ उन,
तन मन कीन्हैं बिरहागि के तपेला हैं।
कहै रतनाकर त्यौं आप अब तापै आइ,
साँसनि की साँसति के झारत झमेला हैं॥
ऐसे ऐसे सुभ उपदेस के दिवैयनि की,
ऊधौ ब्रजदेस मैं अपेल रेल-रेला हैं।
वे तौ भए जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग,
आप कहैं उनके गुरू हैं किधौं चेला हैं॥७१॥

एते दूरि देसनि सौं सखनि-सँदेसनि सौं,
लखन चहैं जो दसा दुसह हमारी है।
कहै रतनाकर पै विपम वियोग-विथा,
सवद-विहीन भावना की भाववारी है॥
आनैं उर अंतर प्रतीत यह तातैं हम
रीति नीति निपट भुजंगनि की न्यारी है।
आँखिनि तैं एक तौ सुभाव सुनिवै कौ लियौ,
काननि तैं एक देखिवै की टेक धारी है॥७२॥

दौनाचल कौ ना यह छटक्यौ कनूका जाहि,
छाइ छिगुनी पै छेम-छत्र छिति छायौ है।
कहै रतनाकर न कूवर वधू-वर कौ,
जाहि रंच राँचैं पानि परसि गँवायौ है॥
यह गरु प्रेमाचल दृढ़-व्रत-धारिनि कौ,
जाकैं भार भाव उनहूँ कौ सकुचायौ है।
जानै कहा जानि कै अजान ह्वै सुजान कान्ह,
ताहि तुम्हैं वात सौं उड़ावन पठायौ है॥७३॥

सुधि वुधि जाति उड़ी जिनकी उसाँसनि सौं,
तिनकौं पठायौ कहा धीर धरि पाती पर।
कहै रतनाकर त्यौं विरह-वलाय ढाइ,
मुहर लगाइ गए सुख-थिर-थाती पर॥
और जो कियौ सो कियौ ऊधौ पै न कोऊ वियौ,
ऐसी घात धूनी करै जनम-सँघाती पर।
कूवरी की पीठि तैं उतारि भार भारी तुम्हैं,
भेज्यौ ताहि थापन हमारी छीन छाती पर॥७...

सुघर सलोने स्यामसुंदर सुजान कान्ह,
करुना-निधान के बसीठ बनि आए हौ।
प्रेम-प्रनधारी गिरिधारी कौ सनेसौ नाहिं,
होत है अँदेसौ झूठ बोलत बनाए हौ॥
ज्ञान गुन गौरव-गुमान-भरे फूले फिरौ,
बंचक के काज पै न रंचक बराए हौ।
रसिक-सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ,
मेरी जान ऊधौ कूर कूबरी पठाए हौ॥७५॥

कान्ह कूबरी के हिय हुलसे-सरोजनि तैं,
अमल अनंद-मकरंद जो ढरारै है।
कहै रतनाकर, यौं गोपी उर संचि ताहि,
तामैं पुनि आपनौ प्रपंच रंच पारै है॥
आइ निरगुन-गुन गाइ ब्रज मैं जो अब,
ताकौ उदगार ब्रह्मज्ञान रस गारै है।
मिलि सो तिहारौ मधु मधुप हमारैं नेह,
देह मैं अछेह बिप बिषम बगारै है॥७६॥

सीता असगुन कौं कटाई नाक एक बेरि,
सोई करि कूब राधिका पै फेरि फाटी है।
कहै रतनाकर परेखौ नाहिं याकौ नैंकु,
ताकी तौ सदा की यह पाकी परिपाटी है॥
सोच है यहै कै संग ताके रंगभौन माहिं,
कौन धौं अनोखौ ढंग रचत निराटी है।
छाँटि देत कूबर कै आँटि देत डाँट कोऊ,
काटि देत खाट किधौं पाटि देत माटी है॥७७॥

आए कंसराइ के पठाए वे प्रतच्छ तुम,
लागत अलच्छ कुवजा के पच्छवारे हौ।
कहै रतनाकर वियोग लाइ लाई उन,
तुम जोग बात के ववंडर पसारे हौ॥
कोऊ अवलानि पै न ढरिक ढरारे होत,
मधुपुरवारे सव एकै ढार ढारे हौ।
लै गए अक्रूर क्रूर तन तैं छुड़ाइ हाय,
ऊधौ तुम मन तैं छुड़ावन पधारे हौ॥७८॥

आए हौ पठाए वा छतीसे छलिया के इतै,
वीस विसै ऊधौ वीरवावन कलाँच ह्वै।
कहै रतनाकर प्रपंच ना पसारौ गाढ़े,
वाढ़े पै रहौगे साढ़े वाइस ही जाँच ह्वै॥
प्रेम अरु जोग मैं है जोग छठैं-आठैं पर्यौ,
एक ह्वै रहैं क्यौं दोऊ हीरा अरु काँच ह्वै।
तीन गुन पाँच तत्त्व वहकि वतावत सो,
जैहै तीन-तेरह तिहारी तीन-पाँच ह्वै॥७९॥

कंस के कहे सौं जदुवंस को वताइ उन्हैं,
तैसैं हीं प्रसंसि कुवजा पै ललचायौ जौ।
कहै रतनाकर न मुष्टिक चनूर आदि,
मल्लनि कौ ध्यान आनि हिय कसकायौ जौ॥
नंद जसुदा की सुख-मूरि करि धूरि सवै,
गोपी ग्वाल गैयनि पै गाज लै गिरायौ जौ।
होते कहूँ क्रूर तौ न जानैं करते धौं कहा,
एतौ क्रूर करम अक्रूर ह्वै कमायौ जौ॥८०॥

चाहत निकारन तिन्हैं जो उर-अंतर तैं,
ताकौ जोग नाहिं जोग-मंतर तिहारे मैं।
कहै रतनाकर बिलग करिबै मैं होति,
नीति बिपरीत महा कहति पुकारे मैं॥
तातै तिन्हैं ल्याइ लाइ हिय तैं हमारे बेगि,
सोचियै उपाय फेरि चित चेतवारे मैं।
ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि प्रान-मूरि,
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं॥८१॥

ह्याँ तौ ब्रजजीवन सौं जीवन हमारौ हाय,
जानैं कौन जीव लै उहाँ के जन जनमैं।
कहै रतनाकर बतावत कछू कौ कछू
ल्यावत न नैंकु हूँ बिबेक निज मन मैं॥
अच्छिनि उघारि ऊधौ करहु प्रतच्छ लच्छ,
इत पसु-पच्छिनि हूँ लाग है लगन मैं।
काहू की न जोहा करै ब्रह्म की समीहा सुनौ,
पीहा-पीहा रटत पपीहा मधुबन मैं॥८२॥

बाढ़्यौ ब्रज पै जो ऋन मधुपुर-बासिनि कौ,
तासौं ना उपाय काहूँ भाय उमहन कौं।
कहै रतनाकर बिचारत हुतीं हीं हम,
कोऊ सुभ जुक्ति तासौं मुक्त ह्वै रहन कौं॥
कीन्यौ उपकार दौरि दोउनि अपार ऊधौ,
सोई भूरि भार सौं उबारता लहन कौं।
लै गयो अक्रूर-क्रूर तब सुख-मूर कान्ह,
आए तुम आज प्रान-ब्याज उगहन कौं॥८३॥

पुरतीं न ज़ो पै मोर-चंद्रिका किरीट-काज,
जुरतीं कहा न काँच किरचैं कुभाय की।
कहै रतनाकर न भावते हमारे नैन,
तौ न कहा पावते कहूँधौं ठायँ पाय की॥
मान्यौ हम मान कै न मानती मनाएँ बेगि,
कीरति-कुमारी सुकुमारी चित-चाय की।
याही सोच माहिँ हम होतिं दूबरी कै कहा,
कूबरी हू होती ना पतोहू नंदराय की॥८४॥

हरि-तन-पानिप के भाजन दृगंचल तैं,
उमगि तपन तैं तपाक करि धावै ना।
कहै रतनाकर त्रिलोक-ओक-मंडल मैं,
बेगि ब्रह्मद्रव उपद्रव मचावै ना॥
हर कौं समेत हर-गिरि के गुमान गारि,
पल मैं पतालपुर पैठन पठावै ना।
फैलै बरसाने मैं न रावरी कहानी यह,
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना॥८५॥

आतुर न होहु ऊधौ आवति दिवारी अबै,
वैसियै पुरंदर-कृपा जौ लहि जाइगी।
होत नर ब्रह्म ब्रह्म-ज्ञान सौं बतावत जो,
कछु इहिँ नीति की प्रतीति गहि जाइगी॥
गिरिवर धारि जौ उबारि ब्रज लीन्यौ बलि,
तौ तौ भाँति काहू वह बात रहि जाइगी।
नातरु हमारी भारी बिरह-बलाय-संग,
सारी ब्रह्म-ज्ञानता तिहारी बहि जाइगी॥८६॥

आवत दिवारी बिलखाइ ब्रज-बारी कहैं,
अबकैं हमारैं गाँव गोधन पुजैहै को।
कहै रतनाकर बिबिध पकवान चाहि,
चाह सौं सराहि चख चंचल चलैहै को॥
निपट निहोरि जोरि हाथ निज साथ ऊधौ,
दमकति दिब्य दीपमालिका दिखैहै को।
कूबरी के कूबर तैं उबरि न पावैं कान्ह,
इंद्र-कोप-लोपक गुबर्धन उठैहै को॥८७॥

बिकसित बिपिन बसंतिकावली कौ रंग,
लखियत गोपिनि के अंग पियराने मैं।
बौरे बृंद लसत रसाल-बर बारिनि के,
पिक की पुकार है चबाव उमगाने मैं॥
होत पतझार झार तरुनि-समूहनि कौ,
बैहरि बसात लै उसास अधिकाने मैं।
काम-बिधि बाम की कला मैं मीन मेष कहा,
ऊधौ नित बसत बसंत बरसाने मैं॥८८॥

ठाम ठाम जीवन-बिहीन दीन दीसैं सबै,
चलति चबाई-बात तापत घनी रहै।
कहै रतनाकर न चैन दिन-रैन परै,
सूखी पत-छीन भई तरुनि अनी रहै॥
जारयौ अंग अब तौ बिधाता है इहाँ को भयो
तातैं ताहि जारन की ठसक ठनी रहै।
बगर-बगर आवैं बृषभान के नगर नित
भीषम-प्रभाव ऋतु ग्रीषम बनी रहै॥८९॥

रहति सदाई हरिआई हिय-घायनि मैं
ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है।
पीव-पीव गोपी पीर-पूरित पुकारति हैं
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है॥
लागी रहै नैननि सौं नीर की झरी औ
उठै चित मैं चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनस्याम धाम-धाम ब्रजमंडल मैं
ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है॥९०॥

जात घनस्याम के ललात दृग-कंज-पाँति,
घेरी दिख-साध-भौंर-भीर की अनी रहै।
कहै रतनाकर बिरह-बिधु बाम भयौ,
चंदहास ताने घात घालत घनी रहै॥
सीत-घाम-बरषा बिचार बिनु आने ब्रज,
पंचबान-बाननि की उमड़ ठनी रहै।
काम बिधना सौं लहि फरद दवामी सदा,
दरद दिवैया ऋतु सरद बनी रहै॥९१॥

रीते परे सकल निषंग कुसुमायुध के
दूर दुरे कान्ह पै न तातैं चलै चारौ है।
कहै रतनाकर बिहाइ बर मानस कौं
लीन्यौ है हुलास-हंस बास दूरिवारौ है॥
पाला परै आस पै न भावत बतास बारि
जात कुम्हिलात हियौ कमल हमारौ है।
षट ऋतु ह्वैहै कहूँ अनत दिगंतनि मैं
इत तौ हिमंत कौ निरंतर पसारौ है॥९२॥

काँपि-काँपि उठत करेजौ कर चाँपि-चाँपि
उर ब्रजवासिनि कैं निठुर ठनी रहै।
कहै रतनाकर न जीवन सुहात रंच
पाला की पटास परी आसनि घनी रहै॥
बारिनि मैं बिसद बिकास ना प्रकास करै
अलिनि बिलास मैं उदासता सनी रहै।
माधव के आवन की आवर्ति न बातैं नैकुँ
नित प्रति तातैं ऋतु सिसिर बनी रहै॥९३॥

माने कब नैंकु ना मनाएँ मनमोहन के
तोपै मनमोहिनि मनाए कहा मानौ तुम।
कहै रतनाकर मलीन मकरी लौं नित
आपुनौहीं जाल आपने हीं पर तानौ तुम॥
कबहूँ परे न नैन-नीर हूँ के फेर माहिं
पैरिबौ सनेह-सिंधु-माहिं कहा ठानौ तुम।
जानत न ब्रह्म हूँ प्रमानत अलच्छ ताहि
तौपै भला प्रेम कौं प्रतच्छ कहा जानौ तुम॥९४॥

हाल कहा बूझत बिहाल परीं बाल सबै
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ।
रोग यह कठिन, न ऊधौ कहिवे के जोग
सूधौ सौ सँदेस याहि तू न ठहराइयौ॥
औसर मिलै औ सर-ताज कछु पूछहिं तौ
कहियौ कछू न दसा देखी सो दिखाइयौ।
आह कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिवे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ॥९५॥

नंद जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कछू

बात वृषभानु-भौन हूँ की जनि कीजियौ।

कहै रतनाकर कहति सब हा हा खाइ

ह्याँ के परपंचनि सौं रंच न पसीजियौ ॥

आँसु भरि ऐहै औ उदास मुख ह्वै है हाय

ब्रज-दुख-त्रास की न तातैं साँस लीजियौ।

नाम कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस

स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ ॥९६॥

ऊधो यहै सूधौ सौ सँदेस कहि दीजौ एक

जानति अनेक ना विवेक ब्रज-बारी हैं।

कहै रतनाकर असीम रावरी तौ छमा

छमता कहाँ लौं अपराध की हमारी हैं ॥

दीजै और ताजनं सबै जो मन भावै पर

कीजै ना दरस-रस-बंचित बिचारी हैं।

भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हू हैं

जो कहौ सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं ॥९७॥

[उद्धव की ब्रज-बिदाई]

धाईं जित तित तैं बिदाई-हेत ऊधव की

गोपी भरीं आरति सँभारति न साँसु री।

कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिए

कोऊ गुंज-अंजली उमाहे प्रेम-आँसु री ॥

भाव-भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही

कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी।

पीत पट नंद जसुमति नवनीत नयौ

कीरति-कुमारी सुरबारी दई बाँसुरी ॥९८॥

कोऊ जोरि हाथ कोऊ नाइ नम्रता सौं माथ
भाषन की लाख लालसा सौं नहि जात हैं।
कहै रतनाकर चलत उठि ऊधव के
कातर ह्वै प्रेम सौं सकल महि जात हैं॥
सबद न पावत सो भाव उमगावत जो
ताकि-ताकि आनन ठगे से हठि जात हैं।
रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ
रंचक हमारी सुनौ कहि रहि जात हैं॥६६॥

दाबि-दाबि छाती पाती लिखन लगायौ सबै
ब्यौंत लिखिबै कौपै न कोऊ करि जात है।
कहै रतनाकर फुरति नाहिं बात कछू
हाथ धर्यौ ही-तल थहरि थरि जात है॥
ऊधौ के निहोरैं फेरि नैंकु धीर जोरैं पर
ऐसौ अंग ताप कौ प्रताप भरि जात है।
सूखि जाति स्याही लेखिनी कैं नैंकु डंक लागैं
अंक लागैं कागद बररि बरि जात है॥१००॥

कोऊ चले काँपि संग कोऊ उर चाँपि चले
कोऊ चले कछुक अलापि हलबल से।
कहै रतनाकर सुदेस तजि कोऊ चले
कोऊ चले कहत सँदेस अबिरल से॥
आँस चले काहू के सु काहू के उसाँस चले
काहू के हियै पै चंदहास चले हल से।
ऊधव कैं चलत चलाचल चली यौं चल
अचल चले औ अचले हू भए चल से॥१०१॥

दीन्यौ प्रेम-नेम-गुरुवा-गुन ऊधव कौं
हिय सौं हमेव-हरुवाई वहिराइ कै।
कहै रतनाकर त्यौं कंचन वनाई काय
ज्ञान-अभिमान की तमाई विनसाइ कै॥
वातनि की धौंक सौं धमाइ चहुँ कोदनि सौं
निज विरहानल तपाइ पघिलाइ कै।
गोप की वधूटी प्रेमी-बूटी के सहारे मारे
चल-चित-पारे की भसम भुरकाइ कै॥१०२॥

[उद्धव का मथुरा लौटना]

गोपी, ग्वाल, नंद, जसुदा सौं तो विदा ह्वै उठे
उठत न पाय पै उठावत डगत हैं।
कहै रतनाकर सँभारि सारथी पै नीठि
दीठिनि वचाइ चल्यौ चोर ज्यौं भगत हैं॥
कुंजनि की कूल की कलिंदी की रुऐंदी दसा
देखि देखि आँस औ उसाँस उमगत हैं।
रथ तैं उतरि पथ पावन जहाँ हीं तहाँ
विकल विसूरि धूरि लोटन लगत हैं॥१०३॥

भूले जोग-छेम प्रेम-नेमहिं निहारि ऊधौ
सकुचि समाने उर-अंतर हरास लौं।
कहै रतनाकर प्रभाव सव ऊने भए
सूने भए नैन वैन अरथ-उदास लौं॥
माँगी विदा माँगत ज्यौं मीच उर भीचि कोऊ
कीन्यौ मौन गौन निज हिय के हुलास लौं।
विथकित साँस लौं चलत रुकि जात फेरि
आँस लौं गिरत पुनि उठत उसास लौं॥१०४॥

चल-चित-पारद को दंभ कंचुली कै दूरि
ब्रज-मग-धूरि प्रेम-मूरि सुभ सीली लै।
कहै रतनाकर सु जोगनि बिधान भावि
अमित प्रमान ज्ञान-गंधक गुनीली लै॥
जारि घट-अंतर हीँ आह-धूम धारि सबै
गोपी बिरहागिनि निरंतर जगीली लै॥
आए लौटि ऊधव विभूति भव्य भायनि की
कायनि की रुचिर रसायन रसीली लै॥१०५॥

आए लौटि लज्जित नवाए नैन ऊधौ अब
सब सुख-साधन कौ सूधौ सौ जतन लै।
कहै रतनाकर गवाँए गुन गौरव औ
गरव-गढ़ी कौ परिपूरन पतन लै॥
छाए नैन नीर पीर-कसक कमाए उर
दीनता अधीनता के भार सौँ नतन लै।
प्रेम-रस रुचिर विराग-तूमड़ी मैँ पूरि
ज्ञान-गूदड़ी मैँ अनुराग सौ रतन लै॥१०६॥

आए दौरि पौरि लौँ अवाई सुनि ऊधव की
और ही विलोकि दसा दृग भरि लेत हैँ॥
कहै रतनाकर विलोकि विलखात उन्हैँ
येऊ कर काँपत करेजैँ धरि लेत हैँ॥
आवति कछुक पूछिवे औ कहिवे की मन
परत न साहस पै दोऊ दरि लेत हैँ।
आनन उदास साँस भरि उकसौँहैँ करि
सौँहैँ करि नैननि निचौँहैँ कर लेत हैँ॥१०७॥

प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं
सारत बहोलिनि जो आँस-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ
एक कर बंसी बर राधिका-पठाई है॥१०८॥

ब्रज-रज-रंजित सरीर सुभ ऊधव कौ
धाइ बलबीर ह्वै अधीर लपटाए लेत।
कहै रतनाकर सु प्रेम-मद-माते हेरि
थरकति बाँह थामि थहरि थिराए लेत॥
कीरति-कुमारी के दरस-रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोंछि
पोंछि-पोंछि पट निज नैननि लगाए लेत॥१०९॥

[उद्धव के वचन *श्रीभगवान प्रति*]

आँसुनि की धार औ उभार कौं उसाँसनि के
तार हिचकीनि के तनक टरि लेन देहु।
कहै रतनाकर फुरन देहु बात रंच
भावनि के विषम प्रपंच सरि लेन देहु॥
आतुर ह्वै और हू न कातर बनावौ नाथ
नैसुक निवारि पीर धीर धरि लेन देहु।
कहत अबै हैं कहि आवत जहाँ लौं सबै
नैंकु थिर कढ़त करेजौ करि लेन देहु॥११०॥

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कैं तीर,
गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं ।
कहै रतनाकर बिहाइ प्रेम-गाथा गूढ़,
स्रौन रसना मैं रस और भरते नहीं ॥
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि,
लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं ।
होतौ चित चाव जौ न रावरे चितावन कौ,
तजि ब्रज-गाँव इतै पावँ धरते नहीं ॥११७॥

भाठी कै बियोग जोग-जटिल लुकाठी लाइ
लाग सौं सुहाग के अदाग पिघलाए हैं।
कहै रतनाकर सुबृत्त प्रेम साँचे माहिं,
काँचे नेम संजम निबृत्त कै ढराए हैं ॥
अब परि बीच खींचि बिरह-मरीचि-बिंब,
देत लव लाग की गुबिंद-उर लाए हैं ।
गोपी-ताप-तरुन-तरनि-किरनावलि के,
ऊधव नितांत कांत-मनि बनि आए हैं ॥११८॥

गंगावतरण

मंगलाचरण

जय विधि-संचित-सुकृत-सार-सुख-सागर-संगिनि ।
जय हरि-पद-अरविंद-मंजु-मकरंद-तरंगिनि ॥
जय सुर-सेवित-संभु-विपुल-वल-विक्रम-साका ।
जय भूपति-कुल-कलस-भगीरथ-पुन्य-पताका ॥
जय गंग सकल-कलि-मल हरनि विमल-चरनि बानी करौ ।
निज महि-अवतरन-चरित्र के भव्य भाव उर मैं भरौ ॥१॥

जय वृंदारक-वृंद - वंद्य बुध - गन - आनंदिनि ।
जय मुख-चंद्र-प्रकासि हृदय-तम-रासि-निकंदिनि ॥
जय सुमंद मुसक्याइ कृपा-चंदक-संचारिनि ।
जय कविंद-उर-अजिर सदा स्वच्छंद विहारिनि ॥
तव वीना-पुस्तक-वाद बर रतनाकर उर मैं बसैं ।
सुभ सब्द,अर्थ-लालित्य दोउ गंग-औतरन मैं लसैं ॥२॥

सिंधुर-बदन-सुरंग गंग - सिर - धरन - दुलारे ।
गिरजा-गोद विनोद करत मोदक मुख धारे ॥
सुभ सुंडिका उभारि धारि सीतल जल धावत ।
षड़मुख-सन्मुख सुमुख साधि उमकत मकावत ॥
सो लुकत ओट नंदीस की लखि दंपति-मन मुद भरै ।
यह बाल-खेल गनपाल कौ विघन-जाल सुमिरत हरै ॥३॥

प्रथम सर्ग

पावनि - सरजू - तीर अवध - पुरि बसति सुहावनि ।
महि - महिमा - आधार त्रिपुर सोभा - सरसावनि ॥
मेदिनि - मंडल - मंजु - मुद्रिका - मनि सी राजै ।
बन-राजी चहुँ फेर घेर-नग की छवि छाजै ॥१॥

वसुधा - सुभग - सिंगार - हार - लर सरजू सोहै ।
मनि - नायक सु - ललाम धाम साकेत बिमोहै ॥
भुक्ति - मुक्ति की खानिं बेद - इतिहास - बखानी ।
जाकौ वास महान पुन्य सौं पावत प्रानी ॥२॥

सप्त पुरिनि मैं प्रथम रेख जाकी जग लेखत ।
सुर समाज ह्वै दंग रंग जाकौ जुरि देखत ॥
ताकी जथा - स्वरूप कौन करि सकत बड़ाई ।
जौ त्रिलोक - अभिराम रामहूँ कैं मन भाई ॥३॥

धवल धाम अभिराम लसत तहँ विसद बनाए ।
हाट बाट कै ठाट सुघर सुंदर मन भाए ॥
रुचिर रम्य आराम जिन्हैं लखि नंदन लाजत ।
वापी कूप तड़ाग भरे जल विमल बिराजत ॥४॥

दिनकर - वंस - अनूप - भूप - गन - की रजधानी ।
न्याय चाय कैं भाय सदा सासित सुख-सानी ॥
चारहुँ वरन पुनीत वसत जहँ आनँद माने ।
धनी गुनी सुभ-कर्म धर्म-रत सुमति सयाने ॥५॥

भयौ भूप तिहिं नगर सगर इक परम प्रतापी ।
दिग-छोरनि लौं उमगि जासु कल कीरति व्यापी ॥
रिपु-बल-खल-दल-दलन प्रजा-परिजन-दुख-भंजन ।
गुनि-जन-जीवन-मूल सुकृति-सज्जन - मन - रंजन ॥६॥

गो-ब्राह्मन - प्रतिपाल ईस - गुरु - भक्त अदूषित ।
बल-विक्रम-बुधि-रूपधाम सुभ-गुन - गन - भूषित ॥
नीति-पाल जिहिं सचिव बाल की खाल खिंचैया ।
सेनप स्वामि - प्रसेद - पात - थल रक्त - सिंचैया ॥७॥

भामिनि - भूषन भईं जुगल ताकी पटरानी ।
ज्ञान - सुसंगिनि जथा भक्ति स्त्रद्धा सुख-सानी ॥
जोबन - रूप - अनूप भूप - सुचि - रुचि-अनुगामिनि ।
जिनकी प्रभा निहारि हारि सकुचति सुर-स्वामिनि ॥८॥

इक केसिनी बिदर्भ-राज वर की कुल-कन्या ।
दूजी सुमति सुपर्न - भव्य - भगिनी भुवि - धन्या ॥
दोउ पुनीत पति-प्रीति-पात्र दोउ पति अनुरागिनि ।
दोउ कुल-कमला-गिरा-रूप दोउ अति बड़-भागिनि ॥९॥

भव-वैभव कौ जदपि भूप-गृह अमित उज्यारौ ।
तउ इक सुत कुल-दीप बिना सब लगत अँध्यारौ ॥
इक दिन मानि गलानि नीर नैननि नृप ढारयौ ।
काया - कष्ट उठाइ इष्ट-साधन निरधारयौ ॥१०॥

हिम - गिरि कैं प्रस्रवन - पार्स्व मुनि-जन-मन-हारी ।
सुर - किन्नर - गंधर्व - सिद्ध - चारन - सुख-कारी ॥
दोउ भामिनि लै संग भूप भृगु-आस्रम आए ।
करि तप उग्र सहर्ष वर्ष सत सतत बिताए ॥११॥

ह्वै प्रसन्न ऋषिराज नृपति आदर अति कीन्यौ ।
मन-मान्यौ बरदान दिव्य दोउ दारनि दीन्यौ ॥
लहै केसिनी पूत एक कुल - संतति - कारी ।
साठ सहस सुत सुमति बिपुल-बल-बिक्रम-धारी ॥१२॥

लहि नरवर वर प्रवर पलटि निज नगर पधारे।
पुरजन-स्वजन-समूह भए सब सुहृद सुखारे॥
कछु दिन बीतैं भई गर्भ-गरुई दुहुँ रानी।
भरि औरै द्युति देह नवल सोभा सरसानी॥१३॥

लहि सुभ समय-निदेस केसिनी सुत इक जायौ।
गुरुवर गुनि गुन तासु नाम असमंज धरायौ॥
सुमति सलोनी जनी एक तूँबी अति अद्भुत।
निकसे जासौं साठ सहस्र लघु बीज सरिस सुत॥१४॥

दीरघ घृत-घट घालि पालि ते धाइ बढ़ाए।
समय-संग सब अंग रूप जोवन अधिकाए॥
महा वीर वरिबंड भए महि-मंडल-मंडन।
निज भुजदंड उदंड चंड-अरि-मुंड-बिहंडन॥१५॥

उत असमंजहु भयौ भूरि-बल-विक्रम-साली।
पै अति उद्धत कुल-विरुद्ध निर्बुद्धि कुचाली॥
फलित कलपतरु माहिं कटुक माहुर-फल आयो।
विधि कलंक कौ पंक विमल-विधु-अंक लगायौ॥१६॥

ताकी क्रीड़ा विषम माहिँ पीड़ा जग पावत।
पुर-बालक बहु पकरि सदा सो सरित डुबावत॥
दीन प्रजा दुख पाइ पाइ नृप-द्वार गुहारति।
लहत भूप संताप चहत तिनकी अति आरति॥१७॥

सुनि पुकारि इक बार नीर नैननि नृप ढारयौ।
तुरत ताहि तजि नेह गेह सौं दूरि निकारयौ॥
जैसैं जन बहु करि उपाय औषधि, हिय हारत।
सब अंगनि दुख-देत दंत बुधिवंत उखारत॥१८॥

ताकौ सुत सुभ अंसुमान कल-कीरति-धारी।
प्रिय-बादी प्रिय-रूप भूप-परिजन-हितकारी॥
भयौ जुबा ह्वै धीर वीर वरिबंड प्रतापी।
परम बिनीत पुनीत नीति-मरजादा-थापी॥१६॥

दियौ राज कौ काज ताहि जुवराज बनायौ।
अस्वमेध के करन माँहिं नृप निज मन लायौ॥
बोलि साधनी-पुंज मंजु मंडप रचवायौ।
जाकी सोभा निरखि बिस्वकर्मा सकुचायौ॥२०॥

ऋत्विज-गन अति निपुन वेद-विद न्यौति पठाए।
गुरु वसिष्ठ लै ऋपि-समाज सादर तहँ आए॥
छोड्यौ छिति-पति स्यामकरन सुवरन वर बाजी।
ताकैं सँग डटि चली बिकट सुभटनि की राजी॥२१॥

परम साहसी साठ सहस नृप-सुत असि-ग्राही।
दृढ़-दीरघ-वल-चलित-काय अतिसय उतसाही॥
गर्जत तर्जत चलें संग सब अंग उमैठत।
जिनकौ लखि आतंक वंक अरि-उर भय पैठत॥२२॥

फिर्‌यौ अस्व चहुँ ओर छोर छिति की सब छानी।
पै मनसायौ नैकुँ नाहिं कोउ प्रतिभट मानी॥
रह्यौ बाँधिबौ दूरि घूरि कोउ ताहि न देखत।
प्रत्युत पूजि सभीति ईति भीती निज लेखत॥२३॥

इमि बाजी प्रति नगर सगर-कीरति कल थापी।
ताकी प्रभुता-छाप टाप-रेखनि छिति छापी॥
करि करनी की अवधि अवध सब पलटि पधारे।
देत दुंदुभी करत नाद अति आनँदवारे॥२४॥

यह लखि-मघवा बिलखि माखि मख-भंग बिचार्‌यौ ।
स्यामकरन - अपहरण - मंत्र हिय हठि निरधार्‌यौ ॥
पै रच्छक रन - दच्छ देखि अच्छय - बल - साली ।
भयौ प्रतच्छ न लच्छ अलच्छहिँ हर्‌यौ कुचाली ॥२५॥

पुनि गुनि सगर-प्रताप ताहि निज नगर न राख्यौ ।
कोउ अति दुर्गम दूर देस गोपन अभिलाख्यो ॥
पर्व - दिवस लै अस्व चल्यौ चहुँधा चख फेरत ।
नर अभुक्त उपयुक्त थान ताकैं हित हेरत ॥२६॥

महि - मंडल सब सोधि सपदि पाताल पधार्‌यौ ।
कपिल-धाम अभिराम तहाँ हिय हरषि निहार्‌यौ ॥
गयौ अस्व तहँ छोड़ि जहाँ मुनि करत तपस्या ।
बिरची राज-समाज-काज अति कठिन समस्या ॥२७॥

इत बिस्मित-चित चकित लगे चहुँ दिसि सब चाहन ।
बुधि-प्रमान अनुमान - सिंधु अवगाहन थाहन ॥
बायु-बेग रथ बाजि साजि कोउ दौर लगावत ।
कोउ बन-उपवन - हाट बाट-बीथिनि मैं धावत ॥२८॥

तिल-तिल सब मिलि सकल मेदिनि-मंडल सोध्यौ ।
अस्त्र सस्त्र कहु साजि गाजि दस दिसि अवरोध्यौ ॥
भए थकित सब खोजि अस्व की खोज न पाई ।
गए धर्म की धाक जथा नहिँ देति दिखाई ॥२९॥

तब भूपति-ढिग आनि व्यवस्था बिषम बखानी ।
बिस्मय - ब्रीड़ा - त्रास - हास - लटपट मृदु बानी ॥
पर्‌यौ रंग मैं भंग दंग ह्वै सकल बिचारत ।
मूक भाव सौं एक एक कौ बदन निहारत ॥३०॥

उपाध्याय-गन धाइ धवल आनन लटकाए।
त्रिकुटी उँचै ससंक बंक भ्रुकुटी भभराए॥
भरि गँभीर स्वर भाव भूप सौं कियौ निवेदन।
गयौ पर्व-दिन अस्व भयौ भारी हित-छेदन ॥२१॥

सुनि अति अनहित बैन भए नृप-नैन रिसौंहैं।
फरकि उठे भुजदंड तने तेवर तरजौंहैं॥
कह्यौ सारथी टेरि त्रिपथ-गामी रथ नाधौ।
महाचाप सायक अमोघ भाथनि भरि बाँधौ ॥२२॥

सेनप होहिं सनद्ध सकल-जग-जीतनहारे।
हम चलि देखैं आप कौन कौं प्रान न प्यारे॥
काकौ सिर धर त्यागि धरा पर परन चहत है।
को जम-गाल कराल भाल निज भरन चहत है ॥२३॥

चाह्यौ उठन भुवाल भापि इमि बलकति बानी।
पै राख्यौ कर पकरि रोकि गुरुवर विज्ञानी॥
कह्यौ अहो नृप कौन ढार यह ढरन चहत हौ।
वृथा जज्ञ-फल-लोप कोप करि करन चहत हौ ॥२४॥

जज्ञ-सरन ज्यौं त्यागि चरन बाहिर कढ़ि जैहै।
ह्वैहै त्यौं मख-भंग रंग रिपु कौ बढ़ि जैहै॥
पुनि याहू तौ करि बिबेक मन नैंकु बिचारौ।
कापै साजत सेन कौन जग सत्रु तिहारौ ॥२५॥

महि मंडल मैं भूप कौन ऐसौ भट मानी।
जो तव अच्छ-समच्छ सकत कर पकरि कृपानी॥
पै बिन जानैं कहौ कौन पै अस्त्र चलैहौ।
उथल-पथल थल किएँ वृथा कछु लाभ न पैहौ ॥२६॥

करि उपयुक्त उपाय प्रथम हय-खोज लगावौ।
जथाजोग उद्योग साधि ताकौं पुनि पावौ॥
अपकीरति अपमान अमंगल न तु जग छैहै।
विमल भानु-कुल आनि राहु-छाया परि जैहै॥३७॥

इमि सुनत वचन गुरुदेव के विधि-विवेक-आदर-भरे।
अति सोक सोच संकोच के खीच-बीच नरपति परे॥३८॥

द्वितीय सर्ग

तव नृप गुरु-पद वंदि चंदसेखर उर धाए।
जज्ञ पुरैवौ ठानि विज्ञ दैवज्ञ वुलाए॥
पूजि जथाविधि असन-वसन भूपन सौं तोपे।
दिए दच्छिना माहिं लच्छ सुवरन पय-तोपे॥१॥

वहुरि जोरि जुग पानि-सानि मृदु रस वर वानी।
स्यामकरन की हरन-व्यवस्था त्रिपम वखानी॥
कियौ प्रस्न पुनि गयौ-कहाँ वह अस्व हमारौ।
हारे हेरि समस्त व्यस्त महि-मंडल सारौ॥२॥

कढ़ी परति करवाल कोस सौं चमकि-चमकि कै।
निकसे आवत वान तून सौं तमकि-तमकि कै॥
उठि-उठि कर रहि जात कसकि तिनके वाहन कौं।
पै न लगति अरि-खोज ओज सौं उत्साहन कौं॥३॥

जोग लगन दिन नखत सोधि सब लगे विचारन।
रेखा अंक खँचाइ दीठि पाटी पर पारन॥
करि-करि पृथक विचार मेलिसब सार निसार्‌यौ।
गनपति गिरा मनाइ नाइ सिर वचन उचार्‌यौ॥४॥

बाजी गयौ पताल यहै ग्रह-चाल बतावति।
हरनहार कौ धाम ठाम ऊँचौ ठहरावति॥
है मिलिवौ स्रम-साध्य दैव पर अंत मिलैहै।
ह्वैहै सुभ परिनाम आदि अति असुभ लखैहै॥५॥

सुनि गनकनि की गूढ़ गिरा सब विस्मय पागे।
असुभ-त्रास-सुभ-आस-भरे निरखन मुख लागे॥
मख राखन कौ रंग पाइ नरपति हरियाने।
मानौ सूखत सालि-खेत पर घन घहराने॥६॥

और भाव सब भूलि भूप मन मैं मुद मान्यौ।
परमारथ कौ लाभ अस्व-पावन मैं जान्यौ॥
साठ सहस सुत धीर वीर वरिबंड बुलाए।
कर्ष-हर्ष-आमर्ष-जनक वर वचन सुनाए॥७॥

जाके पूत सपूत होहिं तुम से बल-साली।
ताकौ हय हरि लेहि हाय कोउ कूर कुचाली॥
देव दनुज थहरात देखि दल तात तिहारौ।
कहा बापुरौ चपल चोर आधे-जियवारौ॥८॥

ह्वैहै अति हित-हानि अस्व जो हाथ न ऐहै।
हंस-वंस की साक धाक माटी मिलि जैहै॥
ह्वै सनद्ध कटि-बद्ध सकल मन-सुद्ध सिधारौ।
पैठि पेलि पाताल तुरत हय हेरि निकारौ॥९॥

उथल - पथल तल करहु सकल बसुधा धरि नाठौ।
जल-मय थल करि देहु जलधि सब थल भरि भाठौ॥
सुर किन्नर नर नाग अस्व - हर्ता जिहिं पावौ।
तुरत तुरंगम छीनि ताहि जम - लोक पठावौ॥१०॥

रैहैं आहुति देत भए दीच्छित हम तब लौं।
करिहौं पूरन जज्ञ पाइ बाजी नहिं जब लौं॥
तातैं तन मन लाइ वेगि बिक्रम बिस्तारौ।
धरै ईस कर सीस करै कल्यान तिहारौ॥११॥

पितु आयसु सुनि सकल सुमति - नंदन मन माषे।
तमकि तोलि भुजदंड चंड बिक्रम अभिलाषे॥
चले नाइ पद माथ हाथ मोछनि पर फेरत।
सिंहनाद बिकराल लाल लोचन करि हेरत॥१२॥

जोजन जोजन बाँटि खोदि खोजन महि लागे।
सूल - कुदाल - गदाल घात - रव सब जग जागे॥
मनहु खाइ हिय घाइ मेदिनी मर्म - बिदारी—
टेरति उच्च बिषाद - नाद सौं हरि दुख - हारी॥१३॥

प्रबल प्रहारनि पौन चपल बाजी लौं चमकत।
हलचल होत समुद्र भद्र - अद्री - उर धमकत॥
उड़त फुलिंग असेस, सेस मानौ फुफुकारत।
सुरपतिहूँ पछतात प्रलय - आगम निरधारत॥१४॥

गड़ा सिंह गयंद रीछ आदिक बनचारी।
राकस - असुर - समाज उरग महि - उदर - बिहारी॥
बिदलित होत सगोत बिकल बिललात बिसूरत।
हाहाकार मचाइ दिसनि करुना सौं पूरत॥१५॥

तहस-नहस करि सहस साठ जोजन वसुधा-तल।
जंबुदीप चहुँ कोद खोदि सब कियौ रसातल॥
उलट-पलट ह्वै गई सकल मिति तिथि जलथल की।
उड़ी अचलता-धाक धूरि ह्वै विचलि अचल की॥१६॥

देव दनुज गंधर्व नाग तव सब अकुलाए।
सर्व लोक के पूज्य पितामह पहँ जुरि आए॥
माथ नाय मन पाइ हाथ जुग जोरि सुवानी।
ह्वै उदास भरि साँस कही जग-त्रास-कहानी॥१७॥

सगर-सुवन सुख-दुवन भुवन खोदे सब डारत।
जलचारी बहु सिद्ध संत मारे अरु मारत॥
कछु काहू की कानि आन उर मैं नहिं राखत।
परम प्रचंड उदंड वदन आरत सो भाषत॥१८॥

'इहै कियौ मख-भंग इहै हरि लियौ तुरंगम'।
यौं कहि हिंसत सबहिं लहहिं जासौं जहँ संगम॥
साठ सहस महिपाल-पूत महि-मर्म विदारत।
त्राहि-त्राहि भगवंत भए प्रानी सब आरत॥१९॥

लखि देवनि की भीति प्रीति-जुत कह्यौ विधाता।
धरहु धीर महि-नीर वेगि हरिहै जगत्राता॥
सोइ प्रभु करुना-पुंज मंजु महिषी यह जाकी।
कपिल-रूप धरि धरत करत रच्छा नित याकी॥२०॥

इहि विधि करत कुचाल जबै पाताल सिधैहैं।
कपिल-कोप-विकराल-ज्वाल सौं सब जरि जैहैं॥
भूमि-भेद कौं कियौ वेद आदिहिं निर्धारन।
सगर-कुमारनि-काज आज जारन कौ कारन॥२१॥

धरि आयसु सुभ सीस ईस-चरननि चित दीने।
अस्त्र सस्त्र पाथेय सूर सेनप सँग लीने॥
अंसुमान सुख मानि चल्यौ हेरन बर बाजी।
गुरु वसिष्ट-पद पूजि वंदि विप्रनि की राजी॥६॥

गिरि-खोहनि खाड़िनि गँभीर सो स्त्रम करि सोध्यौ।
कूप-सरित-सर-ताल-खाल-पालनि मन वोध्यौ॥
पै न अस्व की टोह कहूँ काहू सौं पाई।
न तु पताल-पुर-पंथ दियौ कहुँ दृगनि दिखाई॥७॥

इक दिन देख्यौ जात भूमि-नीचे कौ मारग।
सगर-सुतनि कौ खन्यौ अतल-वितलादिक-पारग॥
तिहिं लखि ललकि कुमार लग्यौ दृग-डोरनि थाहन।
कछु विस्मय कछु हर्ष कछुक चिंता सौं चाहन॥८॥

भानु-वंस कौ बहुरि वीर वर विरद विचार्यौ।
कर कृपान उर ईस-आस तिहिं मग पग धार्यौ॥
जाइ रसातल धाइ दिव्य दिग्गज सव देखे।
देव-दनुज-सेवित निहारि अति सुभ करि लेखे॥९॥

करि करि सबहिं प्रनाम नाम कहि काम जनायौ।
पै तिनहूँ सौं नैंकु अस्व-संवाद न पायौ॥
लहि असीस चलि चपल सकल पुनि पाय बढ़ाए।
सहत दुसह-दुख-दाह कपिल-आस्त्रम मैं आए॥१०॥

सुगति गरुड़ तहँ मिल्यौ सुमति-भ्राता सुभ-दानी।
मानहु मंगल सकुन-राज कीन्ही अगवानी॥
जानि पितामह-सरिस कुँवर सादर सिर नायौ।
निज आगम के सकल विषम संवाद सुनायौ॥११॥

बहुरि कह्यौ कर जोरि विनय-रस बोरि वचन मैं।
तात तुम्हैं सब ज्ञात, तिहारी गति त्रिभुवन मैं॥
पितरनि कौ वृत्तांत कछुक करुना करि भापौ।
पुनि कहि कहाँ तुरंग रंग रवि-कुल कौ राखौ॥१२॥

अंसुमान के बैन बैनतेयहिं अति भाए।
सगर-सुतनि कौं सुमिरि सोचि लोचन भरि आए॥
करी भाँति बहु पच्छि-राज जुवराज-बड़ाई।
बरनि वीरता विनय बचन-रचना-चतुराई॥१३॥

भाष्यौ बहुरि बताइ छार-रासिनि कौ लेखौ।
निज पितरनि की पूत दसा दारुन यह देखौ॥
भए छनक मैं छार सकल निज पाप प्रबल सौं।
अप्रमेय-तप-तेज कपिल के कोप-अनल सौं॥१४॥

यौं कहि जथा-प्रसंग कथा संछेप बखानी।
कहत सुनत दुहुँ दृगनि सोक-सरिता उमगानी॥
अंसुमान सुनि समाचार सब अति दुख पाग्यौ।
लखि लखि छार पछार खाइ बिलपन लुठि लाग्यौ॥१५॥

हाय तात यह भयौ घात बिन बात तिहारौ।
होम करत कर जर्‌यौ पर्‌यौ बिधि बाम हमारौ॥
आए बाजी लेन बेचि बाजी इमि सोवत।
उठत क्यौं न पितु लखत बाट उत इत सिसु रोवत॥१६॥

सके न देखि उदास कबहुँ तुम बदन हमारौ।
बिलकत आज बिलोकि क्यौं न कर गहि चुलकारौ।
खेलन खोरि न दियौ हमैं तुम धूर-धुरेटे।
सो अब आपुहिं आइ छार-रासिनि मैं लेटे॥१७॥

पठयौ इहैं भुआल तात सुधि लेन सिधारौ।
करौं कहा संहार जाइ इन मर्म-बिदारौ॥
सुनतहिं ताकौ कौन दसा दारुन ह्वै जैहै।
सुमति केसिनी कौ बिषाद-मरजाद नसैहै॥ ८॥

सुनि यह बिपत बिलाप ताप खग-पति अति पायौ।
कहि अनेक इतिहास नाहिं कछु बिधि समुझायौ॥
धीर बीर इक्ष्वाकु-बंस कौ बिरद उचारयौ।
छत्रिनि कौ सुभ परम धरम धीरज निरधारयौ॥९॥

गुरु बसिष्ठ कौ सिष्य भाषि है सरुक समायौ।
भावी-भोग न टरन जोग सब भाँति लखायौ॥
पुनि इक दिसि चलि कपिलदेव कौ दरस करायौ।
तिनकैं पास पुनीत जग्य-हय चरत दिखायौ॥१०॥

अंसुमान बिस्राम लयौ कछु मुनि-दरसन तैं।
कछुक तोष हय हेरि हियैं आसा सरसन तैं॥
माथ नाइ सकुचाइ मनहिं मन बंदन कीन्हौ।
धन्यवाद इहिं लाभ-काज खग-राजहिं दीन्हौ॥११॥

लख्यौ बहुरि सो लसन कोउ सुचि-रुचिर-जलासय।
जासौं लहि जल-क्रिया जाहिं सब पितर सुरालय॥
करि लच्छित यह लच्छ पच्छि-पति बानिनि पाग्यौ।
स्रद्धा सील बिबेक बरनि कहि साधु सराग्यौ॥ १२॥

पुनि नैननि भरि नीर पीर-जुत बचन उचारयौ।
अस्वमेध-हय-कपिल-साप सब पितरनि जारयौ।
लहि यह लौकिक आप ताप तिनकौ नहिं जैहै॥
सात समुंदर सींचि न बाड़व-ज्वाल जुड़ैहै॥१३॥

तिनके तारन कौ उपाय दुस्साध्य महा है।
पै तिहिं स्रम-हित हंस-वंस वर बाध्य महा है॥
केवल गंग-तरंग पाप यह टारि सकति है।
कपिल-साप सौं ब्रह्मद्रव-उद्धारि सकति है॥२४॥

धर्म-धीर जो वीर इन्हैं तारन मन ठानै।
सो स्रम साधि अभंग गंग इहि आस्रम आनै॥
परत छार सो धार तुरत सिगरे तरि जैहैं।
कपिल-साप को दाप पाप के ताप नसैहैं॥२५॥

कोऊ अपर उपाय तिन्हैं तारन कौ नाहीं।
हम करि गूढ़ विचार चारु देख्यौ मन माहीं॥
तातैं अब लै तुरग तात तुम सपदि सधावौ।
जोहत बाट भुआल काल जनि वृथा वितावौ॥२६॥

अंसुमान करि कान विस्नु-वाहन की बानी।
ह्वै विस्मित-चित नमित-सीस बहु विनय बखानी॥
कह्यौ सपुलकित गात बात सुनि तात तिहारी।
गुप्त-गंग-गुन-गान-सुनन-स्रद्धा उर धारी॥२७॥

तातैं करि अब कृपा कहौ प्रनतारति-वारन।
अपर नदिनि सौं अधिक गंग-महिमा कौ कारन॥
जो कपिलहु कौ कठिन साप करि दूरि सकति है।
परम-पाप-पर्वतहु चटकि चकचूरि सकति है॥२८॥

अंसुमान की मंजु वचन-रचना-चतुराई।
सुनि खगपति-मति-सींव फड़कि गुनि ग्रीव हलाई॥
सुमिरि गंग-गुन-रूप भए सुख-मगन एक छन।
पुनि सँभारि उर धारि धीर बोले प्रमुदित-मन॥२९॥

अहो तात हम कहा गंग की बात चलावैं ।
सहस सारदा सेस जाहि कहि पार न पावैं ॥
पूरन ब्रह्म-स्वरूप बिगत - बकवाद वही है ।
निर्गुन - सगुन - बिबाद - बीच मर्जाद वही है ॥३०॥

कोटिनि बिधि-हरि - हरहिं बिबिध जो नाच नचावत ।
निज इच्छा-अनुसार सृजत पोषत बिनसावत ॥
वह ताही को द्रवीभूत सुभ रूप बिमल है ।
ताहीतैं ताके प्रभाव को भाव प्रबल है ॥३१॥

ताकी महिमा अति महान को जानि सकत है ।
पारावार अपार कौन करि पार सकत है ॥
सेवत ताहि बिरंचि संचि सादर मन लाए ।
हरि हर ताके भूरि भाग पर रहत सिहाए ॥३२॥

ब्रह्मा - पुत्र वसिष्ठदेव कुल - इष्ट तिहारे ।
जानत गंग - प्रभाव - भाव त्रिभुवन तैं न्यारे ॥
निज-नाथहिं सुनि कहत कथा उतपति की ताकी ।
हमहूँ कछु मति सरिस बात बूझी महिमा की ॥३३॥

माया ब्रह्म स्वरूप जुगल तामैं इक थल हैं ॥
भुक्ति-मुक्ति-फल दिव्य दोऊ ताकैं करतल हैं ॥
कोउ न असंभव काज ताहि बिनहूँ कछु कारन ।
एकै बात बिहाइ पाइ पापी नहिं तारन ॥३४॥

इमि गुनत गंग-गुन-गन गहकि गरुड़-गिरा गद्गद भई ।
मनु प्रबल प्रवाह अथाह की तरल तरंगनि परि गई ॥३५॥

चतुर्थ सर्ग

अंसुमान सुनि गुप्त गंग-महिमा मन-मानी।
हाथ जोरि पुनि पच्छि-नाथ सौं विनय बखानी॥
सुनि यह रुचिर रहस्य-बात तव तात अनोखी।
अजगुत भयौ महान जाति चित-वृत्ति न तोखी॥१॥

स्रद्धा बढ़ी अपार अपर वृत्तांत सुनन की।
तव आनन सौं चुवत चारु सुभ सुमन चुनन की॥
तातैं पूछन चहत कछुक उर ठाइ ढिठाई।
बालक जानि अजान धरौ जनि रोष-रुखाई॥२॥

कोटिनि विधि हरि संभु आदि सुर-गन तुम भाषे।
सबकौ नेता कह्यौ एक जाके सब राखे॥
ताकौ कछु सुभ नाम धाम अरु काम बखानौ।
जातैं यह भ्रम-भौंर-पर्‌यौ मन लहै ठिकानौ॥३॥

बहुरि कह्यौ सो अति अनूप जल-रूप भयौ क्यौं॥
विधिहीं कैं गृह पूज्य सकल सुर-भूप भयौ क्यौं॥
महा-मोह-तम-तोम भर्‌यौ उर-व्योम प्रकासौ।
ज्ञान-भानु स-मलान करत संसय-अहि नासौ॥४॥

सुनत कुँवर की विनय दीन छल-हीन सुहाई।
गुनत गंग-कल-कथा-सुनन की आतुरताई॥
हरिजानहु-हिय हुलसि कहन-स्रद्धा सरसानी।
इमि मुख-मग ह्वै अति उदार बानी उमगानी॥५॥

यह इतिहास पुनीत महा-मुद-मंगल-कारी।
जद्यपि परम रहस्य देव-मुनिहूँ-मन-हारी॥
तउ अधिकारी जानि तुम्हैं हम कछुक सुनावत।
कहत सुन्यौ निज प्रभुहिं तत्त्व ताकौ गहि गावत॥६॥

अखिल-कोटि-ब्रह्मांड-परम-प्रभुता-ध्रुव-धारी।
कृस्नचंद आनंद-कंद स्वच्छंद-विहारी॥
नित नव लीला ललित ठानि गोलोक-अजिर मैं।
रमत राधिका-संग रास-रस-रंग रुचिर मैं॥७॥

इक दिन लहि कातिक-पुनीत-पूनौ मन-भाई।
श्रीराधा-उत्सव महान अति आनँद-दाई॥
विधि हरि हर लै मुख्य देव गोलोक सिधाए।
जुगल-दरस की सरस लालसा लोचन लाए॥८॥

देखि तहाँ की परम रम्य सुखमा सुघराई।
तजी चकित-चित-चखहुँ सुभाविक चंचलताई॥
लहि अमंद आनंद एक-टक देखि रहन कौ।
लूट्यौ सुर-गन लाहु नैन अनिमेष लहन कौ॥९॥

वन उपवन आराम ग्राम पुर नगर सुहाए।
लसत ललित अभिराम चहूँ दिसि अति छवि छाए॥
बत्तिस-वन संयुक्त बीच वृंदावन राजत।
गोवर्द्धन गिरिराज मंजु मनि-मय छवि छाजत॥१०॥

दिव्य द्रुमनि की पाँति लसतिं सब भाँति सुहाई।
ललित लता बहु लहलहातिं जिनसौं लपटाई॥
स्याम बरनि मन-हरनि नदी कृस्ना अति निर्मल।
कलित-कंज-बहु-रंग बहति तहँ मंजु मधुर-जल॥११॥

सीतल सुखद समीर धीर परिमल बगरावत।
कूजत विविध विहंग मधुप गूँजत मनभावत॥
वह सुगंध वह रंग ढंग की लखि टटकाई।
लगति चित्र सी नंदनादि वन की चटकाई॥१२॥

जहँ-तहँ गोपी वृंद-वृंद सानंद कलोलतिँ।
जुगल-प्रेम-मद-छाक-छकी डगमग मग डोलतिँ॥
थिर-चर-वैस अनूप-रूप गुन गर्व-गसीली।
विविध - विलास - हुलास-रास-रँग-रत्त रसीली॥१३॥

जित - तित सुरभि सवत्स चरतिँ विचरतिँ सुखसानी।
विविध -बरनि मनहरनि तरुनि सुभ-गुन-सरसानी॥
हेम - कलित सुठि सृंग पुच्छ - मंडित - मुकताली।
पग नूपुर - झनकार झूल की झलक निराली॥१४॥

मध्य कच्छ मैँ अरुन अच्छ अच्छयवट राजत।
मनहु लोक - पति-सीस छत्र मानिक - मय छाजत॥
कोटि - चंद -द्युति - दिव्य लसत तहँ चारु चँदोवा।
सज्जित विविध विधान लाइ सब साज सँजोवा॥१५॥

ताके नीचैँ सुघर सहस - दल कमल सुहायौ।
अति विचित्र जिहिँ चित्र न सब्दनि जात खँचायौ॥
सुभ षोड्स - दल कमल अमल राजत तिहिँ ऊपर।
अष्ट दलनि कौ बहुरि बनज सोभित ताहू पर॥१६॥

तीन्यौ क्रम सौँ अधिक अधिक सोभा - सरसाए।
पद्मराग बहुरंग लाइ रचि रुचिर बनाए॥
कंचन - मय किंजल्क-दलक-द्युति झलमल झलकति।
मर्कत-मनि-कृत-कलित-कर्निका-छवि छुटि छलकति॥१७॥

कंजहि सी सुख-पुंज परम अति अजगुतहाई ।
सुबरन माहिँ सुगंध मनिनि मैं कोमलताई ॥
तिहिँ थल की सुखमा अनूप कासौं कहि आवै ।
जो माया निज - प्रभु - बिलास - हित हुलसि बनावै ॥१८॥

मध्य कंज पर मंजु रतन-सिँहासन सोहै ।
जाकी सुखमा कहत सहस्र-मनि-धर-मन मोहै ॥
ताल-मेल सौं मेलि रतन बहु-रंग लगाए ।
जिनकी द्युति सौं कोटि नवग्रह रहत चकाए ॥१९॥

तापर लखे बिराजमान बर जुगल-बिहारी ।
गौर - स्याम - दोउ - तेज-तत्त्व-मृदु - मूरति-धारी ॥
घनीभूत सुभ सुद्ध सच्चिदानंद अखंडित ।
ब्रह्म अनादि सु आदि - सक्ति-जुत गुन-गन-मंडित ॥२०॥

इक इक बाहिँ उमाहि किए गलबाहिँ बिराजैं ।
इक इक कर बड़भाग बनज बंसी कल भ्राजैं ॥
मनु तमाल पर सोनजुही की लसै माल बर ।
स्याम-तामरस-दाम प्रफुल्लित सोनजुही पर ॥२१॥

नील पीत अभिराम बसन द्युति - धाम धराए ।
मनहु एक कौ रंग एक निज अंग अँगाए ॥
निज-निज-रुचि - अनुहार धरे दोउ दिव्य बिभूषन ।
जो तन - द्युति की दमक पाइ चमकत ज्यौं पूषन ॥२२॥

उर बिलसत सुभ पारिजात के हार मनोहर ।
सब लोकनि की फूल-गंध के मूल सुघर बर ॥
चारु चंद्रिका मंजु मुकुट छहरत छबि छाए ।
मनहु रतन तन - तेज पाइ सिर चढ़ि इतराए ॥२३॥

विपुल पुलक दुहुँ गात परसपर सरस परस के ।
पीत नील मनि माहिं मनौ अंकुर सुचि रस के ॥
सुधि करि विविध विलास फुरति अंग-अंग फुरहरी ।
मनु सुखमा कैं सिंधु उठति आनंद की लहरी ॥२४॥

दोउ दोउनि कौं निरखि हरषि आनँद-रस चाखत ।
दोउ दोउनि की सुरुचि मूक भावनि सौं राखत ॥
दोउ दोउनि की प्रभा पाइ इकरँग हरियाने ।
इक-मन इक-रुचि एक-प्रान इक-रस सरसाने ॥२५॥

मुखनि मंद मुसकानि कृपा-उमगानि बतावति ।
चखनि चपलता चारु ढरनि-आतुरी जतावति ॥
जो ब्रह्मांड निकाय माहिं सुखमा सुघराई ।
द्वै दल ताके परम बीज के सुभ सुखदाई ॥२६॥

लखि वह सुखद समाज-साज वह निखिल निकाई ।
वह माधुरी स-लौन तथा वह मधुर लुनाई ॥
भए देव-गन मगन दृगनि आनँद-जल छायौ ।
बलिहारी कहि रहे मौन गहवरि गर आयौ ॥२७॥

यह देवनि की देखि दसा प्रभु जन-हितकारी ।
कृपा-दृष्टि सौं हेरि हरषि हिय-हिलग निवारी ॥
बहुरि पूछि कुसलात मंजु मृदु बचन उचार्‌यौ ।
आसन उचित दिवाइ सबनि सादर बैठार्‌यौ ॥२८॥

लगी सारदा प्रेमि-पुलकि कल कीरति गावन ।
बीना मधुर बजाइ भूमि नूपुर झनकावन ॥
लय-लीकनि सौं चारु चित्र बहु-भाय खँचाए ।
रुचिर राग-रँग पूरि हृदय-दृग लोल लुभाए ॥२९॥

भई सभा सब दंग रंग ऐसौ कछु माच्यौ ।
प्रेमानंद अमंद मनहु तहँ तन धरि नाच्यौ ॥
सुनि वह गान विधान लगे सुर सकल सराहन ।
ब्रह्मदेव हिय हुलसि बंक संकर-दिसि चाहन ॥३०॥

सिव सुजान तब उमगि डमकि डमरू सुख-पागे ।
रचि तांडव रस-भूमि जुगल-गुन गावन लागे ॥
भर्‌यौ भूरि आनंद हृदय तिहिं लगे उलीचन ।
पौन-पटल पर भव्य भाव अंतर के खीचन ॥३१॥

सकल कला के परम धाम संकर अबिकारी ।
प्रभु-गुन-गान सुजान सभा अवसर मनहारी ॥
सब संघट मिलि मंजु बँध्यो इमि समौ सुहायौ ।
नए देव-गन मुग्ध देह-अध्यास सिरायौ ॥३२॥

इमि बाढ़्यौ आनंद-सिंधु सुधि-बुधि-लय-कारी ।
आपुहुँ ह्वै सिव मगन गान की सुरति बिसारी ॥
तब सब संज्ञा पाइ दीठि जो इत-उत फेरी ।
बिस्मय लह्यौ महान जुगल मूरति नहिं हेरी ॥३३॥

सिंहासन चहुँ पास अमल जल-रासि लखाई ।
गौर-स्याम-द्युति-दाम ललित लहरनि छबि छाई ॥
ह्वै अति बिह्वल बिकल लगे सुर सकल बिसूरन ।
आरत-नाद बिषाद-वाद सौं सब दिसि पूरन ॥३४॥

चतुरानन धरि ध्यान जानि तब मरम प्रकास्यौ ।
सबनि धरायौ धीर पीर-संसय-तम नास्यौ ॥
संभु-गान-सुख-सुधा-सिंधु सुभ की लहि लहरैं ।
दोउ लावन्य-स्वरूप द्रवित ह्वै यह छिति छहरैं ॥३५॥

यह सुनि सब सुख पाइ उमगि अस्तुति - अनुरागे ।
पुनि - दरसन - हित करन विनय अति आतुर लागे ॥
प्रभु मनसा लहि संभु जगत - हित पर चित दीन्यौ ।
मुक्ति - दीप भरि नेह प्रकासन कौ प्रन कीन्यौ ॥३६॥

तब श्रीसक्ति - समेत भक्ति - बस - बिस्व - विहारी ।
विरही - दुख - कातर कृपाल प्रनतारति - हारी ॥
घनीभूत ह्वै फेरि दरस दै हृदय सिराए ।
कृपा अनुग्रह मनहु जुगल विग्रह धरि आए ॥३७॥

तिनकैं संगहि भई प्रगट इक बाल मनोहर ।
अखिल - लोक - सुख - पुंज - मंजु - जीवन देवी वर ॥
दोउ - सुख - संपति - परम - मूल - धन बृद्धि-रमा सी ।
बहुरि - दरस - रस - अलह - लाहु - जानंद प्रभा सी ॥३८॥

स्यामा सुघर अनूप - रूप गुन - सील सजीली ।
मंडित मृदु - मुख - चंद - मंद - मुसक्यानि - लजीली ॥
काम - वाम - अभिराम - सहस - सोभा सुभ-धारिनि ।
साजे सकल सिंगार दिव्य हेरत हिय - हारिनि ॥३९॥

प्रियतम कौ लावन्य प्रिया की मंजु मिठौनी ।
दोउ मिलि ताकैं अंग - अंग अद्भुत मिठ - लौनी ॥
सुखमा - संग उमंग महा महिमा की धारे ।
मनहु रूप गुन - सार मेलि तन अतनु सँवारे ॥४०॥

प्रभु के पावन प्रबल भाव सौं चाव चढ़ाई ।
श्री - राधा - कल - कृपा - बानि की कानि पढ़ाई ॥
गंगा नाम पुनीत स्रवन - रसना - मन - रंजिनि ।
प्रबल - प्रभाव - अमोघ महा - अघ - ओघ-बिभंजिनि ॥४१॥

लागी ललकि लुभाइ स्यामसुंदर-मुख जोहन।
निज जोहन कैं भाय बिस्व-मोहन-मन मोहन॥
ताकौ रूप अनूप अकथ गुन भाव लजौं हैं।
लखि सोउ सुख सरसाइ भए रस-बस ललचौं हैं॥४२॥

निरखि नीठि निज ओर परति दुहुँ-दीठि कनौड़ी।
अनख-घटा अति सघन घूमि राधा-उर औंड़ी॥
उठी चमक चित भए सजल दृग-छोर छबीले।
प्रगटे सब्द कठोर भाव बरसे तरजीले॥४३॥

देखि रोष कौ रंग गंग कछु सकुचि सकानी।
पुनि गुनि प्रेम-प्रसंग मनहिं मन मदु मुसकानी॥
सूच्छम बपु धरि बहुरि बेगि प्रभु-अंग समाईं।
अर्द्धांगिनि को कहै भई सर्वांगिनि भाईं॥४४॥

रहे देव-गन मगन बिनय बहु बिस्तारन मैं।
प्रभु के सगुन चरित्र-चित्र चित-पट धारन मैं।
ब्रह्मद्रव कौ रूप दृगनि भरि देखि न पाए।
तातैं ताके दरस-लाभ-हित बहुरि ललाए॥४५॥

स्तुति-मंत्रनि बिस्तारि बिबिध अस्तुति बिधि ठानी।
सुर-गन की अभिलाष-उमग कर जोरि बखानी॥
तव प्रभु परम उदार सकुचि स्वामिनि-मुख चाह्यौ।
उन स-मंद-मुसकानि अनुग्रह दृगनि उमाह्यौ॥४६॥

तिहिं अवसर सुख-पुंज मंजु सुभ-गुन-सरसाए।
सकल-सुकृत-फल-कल्प बिटप-ऋतुराज सुहाए॥
सुनि सुर-गन-वर-विनय गंग-नाथहु मनसा ज्वै।
पद-नख तैं पुनि प्रगट भई जल-रूप रुचिर ह्वै॥४७॥

लखि वह पावन पाथ सकल मिलि माथ नवायौ ।
बहु भाँतिनि अभिनंदि महा आनंद मनायौ ॥
कोउ छ्वायौ लै सीस दृगनि कोउ अंजन कीन्यौ ।
कोउ मार्जन कोउ उमगि आचमन करि सुख भीन्यौ ॥४८॥

प्रभु-चरन चाहि उमाहि चतुर विधि भक्ति-भाव भरि ।
लियौ कमंडल पूरि वेद-मंत्रनि मंडल करि ॥
लहि प्रभु-दरस-प्रसाद देव मन मोद बढ़ाए ।
करि करि दंड-प्रनाम सकल निज धामनि आए ॥४९॥

राखत सजग विरंचि ताहि धारे निज छाती ।
जथा जुगावत सूम संचि संपति जिमि थाती ॥
ताही कैं बल अकर सुकर की कानि करत ना ।
अनमिल रचत प्रपंच रंच उर धरक धरत ना ॥५०॥

सुन्यौ गंग-गुन-ग्राम ताल सुभ-धाम सुहायौ ।
कहत मान जिहिं लखौ छार औरै रग छायौ ॥
गंग कहा यह गंग कथा ऐसहिं जहँ ह्वैहै ।
सकल कहाँ कौ पाप-ताप-कलमष ध्रुव ध्वैहै ॥५१॥

अब तुम तुरत तुरंग-संग निज पुर पग धारौ ।
सगरराज-मख-काज पूरि जग सुजस पसारौ ॥
पुनि करतव्य विचारि बारि पावन सोइ आनौ ।
पितरनि तारन-हेत अपर कोउ जतन न जानौ ॥५२॥

इमि कहत कहत खग-पति पुलकि प्रेम-बारि ढारन लगे ।
मनु मानस-मुकताहल हुलसि सुरसरि-सिर वारन लगे ॥५३॥

पंचम सर्ग

अंसुमान करि कान गंग-गुन-गान मनोहर ।
धर्यौ संचि तिहिं ध्यान माहिं जिमि धर्म-धरोहर ॥
पुनि पितरन के दुसह-दसा-दुख पर चित दीन्यौ ।
करि उसास कौ मंत्र आँसु सौं तरपन कीन्यौ ॥ १ ॥

परि पायनि धरि धीर माँगि आयसु खगपति सौं ।
चल्यौ कुँवर कर जोरि कुसल बिनवत जगपति सौं ॥
कपिलदेव-पद पूजि पाइ कछु सांति सिरायौ ।
सुमिरत गंग तुरंग-संग सेना मैं आयौ ॥ २ ॥

दै पताल लौं नीव भानु-कुल-सुकृत-सदन की ।
श्री उतारि तँह धारि सकल बृत्रारि-बदन की ॥
जड़ जमाइ भवितव्य भगीरथ-जस-बर बट की ।
सोधि खानि गंभीर भूति लै पुन्य-पुरट की ॥ ३ ॥

हय-पावन कौ हरष सोक पितरनि कौ धारे ।
कीन्यौ पलटि पयान कछुक उमगत मन मारे ॥
निकस्यौ सदल सपाति हुमसि हरियात बिबर तैं ।
सगर-सौख्य-तरु कढ़्यौ उर्वरा के उर बर तैं ॥ ४ ॥

स्त्रम करि काटत वाट वेगि बिन मग बिलँवाए ।
हय-रच्छा-हित सकट-व्यूह अति बिकट बनाए ॥
कीरति-मुकता-पुंज मंजु मग मैं बगरावत ।
आए अवध-समीप सकल सुर सुकृत मनावत ॥ ५ ॥

समाचार यह पाइ धाइ आए अगवानी ।
परिजन पुरजन स्वजन सचिव सज्जन सेनानी ॥
प्रेम-वारि दृग ढारि लग्यौ कोउ ललकि जुहारन ।
कोउ असीस सुभ देन सीस कोउ मनि-गन वारन ॥ ६ ॥

सगर - सुतनि कौ समाचार तब लौं तहँ व्याप्यौ ।
सब मुख - कंजनि खिलत सोक - पाला परि छाप्यौ ॥
सादर चले लिवाइ सुभासुभ भाय विचारत ।
विकचत सकुचत मधुर छार जल नैननि ढारत ॥ ७ ॥

नृप - नंदहिं अभिनंदि धीर गंभीर धरावत ।
सांति - पाठ सुभ पढ़त सदासिव - संकर ध्यावत ॥
उर आनँद सौं सोक सोक सौं आनँद मारे ।
पहुँचे ज्यौं त्यौं आइ जज्ञ - मंडप के द्वारे ॥ ८ ॥

तहँ वसिष्ठ कुल - इष्ट सिष्ट द्विज - गन सँग लीने ।
मिले आनि सुख मानि पढ़त मंगल मुद - भीने ॥
अंसुमान परि पाय पाइ आसिष हरषायौ ।
पौरि धूरि धरि सीस जज्ञसाला मैं आयौ ॥ ९ ॥

नृपहिं निरखि अकुलाइ धाइ पायनि लपटायौ ।
छिति - पति उमगि उठाइ छोहि छाती छपटायौ ॥
दै असीस सुभ सूँघि सीस सादर बैठार्‍यौ ।
पै ज्यौंहीं करि प्रेम छेम कौ प्रस्न उचार्‍यौ ॥१०॥

पर्‍यौ करेजौ थामि थहरि त्यौं रोइ कुँवर - वर ।
निकसे सकसि न वचन भयौ हिचकिनि गह्वर गर ॥
आँसु ढारि भरि साँस सचिव - सुत तब अगुवायौ ।
काहू विधि सविषाद विषम संवाद सुनायौ ॥११॥

उमड़्यो सोक - समुद्र भई विप्लुत मख - साला ।
बड़वाग्निनि-सी लगन लगी जज्ञागिनि - ज्वाला ॥
गयौ तुरत फिरि सब उछाह आनँद पर पानी ।
बढ़ी पीर की लहर धीर - मरजाद नसानी ॥१२॥

लगे सकल सिर धुनन कांड करुना कौ माच्यौ ।
मनु बनाइ बहु वपुष बरुन तिहिँ मंडप नाच्यौ ॥
लागीं खान पछाड़ धाड़ मारन सब रानी ।
मानहु माजा मज्जि तलफि सफरी अकुलानी ॥१३॥

भयौ भूप जड़-रूप अंग के रंग सिराए ।
वज्राघात सहस्र साठ संगहिँ सिर आए ॥
कढ़यौ कंठ नहिँ बैन न नैननि आँसु प्रकास्यौ ।
आनन भाव-बिहीन गाँव ऊजड़ लौं भास्यौ ॥१४॥

मुनिहुँ सकल ह्वै बिकल लगे लोचन-जल मोचन ।
नृप की दारुन दसा देखि औरै कछु सोचन ॥
कोउ परखत मुख मलिन हाथ छाती कोउ लावत ।
अभिमंत्रित-जल-छींट छिरकि कोउ सीस जगावत ॥१५॥

तव गुरुवर धरि धीर कियौ निर्धारित मन मैं ।
कोसल-पति-कुसलात वनति केवल रोवन मैं ॥
जौ अति उबलत सोक-सलिल दृग-पथ नहिँ पैहै ।
भूरि भाप सौं पूरि तुरत तौ घट फटि जैहै ॥१६॥

मनुष-सुभाव-प्रभाव वहुरि गुनि मुनि बिज्ञानी ।
अति अचूक उपयुक्त जुक्ति ठानी हित-सानी ॥
अंसुमान कौं पकरि पानि नृप अंग लगायौ ।
करुना-क्रंदन करत कुँवर कंपत लपटायौ ॥१७॥

लहि सन्निधि सम-सील पूत के धरकत हिय की ।
अनुकंपित कछु भई सिरा नरपति जग-प्रिय की ॥
ज्यौं कोउ तंत्री-वाज उठत कछु गाजि गमक सौं ।
सम-सुर सात्म्य समीप-वाद की नाद-धमक सौं ॥१८॥

सनै सनै पुनि परन लगीं नरपति की पलकैं।
आनन पर लहरान लगीं प्राननि की झलकैं॥
तव वसिष्ट इमि कह्यौ नृपति निरखौ निज नाती।
काकौ यह असमंज कुँवर की सौंपत थाती॥१६॥

यह सुनि- करुना - भाव भूरि उर - अंतर जागे।
ह्वै कातर विललाइ फूटि नृप रोवन लागे॥
लहि अवसर उपयुक्त लगे गुरुवर समुझावन।
सिवि - दधिचि - हरिचंद - कथा कहि धीर घरावन॥२०॥

पुनि मुनि भृगु - वरदान गूढ़ पर ध्यान दिवायौ।
सुमति - सुमति - प्रति-वदित-वाक्य-आसय समुझायौ॥
अस्वमेध की वहुरि महा महिमा मुनि भाषी।
जिहिं सिहात करि विवन - पात सहसा सहसापी॥२१॥

कह्यौ न उचित विषाद - वाद मख - मंडप माहीं।
यामैं सोच असौच सोक कौ अवसर नाहीं॥
मानि मन्यु मन अकरमन्य ह्वै जौ रहि जैहौ।
कुल - कीरत - अभिराम - सहित निज नाम नसैहौ॥२२॥

तातैं धीरज धारि प्रथम मख - काज पुरावौ।
स्वर्ग - लोक मैं अति त्रिसोक निज ओक वनावौ॥
पुनि गुनि करौ उपाय पाप तिनके मेटन कौ।
जातैं वनै वनाव वहुरि तहँ मिलि भेटन कौ॥२३॥

अंसुमान तव उमगि गरुड़ - इतिहास वखान्यौ।
पितरनि - तारन - हेत गंग - अवतारन ठान्यौ॥
वहुरि सगर - गर लागि मधुर वैननि समुझायौ।
साठ - सहस - छत - छन्न हियैं निज नेह लगायौ॥२४॥

गुरु-निदेस सिसु-प्रेम नेम कुल-कानि-रखन कौ ।
मख पूरन कौ भाव चाव पुनि सुतनि लखन कौ ॥
सब मिलि ह्वै घन सघन भूप-मन मंडप कीन्यौ ।
तापन-तपन निवारि नीर धीरज कौ दीन्यौ ॥२५॥

तब सम्हारि चित-बृत्ति सांति भूपति उर आनी ।
हरि-इच्छा धरि सीस मानि अंतर-हित-सानी ॥
गुरु-पद पूजि मनाइ ईस बिधिवत मख कीन्यौ ।
असन-बसन-गो-हेम-दान बिप्रनि कौं दीन्यौ ॥२६॥

अस्वमेध सौं ह्वै निवृत्त नृप पुर पग धार्‌यौ ।
सुरसरि-आनन कौ उपाय बहु भाय बिचार्‌यौ ॥
लाइ घात अनेक वात नहिं कछु बनि आई ।
ऐसहिं सोच-विचार माहिं नृप-आयु सिराई ॥२७॥

अंसुमान तब भयौ भानु-कुल-कीरति-कारी ।
धर्म-धीर वर वीर प्रजा-परिजन-दुख-हारी ॥
सिंहासन-सौभाग्य मुकुट कौ मान-मढ़ैया ।
छात्र-छत्र कौ छेम चमर-चित चाव-चढ़ैया ॥२८॥

कछु दिन न्याय चुकाइ प्रजा-गन तिन परिपोषे ।
विप्र पितर सुर दान मान पूजा सौं तोषे ॥
रहत रहित-उतसाह सदा पितरनि हित सोचत ।
गुनत गरुड़-इतिहास गूढ़ लोचन जल मोचत ॥२६॥

निसि-दिन करत विचार चारु सुरसरि ल्यावन कौ ।
पितरनि तारि अपार छेम सौं छितिछावन कौ ॥
पै साधन-उपयुक्त-जुक्ति कोउ चित्त चढ़ति ना ।
सोइ चिंता की सदा चुभति नट-साल कढ़ति ना ॥३०॥

इक दिन गुरु-गृह जाइ पाय परि अति मृदु बानी ।
करि अस्तुति बहु भाँति भूरि-स्रद्धा-सरसानी ॥
कह्यौ जोरि जुग हाथ अनुग्रह नाथ तिहारैं ।
सुख संपति सौभाग्य जदपि सब साथ हमारैं ॥३१॥

तउ पितरनि की दुसह-दसा-चिंता निज जागति ।
परत न चल चित चैन नैन निद्रा नहिं लागति ॥
मन कैं भार अपार सदा सिर रहत निचौंहौं ।
अवलोकत सब जगत लगत निज ओर हँसौंहौं ॥३२॥

सगर-सुतनि की सुनी दसा दारुन-दुख-सानी ।
सुरसरि-महिमा मंजु गरुड़ की गूढ़ कहानी ॥
तुम सर्वज्ञ सुजान भानु-कुल-नित-हितकारी ।
धरहु माथ मुनि-नाथ हाथ गुनि आरत भारी ॥३३॥

सुरधुनि आनन कौ उपाय करुना करि भाषौ ।
होइ सुगम कै अगम सकुच गहि गोइ न राखौ ॥
अंसुमान की देखि दसा कातर मुनि-नायक ।
कहे पुलकि भरि नैन बैन इमि धीरज-दायक ॥३४॥

धन्य भानु-कुल-भानु धन्य जग जनम तिहारौ ।
तुम बिन कौन महान ठान यह ठाननहारौ ॥
तुम बुधि-बल-गुन-धाम वीर छत्री-व्रत-धारी ।
होहु न आतुर सुनहु धीर धरि बात हमारी ॥

बिसद विहंगम-राज गंग-महिमा जो भाषी ।
ताके सत्य प्रमान माहिं हमहूँ सुचि साखी ॥
महा पाप अरु साप सकल सो टारि सकति है ।
साठ सहस की कहा जगत उद्धार सकति है ॥३६॥

कोउ न असंभव काज न कछु दुस्तर तेहि आगे।
ताकौ गुन-गन गुनत रहत जम-गन भय-पागे॥
जो करि जुक्ति अनेक सुकबि अत्युक्ति प्रकासैं।
सो सब गंग-प्रसंग माहिँ सहजोक्तिहि भासैं॥३७॥

पै अति दुस्तर काज भूमि ताकौ संचारन।
तारन कठिन न ताहि कठिन ताकौ अवतारन॥
फनि जिमि मनि तिमि रहत सदा बिधि ताहि जुगाए।
स्तुति-विधि-रच्छित मंजु कमंडल माहिँ पुगाए॥३८॥

जो कोउ कष्ट उठाइ जाइ सेवै गिरि कानन।
साधि तपस्या उग्र इतौ तोषै चतुरानन॥
कै वह सहसा उमगि देहि कछु वह जल पावन।
तौ आवै महि गंग होइ सब काज सुहावन॥३६॥

यह सुनि मुनि-पद पूजि तुरत नृप आज्ञा लीनी।
तप-विधि संजम-नियम-रीति उर अंकित कीनी॥
लहि आयसु हरपाइ आइ निज गेह गुहार्‌यौ।
मंत्री मित्र कुलत्र पुत्र सब आनि जुहार्‌यौ॥४०॥

दै दिलीप कौँ राज विविध नृप-काज बुझायौ।
मंत्रिनि मित्रनि सौँपि प्रजा-पालन समुझायौ॥
वर-विहंगपति-वदित गंग-महिमा सब भाखी।
वहुरि दई दृढ़ आन राखि दिग-पालनि साखी॥४१॥

जो इहिँ आसन होइ राज-सासन-अधिकारी।
सुरसरि-आनन-हेत करै कानन तप भारी॥
जल लौँ कोउ पतंग-बंस महि गंग न आनै।
तब लौँ सुलभ पतंग-अर्थ इहिँ कुल-हित मानै॥४२॥

यौं कहि चले भुआल नेह नातौ सब तोरे।
सुरपुर-दुर्लभ राज-सदन-सुख सौं मुख मोरे॥
कियौ जाइ हिमवंत-सिखर तप महा कठिन तिन।
अंत लह्यौ सुरलोक-वास बीतैं आयुस-दिन॥४३॥

तब दिलीप तप-काज विदा माँगी गुरुवर सौं।
पै तिन जान न दियौ ग्रस्त गुनि रोग-रगर सौं॥
रोगी, अनिया अंग-भंग आतुर अविचारी।
ये नहिं काहू भाँति तपस्या के अधिकारी॥४४॥

करि प्रकास कछु काल अंत अथयौ वह पूपन।
भए भगीरथ भूप भव्य भारत के भूपन॥
दृढ़-व्रत धर्म-धुरीन दीन-दुख-दंद-निवारी।
ईस-भक्त द्विज-पितर-साधु-गो द्विज-हितकारी॥४५॥

जाकौ प्रखर प्रताप ताप सौं अरि-उर तावत।
हंस-वंस-सुभ-सुजस-कलानिधि-द्युति दमकावत।
संपति मानि सुहाग चलति जापैं उमगानी।
करत कामना कछुक सिद्धि आवति अगवानी॥४६॥

कीन्यौ भूप विचार धार पावनि पावन कौ।
सगर-कुमारनि पिता-पास पुनि पहुँचावन कौ॥
सकल जगत-हित साधि अटल कीरति छावन कौ।
स्वकुल ब्रह्म-अवतार-जोग महिमा ठावन कौ॥४७॥

जुवा वैस पर मानि जानि संतान न आगे।
कीन्यौ कछुक विलंब अंब संकर अनुरागे॥
अंसुमान की आन ध्यान करि पुनि मन माख्यौ।
उहै अवस्था माँहिं जान कानन अभिलाख्यौ॥४८॥

सोच्यौ जौ यह बयस बृथा ऐसहिँ चलि जैहै।
तौ उतरत दिन माँहिँ कठिन तप पार न पैहै॥
अंसुमान इहिँ हेत कछुक पायौ करि नाहीँ।
यातैँ उचित बिलंब नाहिँ सुभ कारज माहीँ॥४९॥

यह बिचारि नृप राज-भार मंत्रिनि सिर धार्‌यौ।
दान मान सौँ तोषि सबनि इमि बचन उचार्‌यौ॥
अब हम तप-हित जात गंग जासौँ महि आवै।
होइ मिलन पुनि आइ ईस जौ आस पुरावै॥५०॥

बहुरि जाइ गुरु-गेह नेह-जुत माथ नवायौ।
कहि मृदु बचन बिनीत सकल संकल्प सुनायौ॥
सिख आसिष बहु भाँति पाइ सब संसय सार्‌यौ।
करि प्रनाम उर सुमिरि ईस बन-मग पग धार्‌यौ॥५१॥

इमि कर्मवीर सहसा भवन त्यागि गवन कानन कियौ।
छुट स्रद्धा साहस धीर अरु धर्म न कछु निज सँग लियौ॥५२॥

षष्ठ सर्ग

जाइ गोकरन-धाम नृपति अति आनँद पायौ।
मनु गज तोरि अलान उमगि कदली-बन आयौ॥
सिद्धि-छेत्र सुभ देखि नेत्र तहँ ललकि लुभाए।
मनहुँ सोधि मनि-खानि-सोध सोधी हुलसाए॥१॥

तरु बल्ली बहु भाँति फलित प्रफुलित तहँ भावैँ।
मनहु कामना सफल होन के सगुन दिखावैँ॥
सर सरिता सब स्वच्छ जथा-इच्छित जल पावत।
मनु मन-आसय पूर होन के जोग जतावत॥२॥

गुंजत मंजु मलिंद-पुंज मकरंद-अघाए।
मनहु मुदित मन करत तोप के घोष सुहाए॥
पसु-पच्छिनि के बृंद करत आनंद-नाद कल।
धन्यवाद मनु देत पाइ वांछित जीवन-फल॥ ३॥

विद्याधर गंधर्व सिद्ध तप-वृद्ध सयाने।
बिचरत तहाँ विनोद-मोद-मंडित मनसाने॥
मुनि-आस्रम अभिराम ठाम-ठामनि छवि छावैं।
साधक-गन पैं सिद्धि तहाँ खोजति चलि आवैं॥ ४॥

सो सुभ धाम ललाम देखि भूपति-मन मान्यौ।
तहँ तप-कष्ट उठाइ इष्ट-साधन ठिक ठान्यौ॥
पूजि छेत्र-पति पुलकि माँगि आयसु मुनि-गन सौं।
लगे भूप मनि करन कठिन जप-तप तन-मन सौं॥५॥

कंद मूल तिन करि अहार कछु-बार विताए।
कछुक दिवस तृन पात परे पुहुमी चुनि खाए॥
कछु दिन वारि बयारि पान करि कछु दिन टेरे।
इहिं विधि कष्ट उठाइ किए ब्रत घोर घनेरे॥ ६॥

रह्यौ भूप कौ रूप भावना के लेखा सौ।
अस्ति नास्ति कैं वीच गनित-कल्पित रेखा सौ॥
सुर-मुनि अग्र समग्र देखि तप उग्र सिहाए।
नृपहिं निवारन-हेत सबनि बहु हेत बुझाए॥७॥

रहे ध्यान धरि जपत भूप बिधि-मंत्र निरंतर।
भरि जिय यहै उमंग गंग आवैं अवनी पर॥
तरैं सगर के सुवन भुवन मुद मंगल छावैं।
डरैं देखि जम-दूत पुरी पुरहूत वसावैं॥८॥

बीते बरस अनेक टेक जब नैंकु न टारी।
सह्यौ सीस धरि धीर बीर हिम आतप बारी॥
तब याकैं तप-तेज तपन लाग्यौ महि-मंडल।
उफनि उठ्यौ ब्रह्मंड भभरि भय भर्यौ अखंडल॥९॥

सुर नर मुनि गंधर्व जच्छ किन्नर कहलाने।
नभ-जल-थल-चर विकल सकल थल थल हहलाने॥
जानि पर्यौ त्रिपुरारि तमकि तीजौ दृग खोल्यौ।
त्रासनि परी पुकार चारमुख-आसन डोल्यौ॥१०॥

लै सँग देव-समाज काज बिसराइ जगत कौ।
उठि आतुर अकुलाय ल्याय मन भाय भगत कौ॥
चले प्रसंसत हँसत हंस हाँकत चतुरानन।
पहुँचे आनि तुरंत तपत भूपति जिहिं कानन॥११॥

कृपा - छलक-छवि नैन बैन गद्गद मुख मुलकित।
वर वरदान-उमंग-तरंगनि सौं तन पुलकित॥
मृदुल मनोहर उर-उछाह-कारी स्रम-हारी।
सुवर सब्द सौं कलित ललित विधि गिरा उचारी॥१२॥

अहो भूप - कुल-कमल-अमल-अति-प्रबल-प्रभाकर।
कियौ कठिन तप जाहि निरखि रवि लगत सुधाकर॥
जाकैं प्रखर प्रभाव पदारथ परम सुलभ सब।
तजि सँकोच जो चहहु लहहु सानँद हमसौं अब॥१३॥

सुनत बैन सुख-दैन भगीरथ नैन उघारे।
विवुधनि-वलित प्रसन्न-वदन विधि निकट निहारे॥
त्रय - तापैं तन परी सुखद आसा - जल - धारा।
सुधा स्रवन भरि चली उवरि ढरि नैननि द्वारा॥१४॥

सरक्यौ सब दुख-दंद चंद-आनन मुद छरक्यौ।
फरक्यौ सुभग सरीर चीर वलकल कौ दरक्यौ॥
जोरि पानि भरि भूमि भूमि-पति सिर पद परसे।
सब देवनि सादर प्रनाम करि अति सुख सरसे॥१५॥

पाद अरघ आसन समूल फल फूल सुहाए।
अरपि जथा-विधि विनय-वचन कर जोरि सुनाए॥
जय चतुरानन चतुर चतुर-जुग-जगत-विधायक।
जय सुर-नर-मुनि-वंद्य सदा सुंदर-वर-दायक॥१६

तव दरसन सौं आज काज पूजे सब मन के।
लखि यह देव-समाज साज छाए सुख-गन के॥
धन्यो माथ पर हाथ नाथ तौ देहु यहै वर।
तारन-विरद-उतंग गंग आवैं पुहुमी पर॥१७॥

असन वसन वर वाम धाम भव-विभव न चाहैं।
सुरपुर-सुख विज्ञान मुक्तिहूँ पै न उमाहैं॥
अति उदार करतार जदपि तुम सरवस-दानी।
हम लघु जाचक चहत एक चिल्लू-भर पानी॥१८॥

ताहीं सौं तप-ताप दूरि करि अंग जुड़ैहैं।
ताही सौं सब साप-दाप पितरनि के जैहैं॥
ताही सौं जग सकल महा मुद मंगल छैहैं।
ताही सौं सुख पाइ लाख अभिलाष पुरैहैं॥१९॥

यह सुनि मृदु मुसकाइ चतुर चतुरानन भाष्यौ।
धन्य धन्य महि-पाल मही-हित पर चित राख्यौ॥
तुम्हैं न कछुहुँ अदेय एक यह असमंजस पर।
गंग-धार कौ वेग धरै किमि धरिनि धरा-धर॥२०॥

धमकि धूम सौं धाइ धँसै जबहीं ब्रह्मद्रव ।
उथल-पथल तल होइ रसातल मचहि उपद्रव ॥
जगत जलाहल होइ कुलाहल त्रिभुवन व्यापै ।
ह्वै सनद्ध कटिबद्ध कौन थिरता फिरि थापै ॥२१॥

तातैं कहत उपाय एक अतिसय हितकारी ।
आराधौ तुम आसुतोप संकर त्रिपुरारी ॥
सो सब भाँति समर्थ अर्थ-दायक चित-चाहै ।
करत न नैंकु विचार चार फल देत उमाहै ॥२२॥

विकल सकल जग जोहि छोहि करुना निज धारी ।
निधरक धरि गर गरल सुरासुर-विपति विदारी ॥
गर्व खर्व करि सर्व कठिन कालहु दुर्दर कौ ।
चिर जीवन थिर कियौ मारकंडे मुनिवर कौ ॥२३॥

सोइ इक सकत सँभारि गंग कौ वेग विपुल वर ।
करि जु कृपा वर देहिं लेहिं यह काज सीस पर ॥
सकल मनोरथ होहिं सिद्ध तब तुरत तिहारे ।
यौं कहि विधि सब सुरनि सहित निज लोक सिधारे ॥२४॥

यह सुनि महा धीर भूपति-मन नैंकु डग्यौ ना ।
संसय संका सोक सोच मैं पलहुँ पग्यौ ना ॥
वरु बाढ़ी चित चोप ओप आनन पर आई ।
अमित उमंग-तरंग अंग-अंगनि मैं छाई ॥२५॥

अब तौ हम सुभ ढंग गंग-आवन कौ पायौ ।
पारावार-अपार-परे कौं पार लखायौ ॥
यह विचार निर्धार हियैं आनँद सरसायौ ।
धन्यवाद ह्वै नीर निकरि नैननि तैं आयौ ॥२६॥

पुनि लागे तप तपन जपन संकर दुख-भंजन।
वर-दायक करुना-निधान निज-जन-मन-रंजन॥
इक अँगुठा ह्वै ठाढ़ गाढ़ ब्रत संजम लीने।
सहे विविध दुख गहे मौन इक दिसि मन दीने॥२७॥

खान पान वस किए नींद नारी विसराए।
और ध्यान सव धोइ देवधुनि की धुनि लाए॥
गयौ बीति इहिं रीति एक संवतसर सारौ।
उठ्यौ गगन लौं गाजि भूप कौ सुजस-नगारौ॥२८॥

तव तजि अचल समाधि आधि-हर संकर जागे।
निज-जन-दुख मन आनि कसकि करुना सौं पागे॥
आतुर चले उमंग-भरे भंगहु नहिं छानी।
कृपा-कानि वरदान-देन-हित हिय हुलसानी॥२९॥

डगमग पग मग धरत तजे वरदहु हरवर सौं।
आए तिहिं वन सघन विभूषित जो नरवर सौं॥
देखि भूप कौ कृसित रूप नैननि जल छायौ।
सृंगी-नाद विषाद-हरन सुख-करन वजायौ॥३०॥

दृग उघारि त्रिपुरारि निरख नृप निकट चकाए।
रहे ललकि छवि-छकित पलक विन पलक गिराए॥
सुंदर अमर अनूप भव्य भव-रूप सुहायौ।
मनु तप-तेज-स्वरूप भूप-आगैं चलि आयौ॥३१॥

हेम-वरन सिर जटा चंद छवि-छटा भाल पर।
कलित कृपा की कटा-घटा लोचन विसाल पर॥
फनि-पति-हार-विहार-भूमि वच्छस्थल राजै॥
जग-अवलंब प्रलंब भुजनि फरकति छवि छाजै॥३२॥

दृढ़ कटि-धाम ललाम चाम सुभ दुरद-दुवन कौ।
गूढ़ जानु जो भार भरत सहजहिं त्रिभुवन कौ॥
अरुन-कोकनद चरन सरन जो असरन जन के।
जिनकौ गुन-गुंजार करत मन-अलि मुनि-गन के॥३३॥

गौर सरीर विभूति भूति त्रिभुवन की सोहै।
आनन परम-उदार-प्रकृति-छवि-छलक विमोहै॥
उमगि कृपा कौ वारि पगनि डगमग उपजावत।
तकि तकि तांडव नचत दमकि-दम डमरु वजावत॥३४॥

मानि कामना सिद्ध जानि तूठे दुख-हारी।
भयौ भूप-मन मगन वढ़ैं आनँद-नद भारी॥
किं-कर्तव्य-विमूढ़ गूढ़ भायनि भरि भाए।
रहे थकित से ढंग छनक विन अंग डुलाए॥३५॥

पुनि कछु धीर वटोरि जोरि कर परे धरनि पर।
वरुनिनि भारत पाय पखारत नैन-नीर भर॥
कंपित गात लखाति प्रेम-पुलकावलि विकसति॥
उमंगि कंठ लौं आइ वात हिचकी ह्वै निकसति॥३६॥

यह करुनामय दृश्य संभु प्रनतारति-हारी।
सके न देखि विसेपि भक्त-दुख भए दुखारी॥
नृपहिं और कछु करन कहन कौ ठौर न दीन्यौ।
अंतरजामी जानि भाव अंतर कौ लीन्यौ॥३७॥

भुज उठाइ हरपाइ वाँकुरौ विरद सँभार्‌यौ।
दियौ विसद वर-राज भूप कौ काज सँवार्‌यौ॥
हम लैहैं सिर गंग ढंग जग होहि जाहि त्रै।
यौं कहि अंतरधान भए नृप रहे चकित ह्वै॥३८॥

उठि महि सौं महिपाल लगे चारौं दिसि हेरन।
कृपा-सिंधु करुना-निधान कहि इत उत टेरन॥
सिव कौ सुखद स्वरूप चखनि भरि चहन न पाए।
मन की मनहीं रही हाय कछु कहन न पाए॥३६॥

इहिं गिलानि की आनि घटा आसा धुँधराई।
भयौ मंद मुख-चंद दंद-उम्मस उमगाई॥
पै गुनि हर के बैन नैन आनँद-रस बरसे
जप तप कौ करि विहित विसर्जन अति सुख सरसे॥४०॥

इहिं भाँति भगीरथ भूप वर साधि जोग जप तप प्रखर।
लीन्यौ सिहात जिहिं लखि अमर मान-सहित चित-चहत वर॥४१॥

—:꙳:—

सप्तम सर्ग

तब नृप करि आंचमन मारजन सुचि-रुचि-कारी।
प्रानायाम पुनीत साधि चित-वृत्ति सुधारी।
बहुरि अंजली बाँधि ध्यान विधि कौ विधिवत गहि।
माँगी गंग उमंग-सहित पूरब प्रसंग कहि॥ १॥

बद्ध-अंजली देखि भूप विनवत मृदु वानी।
मुसकाने विधि आनि चित्त "चिल्लू-भर पानी"॥
लागे करन विचार बहुरि जग-हित-अनहित पर।
पाप-पुन्य-फल-उचित-लाभ-मर्याद खचित पर॥ २॥

पुनि गुनि वर वरदान आपनौ औ संकर कौ।
सगर-सुतनि कौ साप-ताप तप नर-पति बर कौ॥
सुमिरि अखिल-ब्रह्मांड-नाथ मन माथ नवायौ।
सब संसय करि दूरि गंग-दैवो ठिक ठायौ॥ ३॥

किए सजग दिग-पाल व्याल-पति हृदय दढ़ायौ।
कोल कमठ पुचकारि भूधरनि धीर धरायौ॥
स्वस्ति-मंत्र पढ़ि तानि तंत्र मुद-मंगल-कारी।
लियौ कमंडल हाथ चतुर चतुरानन-धारी॥ ४॥

इत सुरसरि कौ धाम धमकि त्रिभुवन भय-पागे।
सकल सुरासुर विकल विलोकन आतुर लागे॥
दहलि दसौं दिग-पाल विकल-चित इत उत धावत।
दिग्गज दिग दंतनि दबोचि दग भभरि भ्रमावत॥ ५॥

नभ-मंडल थहरान भानु-रथ थकित भयौ छन।
चंद चकित रहि गयौ सहित सिगरे तारागन॥
पौन रह्यौ तजि गौन गह्यौ सब भौन सनासन।
सोचत सबै सकाइ कहा करिहै कमलासन॥ ६॥

विंध्य-हिमाचल-मलय-मेरु-मंदर-हिय हहरे।
ढहरे जदपि पषान ठमकि तउ ठामहिं ठहरे॥
थहरे गहरे सिंधु पर्व बिनहूँ लुरि लहरे।
पै उठि लहर-समूह नैंकु इत उत नहिं ढहरे॥ ७॥

गंग कह्यौ उर भरि उमंग तौ गंग सही मैं।
निज तरंग-बल जौ हर-गिरि हर-संग मही मैं॥
लै स-वेग-विक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ।
ब्रह्म-लोक कौं बहुरि पलटि कंदुक-इव आऊँ॥ ८॥

सिव सुजान यह जानि तानि भौंहनि मन माषे।
बाढ़ी-गंग-उमंग-भंग पर उर अभिलाषे॥
भए सँभरि सन्नद्ध भंग कैं रंग रँगाए।
अति दृढ़ दीरघ सृंग देखि तापर चलि आए॥ ९॥

बाघंबर कौ कलित कच्छ कटि-तट सौं नाध्यौ ।
सेसनाग कौ नागबंध तापर कसि बाँध्यौ ॥
व्याल-माल सौं भाल बाल-चंदहिं दृढ़ कीन्यौ ।
जटा-जाल कौ झाल-व्यूह गह्वर करि लीन्यौ ॥१०॥

मुंड-माल यज्ञोपवीत कटि-तट अटकाए ।
गाड़ि सूल शृंगी, डमरू तापर लटकाए ॥
वर बाहँनि करि फेरि चाँपि चटकाइ अँगुरियन ।
बच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ चाय भिनि ॥११॥

तमकि ताकि भुज-दंड चंड फरकत चित चोपे ।
महि दबाइ दुहुँ पाय कछुक अंतर सौं रोपे ॥
मनु बल-विक्रम जुगल-खंभ जगथंभन-हारे ।
धीर-धरा पर अति गँभीर-दृढ़ता-जुत धारे ॥१२॥

जुगल कंध बल-संध हुमकि हुमसाइ उचाए ।
दोउ भुज-दंड उदंड तोलि ताने तनकाए ॥
कर जमाय करिहायँ नैन नभ-ओर लगाए ।
गंगागम की बाट लगे जोहन हर ठाए ॥१३॥

बल विक्रम पौरुष अपार दरसत अँग-अँग तैं ।
बीर रौद्र दोउ रस उदार झलकत रँग-रँग तैं ॥
मनहु भानु-सित भानु-किरन-विरचित पट वर की ।
झलक दुरंगी देति देह-द्युति सिवसंकर की ॥

बचन-बद्ध त्रिपुरारि ताकि सन्नद्ध निहारत ।
दियौ ढारि विधि गंग-बारि मंगल उच्चारत ॥
चली विपुल-बल-वेग-बलित बाढ़ति ब्रह्मद्रव ।
भरति भुवन भय-भार मचावति अखिल उपद्रव ॥१५॥

निकसि कमंडल तैं उमंडि नभ-मंडल-खंडति ।
धाई धार अपार वेग सौं वायु विहंडति ॥
भयौ घोर अति सब्द धमक सौं त्रिभुवन तरजे ।
महा मेघ मिलि मनहु एक संगहिं सब गरजे ॥१६॥

भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके ।
हरके वाहन रुकत नैंकु नहिं विधि हरि हर के ॥
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय-थरके ।
धुनि प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके ॥ १७ ॥

कढ़ि-कढ़ि गृह सौं विबुध विविध जाननि पर चढ़ि चढ़ि ।
पढ़ि-पढ़ि मंगल-पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि-बढ़ि ॥
सुर-सुंदरी ससंक वंक दीरघ दृग कीने ।
लगीं मनावन सुकृत हाथ कानन पर दीने ॥१८॥

निज दरेर सौं पौन-पटल फारति फहरावति ।
सुर-पुर के अति सघन घोर वन वसि बहरावति ॥
चली धार धुधकारि धरा-दिसि काटति कावा ।
सगर-सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा ॥१९॥

विपुल वेग सौं कबहुँ उमगि आगे कौं धावति ।
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिं चलि आवति ॥
फटिकसिला के वर विसाल मन विस्मय बोहत ।
मनहु विसद छद अनाधार अंबर मैं सोहत ॥२०॥

स्वाति-घटा घहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी ।
कैधौं आवति झुकति सुभ्र-आभा-रुचि रूरी ॥
मीन-मकर-जलव्यालनि की चल चिलक सुहाई ।
सो जनु चपला चमचमाति चंचल-छवि-छाई ॥२१॥

रुचिर रजतमय कै वितान तान्यौ अति विस्तर।
झिरति बूँद सो झिलमिलाति मोतिनि की झालर॥
ताके नीचैं राग-रंग के ढंग जमाए।
सुर-वनितनि के बृंद करत आनंद-बधाए॥२२॥

वर-विमान-गज-बाजि-चढ़े जो लखत देव-गन।
तिनके तमकत तेज दिव्य दमकत आभूषन॥
प्रतिबिंबित जब होत परम प्रसरित प्रवाह पर।
जानि परत चहुँ ओर उए बहु बिमल विभाकर॥२३॥

कबहुँ सु धार अपार-वेग नीचे कौं धावै।
हरहराति लहराति सहस जोजन चलि आवै॥
मनु विधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत।
पुन्य-खेत-उतपन्न हीर की रासि उसावत॥२४॥

कै निज नायक बँध्यौ विलोकत व्याल पास तैं।
तारनि की सेना उदंड उतरित अकास तैं॥
कै सुर-सुमन-समूह आनि सुर-जूह जुहारत।
हर हर करि हर-सीस एक संगहि सब डारत॥२५॥

छहरावति छबि कबहुँ कोऊ सित सघन घटा पर।
फबति फैलि जिमि जोन्ह-छटा हिम-प्रचुर-पटा पर॥
तिहिं घन पर लहराति लुरति चपला जब चमकै।
जल-प्रतिबिंबित दीप-दाम दीपति सी दमकै॥२६॥

कबहुँ वायु-बल फूटि छूटि बहु बपु धरि धावै।
चहुँ दिसि तैं पुनि डटति सटति सिमटति चलि आवै॥
मिलि-मिलि द्वै-द्वै चार-चार सब धार सुहाई।
फिरि एकै ह्वै चलति कलित बल वेग बढ़ाई॥२७॥

जैसैं एकैं रूप प्रवल माया-वस मैं परि ।
विचरत जग मैं अति अनूप वहु विलग रूप धरि ॥
पै जव ज्ञान-विधान ईस-सनमुख लै आवै ।
तव एकै ह्वै वहुरि अमित आतम-वल पावै ॥२८॥

जल सौं जल टकराइ कहूँ उच्छलत उमंगत ।
पुनि नीचैं गिरि गाजि चलत उत्तंग तरंगत ॥
मनु कागदि कपोत गोत के गोत उड़ाए ।
लरि अति ऊँचैं उलरि गोति गुथि चलत सुहाए ॥२९॥

कहूँ पौन-नट निपुन गौन कौ वेग उघारत ।
जल-कंदुक के वृंद पारि पुनि गहत उछारत ॥
मनौ हंस-गन मगन सरद-वादर पर खेलत ।
भरत भाँवरैं जुरत मुरत उलहत अवहेलत ॥३०॥

कवहुँ वायु सौं विचलि वंक-गति लहरति धावै ।
मनहुँ सेस सित वेस गगन तैं उतरत आवै ॥
कवहुँ फेन उफनाइ आइ जल-तल पर राजै ।
मनु मुकतनि की भीर छीर-निधि पर छवि छाजै ॥३१॥

कवहुँ सुताड़ित ह्वै अपार-वल-धार-वेग सौं ।
छुभित पौन फटि गौन करत अतिसय उदेग सौं ॥
देवनि के ह्वै जान लगत ताके झकझोरे ।
कोउ आँधी के पोत होत कोउ गगन-हिंडोरे ॥३२॥

उड़नि फुही की फाव फवनि फहरति छवि-छाई ।
ज्यौं परवत पर परत झीन वादर दरसाई ॥
तरनि-किरन तापर विचित्र वहु रंग प्रकासैं ।
इंद्र-धनुष की प्रभा दिव्य दसहूँ दिसि भासैं ॥३३॥

मनु दिगंगना गंग न्हाइ कीन्हे निज अंगी।
नव भूपन नव-रत्न-रचित सारी सत-रंगी॥
गंगागम-पथ माहिं भानु कैधौं अति नीकी।
बाँधी वंदनवार विविध बहु पटापटी की॥३४॥

इहिं विधि धावति धँसति ढरति ढरकति सुख-देनी।
मनहु सँवारति सुभ सुर-पुर की सुगम निसेनी॥
विपुल-वेग बल विक्रम कैं ओजनि उमगाई।
हरहराति हरपाति संभु-सनमुख जब आई॥३५॥

भई थकित छवि छकित हेरि हर-रूप मनोहर।
ह्वै आनहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर॥
भयौ कोप कौ लोप चोप औरै उमगाई।
चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोप-रुखाई॥३६॥

छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग मैं।
थहरन के ढरि ढंग परे उछरति तरंग मैं॥
भयौ वेग उद्वेग पैंग छाती पर धरकी।
हरहरान धुनि विघटि सुरट उघटी हर-हर की॥३७॥

भयौ हुतौ भ्रू-भंग-भाव जो भव-निदरन कौ।
तामैं पलटि प्रभाव पर्‌यौ हिय हेरि हरन कौ॥
प्रगटत सोइ अनुभाव भाव औरै सुखकारी।
ह्वै थाई उतसाह भयौ रति कौ संचारी॥३८॥

कृपानिधान सुजान संभु हिय की गति जानी।
दियौ सीस पर ठान वाम करि कै मन मानी॥
सकुचति ऐंचति अंग गंग सुख-संग लजानी।
जटा-जूट-हिम-कूट सघन वन सिमिटि समानी॥३९॥

पाइ ईस कौ सीस-परस आनँद अधिकायौ ।
सोइ सुभ सुखद निवास वास करिबौ मन ठायौ ॥
सीत सरस संपर्क लहत संकरहु लुभाने ।
करि राखी निज अंग गंग कैँ रंग भुलाने ॥४०॥

विचरन लागी गंग जटा-गह्वर-वन-वीथिनि ।
लहति संभु-सामीप्य-परम-सुख दिननि निसीथिनि ॥
ईहि विधि आनँद मैँ अनेक बीते संवत्सर ।
छोड़त छुटत न बनत ठनत नव नेह परस्पर ॥४१॥

यह देखि दुखित भूपति भए चित चिंता प्रगटी प्रबल ।
अब कीजै कौन उपाय जिहिँ सुरसरि आवै अवनि-तल ॥४२॥

अष्टम सर्ग

पुनि नृप उर धरि धीर वरद संकर आराधे ।
विविध जोग जप जज्ञ नेम व्रत संजम साधे ॥
इक पग ऊपर जनइ सनय बहु बिनय बखानी ।
जोरि पानि मृदु बानि सानि ढारत दृग पानी ॥ १ ॥

जय जय भव-भय-हरन दरन दुख-दंद दयामय ।
जय जय तरुनादित्य-तेज करुना-वरुनालय ॥
जय जय असरन-सरन-भरन जग-बिपति-बिदारन ।
जय जय औटर-ढरनि-ढरन, सुरसरि-सिर-धारन ॥ २ ॥

व्यापक ब्रह्म-स्वरूप भूप करि सुर जिहिँ जानत ।
कहि कहि अकह-अनूप-रूप जिहिँ वेद बखानत ॥
जय जय दीन-दयाल प्रनत-प्रतिपाल पुरारी ।
काम-क्रोध-मद-मोह-रहित सेवक-हितकारी ॥ ३ ॥

कीन्यौ नाथ सनाथ माथ सुरसरि जो धारी।
तुम बिन सकत सम्हारि कौन ताकौ बल भारी॥
सकल सुरासुर कौ अपार भय-भार निवार्‌यौ।
राख्यौ पैज-प्रमान दियौ वरदान सँभार्‌यौ॥४॥

पै कृपाल नहिं होइ कामना सफल हमारी।
जब लौं गहि न सिंचाइ पाइ सुरसरि-वर-वारी॥
कृपा-कोर सौं अब कीजै कोउ सुगम प्रनाली।
जातैं सुरसरि आइ भरै धरनी-सुख-साली॥५॥

सुनि बिनती गुनि दुखित दास संकर दिन-दानी।
निज बिलंब मन मानि सकुच बोले मृदु बानी॥
अहो गंग सुभ-अंग अहो सुख-सागर-संगिनि।
करनि दुरित-भय-भंग तरल-उत्तंग-तरंगिनि॥६॥

कीन्यौ अकथ अनूप उग्र तप भूप भगीरथ।
तव आगम तैं सुगम-करन-हित अगम परम पथ॥
लहि बिधि सौं बरदान मान हमहूँ सौं पायौ॥
तव उतरन आतंक पूरि त्रिभुवन थहरायौ॥७॥

तुम मन मानि सनेह सील पहिचानि पुरानी।
करि भूषित मम सीस भरी जग सुजस-कहानी॥
हम तव सुख-प्रद परस पाइ इहिं भाय लुभाने।
रहे राखि निज संग सरस बहु बरस बिताने॥८॥

भई भूप की अति अनूप अभिलाष न पूरी।
जउ असाध्य स्रम साधि लही बिधि सौं निधि रूरी॥
अब तिहिं निरखि अधीर पौर कसकति अति उर मैं।
तातैं तुम जग जाइ सुजस पूरौ तिहुँ पुर मैं॥९॥

हरहु पाप के दाप ताप के पुंज नवास ।
सुर-पुर उर मैं महि-महिमा कौ चाव उचावौ ॥
भए छार जरि सगर कुमारनि कौं निस्तारौ ।
भूप भगीरथ-अति-अनूप-कीरति विस्तारौ ॥ १० ॥

विलग न मानौ नैंकु प्रमानौ गिरा हमारी ।
वसिहौ नित मो सीस कबहुँ ह्वैहौ नहिं न्यारी ॥
नित तव धार अखंड जटामंडल तैं कढ़िहै ।
जिहिं लहि परम प्रमोद गोद वसुधा की मढ़िहै ॥११॥

यह कहि कर गहि जटा सटा लौं सूँति सटाई ।
विंदु सरोवर ओर छोर ताकी लटकाई ॥
तातैं निकसि अपार धार परिपूरि सरोवर ।
चली उबरि ढरि करि उदोत पट सोत धरा पर ॥ १२ ॥

नलिनी नीत पुनीत पावनी ललित ह्लादिनी ।
इन तीननि सौं भई आनि प्राची-प्रसादिनी ॥
सुभ सुचच्छु वलसंवा सिंधु सीता सुपुनीता ।
इनसौं पच्छिम चली पढ़ति भूपति-गुन-गीता ॥१३॥

पै न भगीरथ-चित-चाहे पथ सौं महि आई ।
यह लखि बिलखि भुवाल रहे चिंता अधिकाई ॥
आइ सरोवर-तीर धीर धरि भरि दृग वारी ।
ह्वै आरत-आधीन दीन विनती उच्चारी ॥१४॥

जय ब्रह्म-संपत्ति-सार जय जय ब्रह्मद्रव ।
जय संकर-मन-हरनि दरनि दुख-द्वंद-उपद्रव ॥
जय वृंदारक-वृंद-वंद्य जय हिमगिरि-नंदिनि ।
जय जम-गन-मन-दंड-दान अभिमान-निकंदिनि ॥१५॥

जदपि वक्र तउ सक्र-सदन की सरल निसेनी।
जउ नीचे कौं चलति उच्च पद तउ नित देनी॥
जदपि छुभित अतिकांति सांति-दायनि तउ मन की।
जउ उज्जल-जल-रूप तऊ रंजनि रुचि जन की॥१६॥

देहु कृपा-अवलंब अंब त्र्यंबक-गुन धारौ।
भारत भूमि पवित्र करौ वैभव विस्तारौ॥
सागर पूरि पताल पैठि तहँहूँ जस छावौ।
सगर-सुतनि कौं सोक सारि सुर-लोक पठावौ॥१७॥

सुनि नृप-विनय निदेस गंग गुनि मन महेस कौ।
सरित सातवीं होइ गयौ पथ पुन्य-देस कौ॥
भागीरथी-पुनीत-नाम-धारिनि दुख-हारिनि।
गारिनि जम-गन-दाप पाप-संताप-निवारिनि॥१८॥

भूप भगीरथ भए दिव्य स्यंदन चढ़ि आगे।
लगी गंग तिन संग भाग भारत के जागे॥
सृंगनि सिखरनि तोरि फोरि ढाहति ढहरावति।
औघट घाट अघाट चली निज बाट बनावति॥१९॥

प्रथम निकसि हिम-कलित कूल पर छवि छहराई।
पुनि चहुँ दिसि तैं ढरकि ढार धारा ह्वै धाई॥
चंद्रकांत-चट्टान चंद्रिका परत सुहाई।
मनु पसीजि रस-भीजि सुधा-सरिता उपजाई॥२०॥

तिहिं प्रवाह मैं मिलित ललित हिम-कन इमि दमकत।
सारद बारद माहिं मनो तारा-गन चमकत॥
कै वसुधा-सृंगार-हेत करतार सँवारी।
सुघर सेत सुख-सार तार-बाने की सारी॥२१॥

कहुँ हिम ऊपर चलति कहूँ नीचैं धँसि धावति।
कहुँ गालनि बिच पैठि रंध्र-जालनि मग आवति॥
सरद-घटा की बिज्जु-छटा मानौ लुरि लहरति।
ऊरध अध मधि माहिं मचति मंजुल छवि छहरति॥२२॥

कहुँ अटूट बहु धार गिरति हिमकूट-तुंड तैं।
ऐरावत के सुंड मनहु लटकत भुसुंड तैं॥
छटकि छींट छवि छाइ छत्र लौं छिति पर छहरै।
सुंड भर्‌यौ जल मनहु फैलि फुफकारनि फहरै॥२३॥

इमि हिम-खंड बिहाइ आइ पाहन-पथ मंडति।
ढरकि ढार इक-डार चली गिरि-खंडनि खंडति॥
फाँदति फैलति फटति सटति सिमिटति सुढंग सौं।
सृंगनि बिच-बिच बढ़ी गंग सरि भरि उमंग सौं॥२४॥

कहुँ ढाहे ढोकनि ढुकाइ निज गति अवरोधति।
पुनि ढकेलि ढुरकाइ तिन्हैँ पकर्‌यौ मग सोधति॥
कबहुँ चलति कतराइ वक्र नव बाट काटि गहि।
कबहुँ पूरि जल-पूर कूर ऊपर उमंडि बहि॥२५॥

कहुँ बिस्तर थल पाइ बारि-बिस्तार बढ़ावति।
लघु गुरु बीचि पसारि छंद-प्रस्तार पढ़ावति॥
कै दिग-दंती-दंत-दिव्य-दीरघ-पाटी पर।
लिखति सतोगुन घोटि भूप-जस-रूप रुचिर वर॥२६॥

पुनि कोउ घाटी बीच भीचि जल-बेग बढ़ावति।
ढुरकत ढोकनि खड़बड़ाइ धुनि-धूम मचावति॥
मनहु भूप कौ अति अनूप वर बिरद उचारति।
जम-गन कौं दरि दंभ खंभ ठोकति ललकारति॥२७॥

हरहराति हर-हार सरिस घाटी सौं निकरति।
भव-भय-भेक अनेक एक संगहि सब निगरति॥
अखिल हंस-वर-बंस घेरि साँकर घर धारे।
भरभराइ इक संग कढ़त मनु खुलत किवारे॥२८॥

कहुँ कोउ गह्वर गुहा माहिं घहरति घुसि घूमति।
प्रबल वेग सौं धमकि धूँसि दसहूँ दिसि दूमति॥
कढ़ति फोरि इक ओर घोर धुनि प्रतिधुनि पूरति।
मानहु उड़ति सुरंग गूढ़ गिरि-सृंगनि चूरति॥२९॥

सकल सुरासुर सिद्ध नाग गुह्यक गिरि वासी।
इत उत हेरत हरबरात हिय भरे उदासी॥
छाड़ि जोग जप-जज्ञ अज्ञ लौं चौंकि चकाए।
जहँ तहँ दौरत दुरत जुरत कर कान लगाए॥३०॥

बिसद वितुंड दबाइ कुंडलित सुंड भुसुंडनि।
भय भरि नैम भ्रमाइ धाइ पैठत जल-कुंडनि॥
चीतें तिदुवे बाघ भभरि निज आघ भुलाए।
जित तित दौरत दाबि पुच्छ अरु कान उठाए॥३१॥

हरिन चौकड़ी भूलि दरिनि दौरत कदराए।
तरफरात बहुसृंग सृंग झाड़िनि अरुझाए॥
गहत सवंग उतंग सृंग कूदत किलकारत।
उड़ि विहंग बहु-रंग भयाकुल गगन गुहारत॥३२॥

गुफा धारि फहराइ चलत-फैलत वर वारी।
मानहु दुख-द्रुम-दलन-काज विधि रचत कुठारी॥
सगर-सुतनि के दुरति-जूह पर कै-मन-मरकी।
बृंत-व्यूह रचि चलत सुकृत-सेना नर-वर की॥३३॥

कै त्रिताप के हरन-हेत सुभ व्यजन सुहायौ ।
विरचत रुचिर विरंचि विसद हिम-पटल-मढ़ायौ ॥
कै हीरक-मय मुकुट मंजु करि महि देवी कौ ।
सब लोकनि मैं करत मान ताकौ अति नीकौ ॥३४॥

इहिँ विधि घाटिनि दरिनि कंदरिनि पैठति निकसति ।
कहूँ सिमिटि घहराति कहूँ कल-धुनि-जुत विकसति ॥
कहूँ सरल कहुँ बक्र कहूँ चलि चारु चक्र-सम ।
कहुँ सुढंग कहुँ करति भंग गिरि-सृंग सक्र-सम ॥३५॥

गंगोत्तरि तैं उतरि तरल घाटी मैं आई ।
गिरि-सिर तैं चलि चपल चंद्रिका मनु छिति छाई ॥
बक-समूह इक संग गोति गिरि-तुंग सिखर तैं ।
गए फैलि दुहुँ-बाहु वीचि कै फावि फहर तैं ॥३६॥

तहाँ राजऋषि जह्नु परम हरि-भक्त प्रतापी ।
द्वादस-अच्छर-महामंत्र के अविकल-जापी ॥
पूरि भूरि अनुराग जाग कोउ सुभ ठान्यौ हो ।
सकल देव-मुनि-गोत न्यौति सानँद आन्यौ हो ॥३७॥

ताकौ वह मख-वाट विसद वह ठाट सजायौ ।
औचक गंग-तरंग आइ करि भंग वहायौ ॥
भयौ जह्नु-उर कोप जज्ञ कौ लोप निहारत ।
आमंत्रित द्विज-देव-सिद्ध-अपमान विचारत ॥३८॥

सुमिरत हरि कौतुकिहिँ कछुक कौतुक उर आयौ ।
उठि सम्हारि धृत धारि सवनि सादर सिर नायौ ॥
हरि-माया की परम प्रबल महिमा मन धारी ।
हरि हरि करि हरपाइ अंजली उमगि पसारी ॥३९॥

ताकैं अंतर-ओक बसत गो-लोक-बिहारी ।
सक्ति-सहित सुख-धाम भक्ति-बस जन-दुख-हारी ॥
जाकौ बिछुरन-छोभ अजौं सुरसरि उर राखति ।
सफरिनि-मिसि धरि अमित नैन दरसन अभिलापति ॥४०॥

यह अवसर सुभ सुलभ पाइ सो दुख-मेटन कौ ।
पैठि जह्नु-उर-अजिर सपदि प्रभु सौं भेटन कौ ॥
अति मंगल मन मानि गंग आनँद सरसानी ।
निज बिस्तार समेटि अंजली आनि समानी ॥४१॥

कियौ जह्नु तिहिं पान हरषि हरि-नाम उचारत ।
भावी भूत कुपूत पूत निज कुल के तारत ॥
सुर मुनि सब तिहिं समय परम बिस्मय सौं पागे ।
पर्वत-नृप-महिमा महान गुनि गावन लागे ॥४२॥

यह दुर्घट घट देखि भगीरथ निपट चकाए ।
सुठि स्यंदन तैं उतरि तुरत आतुर तहँ आए ॥
माथ नाइ कर जोरि सकल सुर मुनि नृप बंदे ।
गदगद स्वर सति भाय जह्नु सादर अभिनंदे ॥४३॥

सगर-सुतनि की कही प्रथम अति करुन-कहानी ।
पुनि बिरंचि-हर-कृपा गंग जासौं महि आनी ॥
कह्यौ भयौ अपराध घोर यह सब बिन जानैं ।
अनजानत की चूक-हूक पर साधु न मानैं ॥४४॥

छोभ-छलक अब छाँड़ि छमा-छादित चित कीजै ।
ब्रह्म रुद्र लौं ह्वै दयाल सुरसरि सुभ दीजै ॥
नित निज-महिमा-संग गंग तुव जस जग छैहै ।
धारि जाह्नवी नाम हरपि तुव सुता कहैहै ॥४५॥

दीन बचन सुनि भए सकल द्विज देव दुखारी।
जह्नु-जोग-बल बरनि भगीरथ बात सकारी॥
ह्वै प्रसन्न तब जह्नु कृपा-चितवनि सौं चाह्यौ।
अति असेस अवधेस-महास्रम-सुकृत-सराह्यौ॥४६॥

सगर-सुतनि की दुसह दसा गुनि अति दुख मान्यौ।
सकल जगत हित साहिँ निजहिँ बाधक जिय जान्यौ॥
करुना-सिंधु-तरंग तुंग इमि उर मैं बाढ़ी।
बन्यौ न राखत गंग पलटि काननि सौं काढ़ी॥४७॥

बैसाख सुक्ल सुभ सप्तमी गंग-नाम-गौरव गह्यौ।
जब निकसि जह्नु के अंग सौं गंग जाह्नवी-पद लह्यौ॥४८॥

नवम सर्ग

सादर सबहिँ नवाइ सीस अवनीस भगीरथ।
बढे बहुरि अगुवाइ धाइ चढ़ि वायु-वेग रथ॥
चली गंगहू संग अङ्ग ओजनि उमगाए।
ज्यौं कल-कीरति रहति सदा सुकृतिहिँ पछियाए॥ १॥

पुन्य-पाथ परिपूरि करति पर्वत-पथ पावन।
सब प्रतिबंध नसाइ आइ गिरि-कंध सुहावन॥
कूदी धरि धुनि-धमक घोर ठाढ़ी खाढ़ी मैँ।
परी गाज सी गाजि पुहुमि-पातक-पाढ़ी मैँ॥ २॥

अति उछाह सौँ उछरि परी फहराति फलंगति।
प्रवन-पाद सौँ दूरि भूरि-बल-पूरि उमंगति॥
चढ़त चंद की चारु छटा ज्यौँ छिति छवि छावति।
उच्च-धाम-अभिराम-पाँति पच्छिम-दिसि आवति॥ ३॥

फलकि फेन उफनाइ आइ राजत जुरि जल पर।
मनहु सुजा-निधि महत सुधा उमहत तरि तल पर॥
फवति फुही की फाव धूम-धारा लौं धावति।
गिरि-कोरनि पर मोर-पंख-तोरन-छवि छावति॥ ४॥

जिनके हाड़ पहाड़-खाड़-बिथुरित तिहिँ परसत।
सो लहि लहि वर बपुष जाइ सुरपुर सुख सरसत॥
जुरत न तिते बिमान जिते तारति इक संगहि।
निज प्रताप-बल पर पहुँचावति गंग-तरंगहि॥ ५॥

बिपुल वेग सौं जदपि गाजि गवनत जल तर कौं।
तउ सफरिनि हित होत सुपथ उमहत ऊपर कौं॥
निज अधीन पर ज्यौं प्रवीन विक्रम न जनावैं।
वरु दै बाहँ उमाहि उच्च पद पर पहुँचावैं॥ ६॥

देव दनुज गंधर्व जच्छ किन्नर कर जोरे।
निज निज नारिनि संग अङ्ग वहु भावनि वोरे॥
भय बिस्मय बिस्वास आस आनँद उर छाए।
दुहुँ कूलनि सुख-मूल स्वच्छ पर परे जमाए॥ ७॥

अद्भुत अकथ अनूप गंग-कौतुक कल देखत।
अति अलभ्य यह लाभ ललकि लोचन कौ लेखत॥
स्वस्ति-पाठ कोउ पढ़त कोऊ अस्तुति गुनि गावत।
कोऊ भगीरथ भव्य भाग को राग कढ़ावत॥ ८॥

कोउ झुकि झाँकन-चाय बाढ़ पर पाय जमावत।
पै झाईं सौं झुलमुलाइ पाछैं हटि आवत॥
पुनि साहस करि सँभरि सकल खाढ़ी मैं उतरत।
पग पग पर दृग दिए किए चित-वित अच्युत-रत॥ ९॥

कोउ ढिठाइ नियराइ ठाइ पग झुकि जल परसत।
सुधा-स्वाद-सुख बाद बदत रसना रस सरसत॥
ताकी देखादेख सेष सब चाव उचावत।
हिचकिचात ललचात नीर नेरैं चलि आवत॥१०॥

सींचि सीस आचम्य रम्य सुखमा सुभ देखत।
नंदनवन-आनंद-अमित-लेखा लघु लेखत॥
कोउ ठमकत गहि ठाम ठठोली करि कोउ ठेलत।
कोउ भाजत छल छाइ धाइ कोउ ताहि पछेलत॥११॥

कोउ सीतल-जल-छींट छपकि काहू पर छिरकत।
कोउ काहू कौं पकरि पीठि-पाछैं हटि हिरकत॥
कोउ अधार कछु धारि धँसत जानू लगि जल मैं।
हरबराइ पर कढ़त थमत नहिं पूर प्रबल मैं॥१२॥

कोउ कटि-तट पट बाँधि खेल अटपट अति ठावत।
इत तैं उत जल-धार-ढार-नीचै ह्वै धावत॥
यह कौतुक कल अपर सकल विस्मित-चित चाहत।
साधु साधु कहि गहि जुहारि जुरि ताहि सराहत॥१३॥

जहँ कोउ मंजुल मोड़ तोड़-गति तरल निवारत।
प्रबल-बेग जल फैलि सांति-सुखमा विस्तारत॥
तहाँ जूह के जूह जुरत जल-केलि-उमाहे।
बहु विनोद आमोद करत आनँद अवगाहे॥१४॥

कोउ नहात कोउ तिरत कोऊ जल-अंतर धावत।
रविहिं अर्घ कोउ देत कोऊ हर-हर-धुनि लावत॥
लै चुभकी कोउ भजत सीत-भय-भीत-विलोकत।
कोउ परिहास-विलास-हेत ताकौं गहि रोकत॥१५॥

कोउ अच्छरिनि छरत छेड़ि छँटि छींट उछारत।
तिनकी उभकनि झुकनि झाँकि कहुँ अनत निहारत॥
कोउ कहुँ तरु-तर बैठि विसद यह दृश्य निहारत।
मोद-हाँस-मुक्तालि प्रकृति-देवी पर वारत॥१६॥

सुमुखि-सुलोचनि-बृंद मंद मुसकात कलोलत।
दर-विकसत अरविंद मनौ वीचिनि-बिच डोलत॥
जगर-मगर तन-रतन-जोति जल-तल इमि चमकति।
तरनि-किरन ज्यौं परत दिव्य दरपन पर दमकति॥१७॥

न्हाइ आइ पुनि तीर चीर सुंदर सब धारत।
करि षोड़स उपचार आरती उमगि उतारत॥
जहँ तहँ मंगल रंग-संग साजे जुवती-गन।
नाचत गावत विविध बजावत वाद मगन मन॥१८॥

इहिं विधि सुरसरि सुर-समाज-सेवित सुख-सानी।
भरि-विनोद गिरि-गोद मोद-मंडित उमगानी॥
कढ़त सिमिटि इक ओर घोर धुनि सौं नभ पूरति।
ढोंकनि ढेला करति ढुरत ढेलनि चकचूरति॥१९॥

कहूँ तरल कहुँ मंद कहूँ मध्यम गति धारे।
दरति कूल-द्रुम-मूल ढहावति कठिन करारे॥
द्वै गिरि-स्त्रेनिनि बीच बढ़ति उमड़ति इमि आवति।
ज्यौं बादर की जोन्ह विसद वीथिनि मैं धावति॥२०॥

गिरि-विहार इमि करति हरति दुःख-दुरित-समूहनि।
देत निरासनि आस त्रास जग-मन के जूहनि॥
कर्न प्रयाग विभूषि कर्न-गंगा सँग लावति।
उत्तर-कासी कौ महत्व लोकोत्तर ठावति॥२१॥

भरि टिहरी-उत्संग संग भृगु गंग समेटति ।
देव-प्रयागहिं पूरि अलक-नंदहिं भरि भैंटति ॥
हृषीकेस सौं होति सैल-बंधहिं बिलगावति ।
हरिद्वार मैं आइ छेम छिति-मंडल छावति ॥२२॥

जेठ मास सित पच्छ स्वच्छ दसमी सुखदाई ।
तिहिं दिन गंग उमँग-भरी भूतल पर आई ॥
दस-विधि-पातक-हरन-हेत फहरान फरहरा ।
तातैं ताकौ परयौ नाम अभिराम दसहरा ॥२३॥

सुर-धुनि आवन धूम धाम-धामनि म धाई ।
चहुँ दिसि तैं चलि चपल जुरे बहु लोग लुगाई ॥
चारहु वरन पुनीत नीति-नाथे गृह-वासी ।
जोगी जंगम परमहंस तापस संन्यासी ॥२४॥

कोउ नहात कोउ दान करत कोउ ध्यान सुधारत ।
कोउ श्रद्धा सौं पितर स्राद्ध तरपन करि तारत ॥
कोऊ वेद वेदांत मथत रस सांत उगाहत ।
कोऊ चढ्यौ चित - चाव भक्ति के भाव उमाहत ॥२५॥

कोउ निरूपि निर्वान पुलकि सानँद दृग फेरत ।
कोउ अघाइ जल-स्वाद पाइ ताकौं हँसि हेरत ॥
कोउ अन्हात पछितात न पुनि जग-जनम बिचारत ।
कोउ कुटीर हित हुलसि तीर पर ठाम निहारत ॥२६॥

कवि कोविद कोउ भव्य भाव उर अंतर खाँचत ।
निरखि उतंग तरंग रंग प्रतिभा कौ जाँचत ॥
सुमिरि गिरा गननाथ गंग कौं माथ नवावत ।
रुचिर काव्य-कल-करन-काज चित चाव चढ़ावत ॥२७॥

उज्जल - अमल-अनूप - रूप-उपमा बहु सोधत।
मुकता-पानिप सरिस स्वच्छ कहि कछु मन बोधत॥
पै तिहिं अचल विचारि चित्त तासौं विचलावत।
पुनि बरनन कौं बरन बरन आनन नहिं आवत॥२८॥

विपुल बेग बल विक्रम कौं गुनि गिरि-तरु-गंजन।
तिनकी समता हेत चेत चित परत प्रभंजन॥
पै तामैं सुख - परस सरस कौ दरस न देखत।
प्रबल बाह मैं बहीं सकल उपमा तब लेखत॥२९॥

सुचि सीतल जल परखि हरपि ही-तल उमगावत।
हिम - पट - पटतर प्रगटि नैंकु निज जीव जुड़ावत॥
पै तिहिं गुनद न जानि हीन-उपमा उर आनत।
आन सीत उपमान परे पाला तर मानत॥३०॥

आधि-व्याधि-दुख-दोष-दलन गुन गुनि अभिलाषत।
सकुचि सजीवन - मूरि-स्वरस समता - हित भाषत॥
पै ताकैं सुख - स्वाद माहिं संसय मन पारत।
तब गुन-गन निरधार धनंतर कैं सिर धारत॥३१॥

मृदुल - माधुरी - मोद कहन - हित हिय हुलसावत।
कबहुँ सुकृत - बस सुधा-स्वाद चाख्यौ चित आवत॥
पै सोउ उपमा माहिं नाहिं पावत कहि तोलन।
अकथ गंग - जल - स्वाद देत अधरहिं नहिं खोलन॥३२॥

इमि गोचर-गुन गुनत उमगि उपमा निरधारत।
समता असम विचारि सकल सुरसरि पर वारत॥
रसना रुचिर पखारि धारि प्रतिभा पर पानी।
तारन-परम - प्रभाव चहत बरनन बर बानी॥३३॥

चित चलाइ चढ़ि चाय लोक तीनहुँ परिसोधत।
पै न कोऊ उपमान ध्यान मैं आनि प्रबोधत॥
तव सारद-पद कंज-मंजु मधुकर-मन लावत।
सुमति-स्वच्छ-मकरंद लहत दुख-दंद नसावत॥३४॥

सुरसरि-सरि-हित बिसरि आन उपमान न आनत॥
कहे-सुने चित गुने सकल अनुचित सो जानत॥
सुमिरि गंग कहि गंग गंग संगति अभिलाखत।
भापि गंग-सम गंग रंग कविता कौ राखत॥३५॥

सुमुखि-बृंद सानंद सुघर तन रतन सजाए।
बिहरत वलित-विनोद ललित लहरत जल भाए॥
तारनि-सहित अमंद-चंद-प्रतिबिंब मनोहर।
मनु बहु बपु धरि फबत फलक-जुत फटिक सिला पर॥३६॥

गोरे गात सुहात स्वच्छ कलधौत छरी से।
तिन मैं चल चख चमचमात सुंदर सफरी से॥
मनु जग-जीतन-काज साज सब सबल बनावत।
मीनकेतु निज-केतु-मीन सुभ जल बिचरावत॥३७॥

तैरत बूड़त तिरत चलत चुभकी लै जल मैं।
चमकति चपला मनहु सरद घन बिमल पटल मैं॥
तरल तरंगनि-बीच लसतिँ बहुरंगनि सारी।
मनहु सुधासरि बाढ़ परी सुरपुर-फुलवारी॥३८॥

अंग-संग जल-धार धँसत जिनके मुकता-गन।
सो करि धरि वर बपुप जाइ बिहरत नंदनवन॥
जिन मृग के मद परत छूटि घट तट तैं पानी।
तिनकी करत सचोप चंद-बाहन अगवानी॥३९॥

इमि निकसि गंग गिरि गेह, तैं गह्यौ पंथ महि-लोक कौ।
करि हरिद्वार कौं अति सुगम द्वार अगम हरि-लोक कौ ॥४०॥

—०—

दशम सर्ग

महि-वासिनि उर भरति भूरि आनँद-नद-नारे।
दुख-दारिद-द्रुम दरति विदारति कलुप-करारे॥
वसुधहिँ देति सुहाग माँग तिनि सों पूरति।
भरति गोद आमोद, करति मन-मोहिनि मूरति॥ १ ॥

कर्मज-कृपि पर अति प्रचंड पाला सों पारति।
चित्रगुप्त की लेख-रेख निस्सेप पखारति॥
चली देवधुनि धाइ धरा-तल धूम मचावति।
भूप-भरथ-सुभ्र-वेप-जस-रेख खचावति ॥२॥

कबहुँ सघन बन पैठि परम स्वच्छंद कलोलति।
कहुँ धावति कहुँ चलति चारु कहुँ डगमग डोलति॥
कहुँ दै थपकि थपेड़ पैंड़ के पैंड़ ढहावति।
कहुँ उत्तंग-तरंग-संग तट-विटप वहावति॥ ३ ॥

वन-देविनि के वृंद करत आनंद वधाए।
विविध-पत्र-फल-फूल-मूल-उपहार सजाए॥
नाग-कन्यका बहु प्रकार उपचार प्रचारैं।
फनि मनि के करि दीप आरती उमगि उतारैं॥ ४ ॥

निर्जन वन लहि सकल हेलि जल-केलि उमाहैँ।
दुसह दुपहरी-दाह विसरि सरि-सलिल सराहैँ॥
मनु वन-सुपमा सुखद विषम ग्रीपम की जारी।
विहरति गंग-प्रसंग देह धरि दिव्य ढारी ॥५॥सु

दीरघ-दाघ निदाघ माहिँ पानी कौं तरसे।
सीतल धार अपार पाइ बनचर सुख सरसे॥
अति-अमंद-आनंद-मगन-मन उमगत डोलत।
सहज बैर बिसराइ आइ कल कूल कलोलत॥६॥

लखत कनखियनि चखत नीर मृग बाघ परस्पर।
भाजत झपटत बनत पै न तजि नीर सुखद बर॥
नाचत मुदित मयूर मंजु मद-चूर अघाए।
अहि जुड़ात तिन पास पाइ सुख त्रास भुलाए॥७॥

कहुँ क्रीड़त करि-निकर तरंगनि मैं सुख सरसत।
मनु कलिंद के सिखर-वृंद सित-घन-बिच दरसत॥
कहुँ कपि लटकत नीर अटकि तट बिलुलित डारनि।
बालखिल्य मनु लहत सु तप-संचित-सुख-सारनि॥८॥

कहुँ जल-बीचिनि बीच अड़े महिपाकर अरने।
जम-बाहन हैं व्यर्थ परे मनु सुरधुनि-धरने॥
सिमिटि ससा कहुँ तीर नीर छकि अधर हलावत।
ससि-मंडलहिँ अखंड रखन की बिनय सुनावत॥९॥

सुरधुनि-स्वागत-काज साज बन-राज सजायौ।
सहित सहाय समाज न्यौति ऋतु-राज पठायौ॥
ठाम ठाम अभिराम सुखद सुखमा सौं पागे।
नंदन-बन-आनंद मंद लागत जिहिं आगे॥१०॥

बर बल्लिनि के कुंज-पुंज कुसुमित कहुँ सोहैं।
गुंजत मत्त मलिंद-वृंद तिन पर मन मोहैं॥
मनौ सुहागिनि सजे अंग बहुरंग दुकूलनि।
गावति मंगल मोद-भरी छाजे सिर फूलनि॥११॥

कहुँ तरुवर बहु भाँति पाँति के पाँति सुहाए।
नव-पल्लव-फल-फूल-भार सौं डार झुकाए॥
मनहु धारि सुख-भरित हरित बाने वर माली।
अवसर अकथ अलेख लेखि साजीं सुभ डाली॥१२॥

कूजत विविध विहंग संग अति आनँद-साने।
मानहु मंगल-पाठ पढ़त द्विज-गन उमगाने॥
कहुँ विरहावलि वदत कीर-चारन मन-चारी।
सावधान-धुनि धुनत कहूँ परभृत-प्रतिहारी॥१३॥

नाचत मंजुल मोर भौंर साजत सारंगी।
करति कोकिला गान तान तानति बहुरंगी॥
स्यामा सीटी देति चटक चुटकी चुटकावत।
घूमि भूमि झुकि कल कपोत तबला गुटकावत॥१४॥

इमि राँचति रस-रंग गंग बन बाहर आवति।
जलद-पटल बिलगाइ जोन्ह मनु छिति छवि छावति॥
चलति चपल त्रय-ताप पाप-तम-दाप निवारति।
कलित कृपा अभिराम सुभासुभ धाम पसारति॥१५॥

कोउ पटपर पर कबहुँ पाट सोभा विस्तारति।
काटि कूल छिति छाँटि बाट निज सुघट सुधारति॥
ऊसर के सर भरति निरस महि रस सरसावति।
आस-पास के गाम सुभग सुख-धाम बनावति॥१६॥

ग्राम-बधूटी जुरतिं आनि तट गागरि लै-लै। ग्राम स्त्रि
गावतिं परम पुनीत गीत धुनि लावतिं जै-जै॥
धारे सहज सिंगार गात गोरे गदकारे।
बिहँसत गोल कपोल लोल लोचन कजरारे॥१७॥

सुनकिरवा की आड़ ताड़ तरकी तरपीली।
ठाढ़े गाढ़े कुचनि चिहुँटनी-माल सजीली ॥
रँगे चोल-रँग चीर लगे भोडर-नग चमकत।
गृह-स्रम संचित स्वास्थ्य उमगि आनन पर दमकत ॥१८॥

कोउ पैठति जल हँसति धँसति एँड़ी कोउ तट पर।
कोउ मुख पानि पखारि वारि छिरकति निज पट पर ॥
कोउ कर जोरि नवाइ सीस दृग मूँदि मनावति।
ऐपन घुघुरी रोट अर्पि कोउ दीप दिखावति ॥१९॥

कहुँ मिलि जुलि दस पाँच नाच-रँग रुचिर रचावतिँ।
हूढ़ौ दै इठलाइ झमकि झुकि लंक लचावतिँ ॥
कोउ गोरुनि जल प्याइ न्हाइ परखति पनघट पर।
कोउ गागरि भरि चलति सीस धरि कोउ कटि-तट पर॥२०॥

लखि मसान कहुँ गंग मान ताकौ छिति छापति।
तहँ मिलान सुभ सरल स्वर्ग-पथ कौ थिर थापति ॥
हाड़ माँस तन-सार छार जिनके जल परसत।
सो सुभ गति अति लहत जाहि जोगी-जन तरसत ॥२१॥

तुरत गंग-गन धाइ मगन-मन जुरत जुहारत।
जम-दूतनि सौँ अटकि झटकि महि पटकि पछारत ॥
बरबस तिनहिँ छुड़ाइ बेगि बैठाइ बिमाननि।
पहुँचावत सुर-लोक सोक के लाँघि सिवाननि ॥२२॥

कोउ मग ही सौँ मुरत कोऊ जमराज-सभा सौँ।
कोउ नरकनि कौं फारि द्वार परिपूरि प्रभा सौँ ॥
चित्रगुप्त चितवत चरित्र यह चित्र भए से।
चकित जोहि जमराज काज निज बिसरि गए से ॥२३॥

कोउ पापिहिँ पंचत्व-प्राप्त सुनि जमगन धावत।
बनि बनि बावनि-वीर बढ़त चौचंद मचावत॥
पै ताकी तकि लोथ त्रिपथगा के तट ल्यावत।
नौ-द्वै ग्यारह होत तीन पाँचहिं बिसरावत॥२४॥

दंग होत सुर-राज गंग कौ रंग निहारत।
भरति भीर के सुभ सुपास कौ ब्यौंत बिचारत॥
नव-पुर-न्यौधन-हेत लेत विधना सौं पट्टा।
सुचि रचना कौ करत बिस्वकर्मा सौं सट्टा॥२५॥

इहिँ विधि तरल-तरंग गंग महिमा उद्घाटति।
वसुधा सुधा-निवास करति विबुधालय पाटति॥
ठाम ठाम बहु धर्म-धाम अभिराम बनावति।
मुक्ति भुक्ति के अटल सदाव्रत-छेत्र चलावति॥२६॥

ब्रह्मावर्त पुनीत पुरी आई उमगाई।
करि सनमान प्रदान ताहि महिमा अधिकाई॥
गंग-परस तैं पौन-गौन ह्वै सरस सुहावन।
करत रम्य आराम सरिस चहुँदिसि उपवन वन॥२७॥

मुनि गन-मन सुख भरत हरत आतप-तप-तापहिँ।
लै लै तूँवा चलत धाइ सव तजि जग-जापहिं॥
न्हाइ पाइ जल-स्वाद ब्रह्म-चरचा विस्तारत।
नेति-नेति निवटाइ ठाइ इति-इति-धुनि धारत॥२८॥

पुर-वासिनि की भीर तीर आवति उमगाई।
विस्मय-संक-विनोद-मोद-स्रद्धा-सरसाई॥
स्नान दान करि सकल पूजि सुरसरि सुख-साने।
करत बैठि जल-पान लोक परलोक भुलाने॥२९॥

भरि भरि गागरि चलति नवल नागरि सुख-दैनी।
ललकि लचावति लंक बंक चितवनि करि पैनी॥
धरि कमला बहु वपुष सुधा-निधि सौं मनु आई।
सुधा निदरि भरि गंग वारि एंड़ति छबि-छाई॥३०॥

चलि बिठौर सौं ठौर ठौर आनँद उपजावति।
दपटि दरेरति दुरित झपटि दुरभाग भजावति॥
पहुँची आनि प्रयाग रम्य दुहूँ कूल बनावति।
झाऊ-झाड़िनि माहिं मुक्ति-मुक्ताफल लावति॥३१॥

तहँ बिरजा गोलोक कुंज की सखी सयानी।
ह्वै जमुना उमगाइ आइ भेंटी सुखसानी॥
हरि - हर - प्रिया - पुनीत - सुभग - संगम जगवंदित।
विधि पतनीहुँ गुप्त मिली ह्वै द्रवित अनंदित॥३२॥

शोभा अकथ अनूप लखत सुर चढ़े विमाननि।
गावत सारद - नारदादि अस्तुति तनिताननि॥
एक पार्स्व सौं बढ़ति गंग उत्तंग तरंगति।
इक तैं जमुना आनि मिलति सुख-संग उमंगति॥३३॥

मनहु सितासित चमर ढुरत दुहुँ दिसि तैं आवत।
तिर्थराज पर हिलत मिलत सुखमा सरसावत॥
उभय कछारनि बीच बिसद अच्छयवट राजै।
मरकत मनि कौ अटल छत्र मानौ छबि छाजै॥३४॥

चहुँदिसि संख - मृदंग - झाँझ - भेरी - धुनि छाई।
मनहु मंजु राज्याभिषेक की बजति बधाई॥
जय जय हर हर तुमुल सब्द नभ - मंडल पूरत।
जिहिं सुनि दुरित दुरूह दौरि दुरि दूरि बिसूरत॥३५॥

दोउ धारा टकराइ उछरि मुरि पुनि जुरि धावतिं।
सेत-नील-घन-पाँति लरति नभ मैं ज्यौं भावतिं॥
हलरति लहर तुरंग संग मिलि-जुलि मन भाई।
तरु-तर ज्यौं चल-पत्र-बीच ह्वै परति जुन्हाई॥३६॥

सुकृति-वृंद सानंद जुरत जोहत संगम पर।
तिनके पुन्य-प्रभाव हँसत जोगी जंगम पर॥
कोउ अन्हात गहि तीर कोऊ मंचनि पर चढ़ि-चढ़ि।
कोउ तरनि तैं उतरि मंझ-धारा मैं बढ़ि-बढ़ि॥३७॥

आर-पार की माल कोऊ चढ़ि चाव चढ़ावत।
कोउ थाननि के थान तानि पियरी पहिरावत॥
कोऊ भरे चित भाव नाव चढ़ि खेलत नावर।
कोउ पट भूषन देत कोऊ बाँटत न्यौछावर॥३८॥

सुघर-सलोनी-जुवति-जूह गृह-काज बिसारे।
गंग-परस पर सरस काम-क्रीड़ा-सुख-वारे॥
विविध-विभूषन-बसन-वलित विहरत कहुँ तट पर।
दुहरी दीपति करति देह-दीपति परि पट पर॥३९॥

कोउ अन्हाति सकुचाति गात पट-ओट दुराए।
कोउ जल-बाहर कढ़ति सु-उर-ऊरुनि कर लाए॥
कोउ ऐंड़ति इतराति उच्च-कुच-कोर उचावति।
लचकावति कोउ लंक वंक भृकुटी मचकावति॥४०॥

मृग-मद चंदन-वंदनादि कोउ चायनि चरचतिं।
दधि अच्छत तंबूल फूल फल कोउ लै अरचतिं॥
चित्रित होति विचित्र भाँति जल-पाँति सुहाई।
महि-बेनी पर मनहु चू चारु-नरि-छवि छाई॥४१॥

जीवन-मुक्त विरक्त कहूँ विचरत सुख-साने ।
मुनि-मंडल कहुँ कहत सुनत इतिहास पुराने ॥
कहुँ द्विज-गन सुर साधि बाँधि लय वेद उचारत ।
कहुँ कवि-जन स्वच्छंद छंद-ग्रंथहिं विस्तारत ॥४२॥

इमि सब-तीरथ-मय देवधुनि धरि प्रयाग-गौरव गह्यौ ।
मनु रुचिर राज्य-अभिषेक-हित सब-तीरथ-सुचि-जल लह्यौ ॥४३॥

एकादश सर्ग

गंग जमुन लै असि दुधार ह्वै चली चमंकति ।
काटति पातक-व्यूह विकट जम-जूह धमंकति ॥
विंध्य-छेत्र सौं होति फरति चरनाद्रिहिं नंदित ।
विंध्य-हिमाचल-मध्य-देश सुर-नर मुनि-वंदित ॥ १ ॥

अति उछाह सौं चाह-भरी आनँद-सरसाई ।
उमगति तरल-तरंग संग कासी नियराई ॥
मिली तहाँ अगवानि मानि असि जाति-मिताई ।
चली बतावति बाट जतावति निखिल निकाई ॥ २ ॥

सभु-पुरी-सुखमा अपार सुरधार निहारत ।
ताकी महिमा कौ महान मह्रि मान विचारत ॥
चली मंद गति धारि धाम अभिरामहिं देखति ।
लघु बीचिनि करि गुन-अपार-लेखा उर लेखति ॥ ३ ॥

सींचि स्वाति जल मुक्ति-खेत-बल विपुल बढ़ावति ।
भव-भय-भंजनि संभु-सक्ति पर पानि चढ़ावति ॥
महा मसानहिं परम-घाट कौ घाट बनावति ।
चिर इच्छित-फल-लाहु मुमुच्छुनि तुच्छ जनावति ॥ ४ ॥

मनिकनिका लौं आइ निरखि सुखमा सुख-सानी।
धँसी धाइ तिहिं कुंड मुंडमाली-मनमानी ॥
स्वाति-घटा सुभ भव-निधि अच्छय सीप समाई।
मुक्ति-पाँति धरि देइ लगी बिथुरन मन-भाई ॥ ५ ॥

भूप भगीरथ उतरि तुरत रथ सौं सुख लीन्यौ।
संध्यादिक करि चंदचूर कौ बंदन कीन्यौ ॥
सुखमा निरखि अनूप जानि सिव-रूप निवासी।
सबनि नवायौ सीस विविध बर बिनय बिकासी ॥ ६ ॥

पुनि सोच्यौ सकुचाइ कहँ किहि भाय कढ़न कौं।
परम बंद्य स्वच्छंद गंग सौं बिनइ बढ़न कौं ॥
पर पातक पर समुझि सहज असरप मन ताकैं।
भयौ बहुरि संतोष सपदि मन महि-भर्ता कैं ॥ ७ ॥

जोरि पानि तब माँगि बिदा सुभ सिवसंकर सौं।
करि प्रनाम अभिराम धाम कासिहुँ आदर सौं ॥
सगर-सुतनि के साप-ताप कौ दाप बखान्यौ।
सुनत गंग स-उमंग चेति चलिबौ चित आन्यौ ॥ ८ ॥

कढ़ी भरत आतंक अंक दै मनिकनिका कौं।
सिवहिं बिलोकति बंक करति गत-संक सिवा कौं ॥
चली करति हुंकार धार-बिस्तार बढ़ावति।
महि-महिमा की भरति गोद मन मोद मढ़ावति ॥ ९ ॥

भूपहु सपदि सम्हारि भए स्यंदन चढ़ि आगे।
जय-जय-धुनि नभ पूरि सुमन सुर बरसन लागे ॥
पुरबासिनि की भरी भीर सुभ तीर सुहाई।
भय - बिस्मय - सुबिनोद - मोद - स्रद्धा - सरसाई ॥१०॥

कोउ दूरहिं तैं दवकि भूरि जल-पूर निहारत।
कोउ गहि वाहिं उमाहि वढ़त-बालक कौं वारत॥
कोउ कहुँ ठठकि अवाइ लखत विन पलक गिराए।
गंग-दरस तैं मनहु अंग देवनि के पाए॥११॥

ग्रीवा चरन उचाइ चाय सौं कोउ चल चाहत।
सुभ-सुखमा-सुख-लहन-काज औरनि आवाहत॥
जानु-पानि-जुग जोरि कोऊ जय-जय-धुनि लावत।
कहत सुनत गुन गुनत कोऊ पुलकत पुलकावत॥१२॥

कोउ हर-हर करि कर पसारि जल-तल हलकोरत।
दोउ हाथनि मनु अति अमंद आनंद वटोरत॥
लै चुभकी ह्वै मगन मोद-वारिधि कोउ थाहत।
जीवन-मुक्ति-महान-लाहु लहि उमगि उमाहत॥१३॥

कोउ अंजलि जल पूरि सूर-सनमुख ह्वै अरपत।
कोउ देवनि कौं देत अर्घ पितरनि कोउ तरपत॥
कोउ तट डटि पट सुघट साजि संध्या सुभ साधत।
जप-माला मन लाइ इष्ट देवहिं आराधत॥१४॥

जहँ तहँ करन कलोल लोल-लोचनि-ललना-गन।
सुंदर सुघर सुजान रूप-गुन मान-मुदित मन॥
कोउ ऐंठति तन तोरि छोरि अँगिया कोउ वैठति।
कोऊ उमैंठति भौंह सौंह करि कोउ जल पैठति॥१५॥

कोउ काहू कौं पकरि पानि डगमग पग धारति।
कोउ चंचल करि चखनि विचल अँचलहिं सम्हारति॥
कोउ निवटति कटि-तट समेटि चट पट-गुफरौटा।
हँसनि धँसनि जलधार कसनि कोउ कलित कछौटा॥१६॥

सीस सजल कर छाइ छपकि कोउ छींट उछारति ।
सुर-तरु-डारनि मथति सुधा सुख-सार निसारति ॥
कर-पिचकी-जल केलि करति कोउ आनँद धारे ।
अरविंदनि तैं चलत मनहु मकरंद-फुहारे ॥१७॥

भूषन-जरित-जराय-कलित पैरति कोउ जल पर ।
मनहु रतन उतरात छीर-सागर वर-तल पर ॥
न्हाइ-न्हाइ तट आइ सकल सुंदरि छवि छाजैं ।
मुकुर-धाम मनु काम-वाम-प्रतिबिंब विराजैं ॥१८॥

कोउ ऊरुनि बिच दाबि वसन गीले गहि गारति ।
उसरत पट कटि उरसि संक-जुत वंक निहारति ॥
कोउ लंकहिं लचकाइ लचकि कच-भार निचोरति ।
मर्कत-वल्लिनि मीड़ि मंजु मुकता फल झोरति ॥१९॥

लै कर चंदन-वंदनादि कोउ सादर डारति ।
मनु पराग अनुराग-सहित कंजनि सौं ढारति ॥
कोउ अंजलि भरि सुमन सु-मन भरि भाव चढ़ावति ।
सुमन-सुमन-मन महि-उपजन कौ चाव चढ़ावति ॥२०॥

कोउ ढारति सिर छाइ छीर लीन्हे करवा कर ।
सुर-धारा पर सुधा-धार मनु स्रवत सुधाधर ॥
सजि वातिनि की पाँति उमगि कोउ करति आरती ।
विधि-सरवस पर वारति मनि-गन मनहु भारती ॥२१॥

असन वसन बहुँ भाँति भेंटि कोउ सानँद राजति ।
मनहु परम-पथ काज साज सुख के सब साजति ॥
कोउ झुकि करति प्रनाम टेकि महि माथ मयंकहिं ।
मेटति मनहु बिसाल भाल के कठिन कुअंकहिं ॥२२॥

माँगति अचल सुहाग मंजु अंजलि कोउ धारे।
कलप-लता मनु चहति परम फल पानि पसारे॥
इहिं विधि विविध विधान ठानि विधिवत सब पूजतिं।
मंगल-गीत पुनीत प्रीति-संजुत कल कूजतिं॥२३॥

बहु रंगनि की चलतिं धारि सुभ अंगनि सारीं।
मनहु कलित कसमीर-तीर तैरति फुलवारी॥
लिए सकल जल-पात्र पसारतिं रूप उज्यारी।
निखिल-लोक ससि मनहुँ सुधा भरि चलत सुखारी॥२४॥

संन्यासिनि के झुंड लिए कर दंड कमंडल।
न्हाइ न्हाइ कहुँ तीर करत हर-हर करि मंडल॥
मनहु जानि महि-अजिर महा मंगल कौ दंगल।
सुंदर संग बनाइ आइ राजत तहँ मंगल॥२५॥

कहुँ बटु गन मन मुदित मज्जि वर वेद उचारैं।
विविध विनोद प्रमोद करत भरि नीर सिधारैं॥
मथत पयोनिधि स्वच्छ सुधा भरि हिय हरषाए।
मानहु देव-कुमार चलत चित चाय उचाए॥२६॥

तट-वासिनि मन गंग मोद मंगल इमि छावति।
बढ़ी बढ़ावति वेग नेग मैं मुक्ति लुटावति॥
पावन तरल तरंग देखि अति आनँद-पागी।
बरनत विरद उतंग संग बरुना वर लागी॥२७॥

विस्वामित्र-पवित्र-धाम आइ उमगाई।
सरजू परम पुनीत प्रीति-जुत भेंटन आई॥
नृप-कुल-गुरु की मानि मंजु फल कीरति कन्या।
लै उछंग तिहिं गंग चली हलरावति धन्या॥२८॥

दच्छिन दिसि तैं आनि भाग-अनुराग-लपेटी।
मगध देस-मग धाइ सोन-धारा सुभ भेटी॥
मिलि हिमगिरि-वर-विंध्य विसद-महिमा मनभाई।
प्रगट्यौ हरि-हर-पुन्य क्षेत्र सुर-मुनि-सुखदाई॥२९॥

वढ़ी वहुरि सुरधार धरा-दुख-दारिद मेटति।
कोसी आदि अनेक नदिनि निज संग समेटति॥
अंग वंग के दुरित भंग करि रंग रचावति।
जंगल-जंगल माहिं महा मुद मंगल छावति॥३०॥

सुंदरवन मैं भरति भूरि सुठि सुंदरताई।
सगर-सुतनि हित मानि आनि सागर समुहाई॥
जानि भगीरथ-वंस भूरि-जस-भाजन भारी।
सहस-धार ह्वै चली भरन तिहिं उमग-उभारी॥३१॥

सागर-तरल-तरंग-गंग-संगम देखन कौं।
तारन-प्रवल-प्रभाव-भाव उर अवरेखन कौं॥
भूप-भगीरथ-अमित-सुजल-लेखा लेखन कौं।
सगर-सुतनि की साप-औधि-रेखा रेखन कौं॥३२॥

दमकावति दुति दिव्य भव्य भूपन चमकावत।
गमकावत सुर-सुमन विसद वाहन हमकावत॥
जुरे उमगि सुख मानि आनि त्रिभुवन के वासी।
भरी नीर-निधि-तीर भीर नृप-पुन्य-प्रभा सी॥३३॥

कहुँ विधि विवुधनि संग वेद-धुनि मधुर उचारत।
रचि तांडव त्रिपुरारि कहूँ डमरू डमकारत॥
कहुँ हरि हरन कलेस वढ्यौ स्रम गुनि गुन गावत।
कहुँ सुर-राज स्वराज वढ़त लखि मोद मचावत॥३४॥

जहँ - तहँ विद्याधर विचित्र कौतुक विस्तारत ।
सिद्धि बगारत सिद्ध सुजस चारन उच्चारत ॥
गावत गुन गंधर्व नचत किन्नर दै तारी ।
उमगि भरत कल कच्छ यच्छ सुख संपति भारी ॥३५॥

इक दिसि चढ़े विमान भानु- कुल - भव्य - पितर - गन ।
सिवि दधीचि हरिचंद आदि आनंद - मगन - मन ॥
निज सपूत की अति अभूत करतूति निहारत ।
साधु - वाद दै उमगि आँस - मुकता वर वारत ॥३६॥

कहुँ मुनि - गन मन - मगन लगन सुरसरि की लाए ।
चहुँ दिसि चितवत चाह - भरे भाजन खनियाए ॥
नाग कन्यकनि - संग कहूँ विचरत बढ़ि तट पर ।
सेस वासुकी आदि कान दीने आहट पर ॥३७॥

वाहन विविध विधान जुरे तहँ आनि सुहाए ।
सगर - सुतनि के काज सकल सुख - साज - सजाए ॥
कहुँ जानानि की सजी सुखद सुभ सुंदर स्रेनी ।
सागर-तट तैं मनु सुरपुर लगि लगी निसेनी ॥३८॥

कहुँ हंसनि के विसद वंस काटत कल कावा ।
कहुँ गरुड़ - गन करत धरा - अंबर - बिच धावा ॥
बलिवर्दनि के वृंद कहूँ विचरत तट घूमत ।
कहुँ ऐरावत - झुंड सुंड फेरत झुकि झूमत ॥३९॥

इक दिसि सजे सिंगार लसति सुर-सदा-सुहागिनि ।
सगर-सुतनि वरि वेगि होन-हित अति बड़ भागिनि ॥
विचरत कौतुक-निरत देव-ऋषि विरनि विसारे ।
गंग - सुजस - रस - लीन बीन काँध पर धारे ॥४०॥

इहिँ विधि ठाटे ठाट वाट सच सानँद हेरत ।
ग्रीवा चरन उचाइ चपल चहुँधाँ चख फेरत ॥
हर-हर सब्द पुनीत उठ्यौ तब लौं बेला तैं ।
इत जय-जय-धुनि धाइ भरी नभ लौं मेला तैं ॥४१॥

उमगति - अमित - तरंग - तुंग - बर - बाँह पसारे ।
फेन - फूल - सिंगार - हार - उपहार सुधारे ॥
वढ़यौ वेगि वारीस सुखद सुरसरि भेटन कौं ।
सुधा-हीन ह्वै भयौ छीन सौ दुख-मेटन कौं ॥४२॥

सहस-धार सुरधार मिली तिहिं ति आदर सौं ।
विज्जु छटा मनु छहरि लहरि विहरी वादर सौं ॥
किधौं नील-सत-सिखर परी ढरि विखरि जुन्हाई ।
कै मरकत कैं छत्र सेत चामर छवि छाई ॥४३॥

मीन मकर सिसुमार उरग, आदिक उतराने ।
लहत गंग - सुभ - परस - पान परमानँद - साने ॥
पाप-साप-बस विवस परे तिनके जे तन मैं ।
ते धरि धरि बर वपुष वेगि विहरत सुर-गन मैं ॥४४॥

उतरि उतरि सुर-बृंद सकल सानंद कलोलत ।
डामाडोल हिंडोल सरिस लहरनि लगि डोलत ॥
बहु विधि रचत विनोद मोद चहुँ-कोद परस्पर ।
ठमकत ठेलत डटत हटत हटकत झटकत कर ॥४५॥

पग जमाइ झुकि झपट कोऊ लहरनि की झेलत ।
कोउ घूँटुनि महि टेकि अटल औरनि अवहेलत ॥
कोउ भाजत भय-भभरि ताकि उत्तंग तरंगनि ।
कोउ साहस करि वढ़त पढ़त अस्तुति बहु रंगनि ॥४६॥

इहि विधि सकल अन्हाइ पाइ सुख सुकृत कमाए।
पूजि सहित सनमान गान निज जाननि आए॥
सजि-सजि भूषन वसन लगे चितवन चित दीन्हे।
तारन - कौतुक - लखन - लालसा लोचन लीन्हे॥४७॥

इमि गंगासागर धाम सुभ जगत-उजागर जस लह्यौ।
जउ सागर-रूप अनूप तउ भव-सागर-बोहित भयौ॥४८॥

द्वादश सर्ग

कौतुक निरखि अनूप भूपहू निपट अनंदे।
पितरनि कियौ प्रनाम देव - वृंदनि - पद बंदे॥
पुनि सुर धुनि मन पाइ नाइ सिर जान चढ़ायौ।
पितरनि परम प्रसन्न जानि मन मोद मढ़ायौ॥ १॥

इत सुरसरि भरि सिंधु उमगि उर ओज बढ़ाए।
सगर सुतनि के साप दाप पर चाप चढ़ाए॥
चली चपल अति सुमन-वृंद-मन आनँद पूरति।
फिरि फिरि लखन-ससंक भूप-चिंता चकचूरति॥ २॥

कपिल धाम उत धाइ धूम सुरधुनि की धमकी।
सुभ-आगम की ओप उमगि दसहूँ दिसि दमकी॥
सगर सुतनि-की छार-छई छिति भूरि भयावनि।
लगी लगन तैं मोद-मगन अति सुभग-सुहावनि॥ ३॥

सगर - कुमारनि - संग जरे जे तरु-बल्ली - बन।
लगे बहुरि हरियान मनहु पाए नव जीवन॥
सरस्यौ सुखद समीर कपिल पल पुलकि उघारे।
निरखि धाम अभिराम ताप जारन के टारे॥४॥

तब लौं सुरसरि अति अपार आवर्त बनाए।
महा गर्त मैं धँसी धाइ धुनि-धूम मचाए॥
कपिलदेव-अति-कठिन-साप-बल-विजय विचारति।
चक्रव्यूह रचि चली मनौ ललकति ललकारति॥५॥

अभिनंदत-सुर-वृंद-सहित सानंद उमाही।
कपिल-धाम-ढिग आइ धाइ चहुँ ओर उमाहो॥
दुख-दुर्मति-दुर्भाग्य-दुरति-रेखा हठि मेटीं।
साठ सहस सब छार-रासि निज अंक समेटीं॥६॥

परसत गंग-तरंग रंग अद्भुत तहँ माच्यौ।
कौतुक निरखि महान मोद सुर-गन मन-राँच्यौ॥
लगे ललकि सब लखन चखनि अध ऊरध फेरन।
अद्भुत रस-स्वामिहु सराहि विस्मित-चित हेरन॥७॥

कढ़ि-कढ़ि सगर कुमार छार-रासिनि सौं बढ़ि-बढ़ि॥
मढ़ि मढ़ि दमकति दिव्य देह चित-चायनि चढ़ि-चढ़ि।
चमकत दमकत चले चपल मंडत नभ-मंडल।
गंगागम मैं मची मनहुँ पावक-क्रीड़ा कल॥८॥

इक दिसि विसद विमान हौड़ करि दौड़ लगावत।
केतनि लै लै चलत हलत सोभा सरसावत॥
मनहु विविध-वर-बरन साँझ-जलधर धर धावत।
गंग-सुजस-रस पूरि भूरि छबि सौं नभ छावत॥९॥

हँस-बंस इक ओर पिलत निज अंस झुकाए
केतनि पीठ चढ़ाइ चलत चहकत चटकाए॥
करि अधिकार अखंड मंडि महि-मंडल मानौ।
ब्रह्म-लोक-दिसि भूप-सुकृत-दल करत पयानौ॥१०॥

कहुँ केतनि लै ललकि गरुड़-गन मगन उमंडत।
उड़त जुड़त मँडरात मंजु नभ-मंडल मंडत॥
अस्वमेध-फल न्हाइ गंग धरि अंग सुहाए।
जात मनौं हरि-नगर सगर भेटन उमगाए॥११॥

धौरे धरम-धुरीन पीन पीठिनि लै केते।
बढ़त बाँधि सुभ ठाट बाट-हर-गिरि की चेते॥
निज गुन-सागर-सार भार मुक्तनि के नीके।
मनहु गंग उपहार भौन भेजति भगिनी के॥१२॥

उन्नत-बिसद-बितुंड-झुंड संडनि फटकारत।
केतनि लहि सुख पाइ धाइ सुर-सदन सिधारत॥
अखिल-लोक सुर-राज इन्द्र मनु न्यौति पठाए।
गंगोत्सव लखि लौटि चलत गज-ब्यूह बढ़ाए॥१३॥

उचकावति कुच पीन छीन लंकहिं लचकावति।
अधर दबाइ हलाइ ग्रीव अंगनि मचकावति॥
सस्मित भृकुटि-विलास करति करि त्रिकुटि तनेनी।
गावति मंगल चलीं संग सुर-सुंदरि-स्रेनी॥१४॥

झूमि-झूमि झुकि लचत नचत किन्नर अनुरागे।
भानु-बंस-जस-गान करत चारन सँग लागे॥
हरषत बरषत सुमन सुमन बढ़ि बाट बतावत।
बादर भरि धुनि मधुर छत्र सादर सिर छावत॥१५॥

बाजे विविध बिमान ब्योम बाजे सुभ-साजे।
गाजे पुन्य-समूह जूह पातक के भाजे॥
पूरन परम प्रमोद चलीं चहुँ-कोद बधाई॥
जय-जय की धुनि-भूरि-धाम-धामनि मैं धाई॥१६॥

भूप - भगीरथ - अति - उदार - अति अद्भुतकरनी।
तारनि - तरल - तरंग - गंग - महिमा मन - हरनी॥
सुर किन्नर गंधर्व सर्व लखि आनँद - पागे।
पुलकि अंग स - उमंग गंग - गुन गावन लागे॥१७॥

करि अस्तुति बहु भाँति सकल मिलि माथ नवायौ।
छोभ समन सुभ साम - गान धरि ध्यान सुनायौ॥
स्वस्ति - पाठ पढ़ि चढ्यौ गंग - चित रोप निवार्‌यो।
हर्‌यो अमित उद्वेग सांति - सुख जग संचार्‌यो॥१८॥

न्हाइ - न्हाइ चढ़ि जाय पूजि स्रद्धा सरसाए।
नंदनादि - बन - सुमन - हार - उपहार चढ़ाए॥
कपिलदेव सौँ मिलि जुहारि स्रद्धा सरसाए।
तोप-जनित - आमोद - ओप आनन पर छाये॥१९॥

निज - निज - देव - समूह - संग जुरि जूह सँवारे।
विधि हरि हर हरपाइ हुलसि नृप - निकट पधारे॥
पुलकित - सुभग · सरीर नीर नैननि अवगाहे।
इक सुर सौँ सब भूप-सुकृत - स्रम - सुजस - सराहे॥२०॥

अभिनंदत सुर - वृंद देखि भूपति सकुचाने।
धाइ पाय लपटाइ ललकि आनँद सरसाने॥
बहुरि जुगल कर जोरि कोरि अस्तुति मन ठानी।
पै भावनि की भीर चीर निकसी नहिँ बानी॥२१॥

साबर - मंत्र - समान अमिल आखर कछु आए।
जिहिँ प्रभाव सौँ भूप - भाव सबकैँ मन छाए॥
बढ़ि कृतज्ञता उमड़ि द्रवित ह्वै अजगुत कीन्यौ।
रसना कौ कल काम सरस नैननि सौँ लीन्यौ॥२२॥

भए देवहू मगन भूप की भक्ति निहारत ।
सके न कहि कछु उमहि मनहिं मन रहे विचारत ॥
तब विरंचि अगुवाइ उमगि वर वचन उचारे ।
प्रेम-पुलकि अवनीस-सीस कंपित कर धारे ॥२३॥

धन्य भानु-कुल-भानु धन्य तप-तेज-तपाकर ।
जासौं लहत प्रकास सुकृत सुख-सुजस-सुधाकर ॥
मात-पिता-दोउ वंस उजागर तुम अति कीने ।
महि-वासिनि के सकल दोप-दुख-तम दरि दीने ॥२४॥

अंसुमान की कठिन आन करि कानि उतारी ।
कर्म-वीरता-सुभग-सीख त्रिभुवन संचारी ॥
सुर न लखि धन विघन ठान ठानी सो ठानी ।
किए सुरासुर दंग गंग अवनी पर आनी ॥२५॥

मृत्यु लोक मैं धर्यौ आनि सुभ स्रोत अमी कौ ।
दै महिमा महि कियौ सारथक नाम मही कौ ॥
यह अति दुस्तर काज आज लौं अपर न साध्यौ ।
जदपि सहि बहु कष्ट इष्ट-देवनि आराध्यौ ॥२६॥

साठ सहस्र नृप-सगर-पूत करि पूत उधारे ।
पुन्य सलिल सौं कपिल-साप के ताप निवारे ॥
जब लौं सुर-धुनि-धवल-धार सागर मैं धसिहैं ।
तब लौं ते गन-सोक विगत लोकनि मैं बसिहैं ॥२७॥

सगर हिये कौ पुत्र-विरह-उद्वेग मिटायौ ।
सुरपुर मैं देत ताप संताप सिरायौ ॥
कपिलहुँ लह्यौ तोष लखि सुरसरि-करनी ।
निज आनन सौं कही मानि महिमा मल हरनी ॥२८॥

तव पितरनि - हित लागि गंगहूँ अति हुलसाई।
वर मुकतिनि की रासि निछावरि माहिं लुटाई॥
थल - थल थापे पुन्य - छेत्र चारहु फल - दाई।
दस दिगंगननि तव कीरति - सारी पहिराई॥२९॥

अब त्रिपंथगा गंग गरवि तव सुता कहैहै।
भागीरथी पुनीत नाम सौँ जग जस छैहै।
त्रेता जुग मुनि बालमीकि द्वापर पारासर।
कलि मैं यह सुचि चरित चारु गैहैं रतनाकर॥३०॥

देव पितर सब भए तृप्त जग जीवन भीन्यौ।
जीव जंतु सु - अघाइ पाइ जल अति सुख लीन्यौ॥
करि नहान जल - दान - क्रिया सब बेद बखानी।
अब - तुमहूँ तौ पियौ पूत चिल्लू - भर पानी॥३१॥

सकल - स्वर्ग - अपवर्ग - लाहु तुम तप - बल पायौ।
अब दै कहा उमंगि करैं हमहूँ मन - भायौ॥
सिख आसिख यह देत तदपि हित - हेत सुहाई।
सुख सौँ भोगौ धर्म - सहित कल कर्म - कमाई॥३२॥

तब हरि हित करि हेरि हुलसि हँसि अति मृदु बानी।
बोले बलित - बिनोद कृपा - रस सौँ सरसानी॥
दै सुरसरित स्वयंभु संभु सिर लै जस लीन्यौ।
इहिं समाज हम लहत लाज कछु काज न कीन्यौ॥३३॥

यातैं यह बरदान मान-जुत दै सुख पावत।
तव जग जग थिर थापि आपनी सकुच सरावत॥
जब लौं सुरसरि - धार - हार बसुधा उर धारै।
तब लौं तन तव सुजस-छीर-सर-चीर सँवारै॥३४॥

गंग-अवतरन-चरित चारु जे सादर गावैं।
पढ़ैं गुनैं मन लाइ सुनैं कै सरुचि सुनावैं॥
संपति संतति मान ज्ञान गुन ते बहु पावैं।
बिलसि बिलास अनंत अंत सुर-लोक सिधावैं॥३५॥

औरहु जो बर चहहु लहहु सकुचहु जनि बोलौ।
दरि दुराव चढ़ि चाव भाव अंतर कौ खोलौ॥
हाँ हाँ सकुच बिहाइ कहौ इच्छा मनमानी।
भुज उठाइ इमि उठे बोलि संकर दिन-दानी॥३६॥

सबनि जोरि जुग हाथ कह्यौ नृप माथ नवाए।
ह्वै सनाथ हम नाथ सकल इच्छित फल पाए॥
तदपि यहै करि बिनय चहत अज्ञा-अनुगामी।
भारत पर निज कृपादृष्टि राखहु नित स्वामी॥३७॥

सदा होइ यह धर्म-धान्य-धन धीरज-धारी।
विद्या बुद्धि बिवेक बीरता कौ अधिकारी॥
याके पूत सपूत नित्य निज करतब साधैं।
गंग गाय गोलोक-नाथ सादर आराधैं॥३८॥

करैं प्रेम कौ नेम सकल मिलि छेम पसारैं।
याकैं हित हठि प्रान-पानि-तल पर सब धारैं॥
जब जब बिपति-समुद्र याहि बौरन कौं कोपै।
तब तब आप-प्रताप ताहि कुंभज ह्वै लोपै॥३९॥

यह सुनि सकल सराहि नृपति निस्पृह कामनि कौं।
"एवमस्तु" कहि चले मुदित निज निज धामनि कौं॥
नभ तैं बरसे सुमन बजी आनंद-बधाई।
उमग्यौ मोद अनंत दिगंतनि जय धुनि छाई॥४०॥

इमि भूप-सुकृत - राकेस - द्युति गंग सकल कलमस हर्‌यौ।
वर - बानी विमल - विलास चढ़ि रतनाकर उर संचर्‌यौ ॥४१॥

—०—

त्रयोदश सर्ग

भूप भगीरथ तब अन्हाइ अद्‌भुत सुख लीन्यौ।
संध्या-बंदन साधि देव पितरनि जल दीन्यौ ॥
मन प्रमोद तन पुलक प्रेम-जल पलकनि छाए।
गद्‌गद स्वर सौं करी गंग-अस्तुति उमगाए ॥ १ ॥

जय तांडव - द्रव - भूत - ब्रह्म - मूरति अति पावनि।
प्रबल - प्रभाव-अमोघ सकल-अघ -ओघ नसावनि ॥
चतुरानन - हरि-ईस-परम-पद - बिसद - बितरनी।
दस - पातक - असुरारि - रूप दस इक अवतरनी ॥ २ ॥

जय बिरंचि - कृत - बंक-अंक - निस्संक पखारिनि।
सुख - संपति - संतान - मान - विस्तारिनि तारनि ॥
जय हरि की स्त्रम-हिरनि बाँटि तारन - कृति भारी।
निज महिमा - बल बिपुल बहुरि बहु रचि असुरारी ॥ ३ ॥

जय गिरीस - सुभ - सीस - सरस-सोभा संचारिनि।
हृत - त्रिलोक-त्रय - ताप-जनित-संताप - निवारिनि ॥
जय अमृतासन-बृंद - तोप - निज - बाढ़ बढ़ावनि।
स्वल्प - सुधा-कृत-देव - दनुज-दल - द्रोह - बहावनि ॥४॥

जय विप्रनि हित परम ब्रह्म - विद्या की स्रेनी ।
तोप मोप बिज्ञान मान इच्छित सब देनी ॥
जय क्षत्रिय-कुल - दुरित - दलन - संगर की संगिनि ।
चार - वर्ग - जय - हेत चमू चमकति चतुरंगिनि ॥ ५ ॥

जय वनिकनि के काज धनिक गाहक मति भोली ।
खोट - पोट लै देति खरो मुक्तिनि की झोली ॥
जय सूदन हित अति उदार कोमल-चित स्वामिनि ।
सेवत सद्यः देति सौख्य - संपति सुरधामिनि ॥ ६ ॥

जय जोगिनि की परम-तत्व सुख-निधि भोगिनि की ।
सोगिनि की दुख-दरनि हरनि आरति रोगिनि की ॥
जय जग - जननि अनंत छोह संतति पर लावनि ।
मृतकहुँ लै निज गोद मोद सुख दै दुलरावनि ॥ ७ ॥

जय किल केहरि - मालकर्म - वन-गहन सुचारिनि ।
पातक - कुंजर - पुंज गंजि बर - मुक्ति - पसारिनि ॥
दुख-दारिद-दुरभाग- दुरित - गिरि-गुहा-विदारिनि ।
चिंता - भ्रम - उद्वेग-वेग - मृग - निखिल निवारिनि ॥ ८ ॥

जय कलपद्रुम - कुसुम - मंजु - मकरंद तरंगिनि ।
सुर - नर-मुनि-मन-मधुप-पुंज-सरवस-सुख-संगिनि ॥
जय वृंदारक - वृंद - वंध कल कामदुहा की ।
धवल धार सुख - सार जीवनाधार धरा की ॥ ९ ॥

जय आनंद - तरंग गंग गिरि - नायक - नंदिनि ।
जय जाह्नवी पुनीत ईति - भव - भीति - निकंदिनि ॥
जय दिनेस कुल-सुभ्र - सुजस त्रिभुवन संचारिनि ।
भागीरथी कहाइ अमर - कल - कीरति - कारिनि ॥१०॥

जय सुचि सुकृत - पयोधि - सुधा की धार सुधारी।
चारु - चार - फल - देन - पुन्य - तरु-सीँचनहारी॥
जाकैँ अर्घ अघात सुधा - भोगी विवुधाकर।
जिहिँ नव - जीवन - पूरि भूरि उमगत रतनाकर॥११॥

नृप - अस्तुति सुनि उठी गंग - उर कृपा - फुरहरी।
जल - तल पर लहरान लगीँ आनँद की लहरी॥
यह धुनि मंजुल मधुर धार - कलकल तैँ आई।
धन्य भगीरथ भूप धन्य तव पुन्य कमाई॥१२॥

यह तप - तेज प्रचंड सील को यह सियराई।
पावक पाला लसत सुमिल तुम मैँ इकठाई॥
सब देवनि वर दिए दिव्य मन - मोद - मढ़ाए।
अब हमहूँ सौँ लहौ चहौ जो चाव - चढ़ाए॥१३॥

यह सुनि नृप कर जोरि निवेदन सादर कीन्यौ।
सगर - कुमारनि तारि हमैँ सब कछु तुम दीन्यौ॥
दानी परम उदार पाइ पर तृपा न त्यागनि।
यातैँ यह वरदान - लाहु - लालच जिय जागनि॥१४॥

पापी पतित स्वजाति-त्यक्त सौ सौ पीढ़िनि के।
धर्म - विरोधी कर्म-भ्रष्ट च्युत स्रुति - सीढ़िनि के॥
तव जल स्रद्धा-सहित न्हाइ हरि नाम उचारत।
ह्वै सब तन-मन - सुद्ध होहिँ भारत के भारत॥१५॥

यह सुनि पुनि धुनि भई धन्य तव नय-निपुनाई।
देस - भक्ति भरपूर जाति - अनुरक्ति सुहाई॥
सफल कामना होहिँ सकल तव सुचि - रुचि - वारी।
भारत पर नित करैँ कृपा हरि आरति - हारी॥१६॥

सुरसरि - आसिख पाइ निपट नरपति आनंदे।
कपिलदेव अभिनंदि बिबिध पुनि सादर वंदे॥
धन दिलीप कौ लाल धन्य यह जस सिख-दानी।
साधि सकल निज कठिन काज पीयौ तव पानी॥१७॥

करि प्रनाम तव पुलकि माँगि आयसु सुरधुनि सौं।
चढ़ि स्यंदन सानंद चले आसिष लहि मुनि सौं॥
लखत दुरंग तरंग गंग - गुन गुनत सुहए।
पूरित अमित उमंग अंग बेला पर आए॥१८॥

तहँ देखे निज बाट लखत सुभ ठाठ जमाए।
गंगागम सुधि पाइ धाइ उमगत चलि आए॥
मंत्री सेनप सखा दास मुखिया हित - भीने।
असन वसन सुख - साज - वाज नाना-बिधि लीने॥१६॥

उतरि तुरत नरनाह तहाँ दीन्यौ सुभ दरसन।
धाइ-धाइ सुख पाइ लगे सव पायनि परसन॥
पुलकित-तन नर-नाह सवनि भुज भरि-भरि भेट्यौ।
पूछि - पूछि कुसलात तोपि दारुन दुख मेट्यौ॥२०॥

तव सव हठ करि उबटि भूप सादर अन्हवाए।
वसन विभूपन विविध - भाँति हिय हुलसि धराए॥
रसना - रंजन वहु प्रकार व्यंजन सुचि परसे।
सवनि संग बैठाइ पाइ सुख - सरसे॥२१॥

गिरजा - नंदन वंदि चले स्यंदन।
भरत भूरि आनंद
जहँ - तहँ उतरि
मग के परम पुनीत

इहिं विधि सुरसरि-तीर-तीर कासी लौं आए।
तहाँ पूजि पुनि माँगि विदा लोचन जल छाए॥
विस्वनाथ-पद वंदि विविध द्विज-गन सनमाने।
चले अवध-पुरि-ओर उमगि उर आनँद-साने॥२३॥

नृप-आगम-सुभ-समाचार पुर-वासिनि पाए।
चौहट हाट बिराट वाट बहु ठाट सजाए॥
ध्वजा पताका प्रचुर चारु तोरन छवि-छाजी।
मंजुल मंगल-कलस रंभ-खंभनि की राजी॥२४॥

पुरजन परिजन स्वजन चले उमगत अगवानी।
आगैं किए वसिष्ट आदि द्विज-गन विज्ञानी॥
पुर बाहिर ह्वै लगे लखन लोचन ललकाए।
तब लौं दृग-पथ आइ भगीरथ-रथ नियराए॥२५॥

लखि वसिष्ट कुल-इष्ट भूप स्यंदन तजि धाए।
पुलकि ढारि दृग वारि सपद पायनि लपटाए॥
कंपित कर वर पकरि माथ मुनि-नाथ उठायौ।
बरबस बिरति बिसारि प्रेम-कातर उर लायौ॥२६॥

बार बार कुसलात पूछि आनँद अवगाह्यौ।
कर्म-वीर-नर-नाह-साहसहिँ हुलसि सराह्यौ॥
तब नर-वर सब अपर विप्र वृंदनि-पद वंदे।
पुर-वासिनि सनमानि मानि सुख सवनि अनंदे॥२७॥

ग्राम-देवतनि पूजि दान बहु भाँतनि कीन्यौ।
नाइ ईस कौं सीस पाय पुर-अंतर दीन्यौ॥
चले सकल मिलि कहत सुनत नृप-सुजस-कहानी।
पुर-बासिनि की भीर दरस-हित अति उमगानी॥२८॥

धरे वसन बहु - भाँति पाँति दुहुँ ओर लगाए।
जय-जय धुनि सब करत महा मन मोद मनाए ॥
साजे नव - सत सुमुखि बृंद छातनि छबि छावत।
गावत मंगल गीत सुमन सादर बरसावत ॥२६॥

बालक बालत - बिनोद फिरत देखत सो मेला।
कोउ कछु कौतुक लखत कोउ कहुँ करत झमेला ॥
कोउ छेकत छैलात देखि कहुँ मंजु खिलौना।
कोउ ऐंठत इठलाइत मिठाइनि के लहि दौना ॥३०॥

सिंह-पौरि पर भई भीर सोभित अति भारी।
हय गय स्यंदन सुभग सजे बहु बाँधि पँत्यारी ॥
सेनप - स्रेनी लसति अस्त्र - सस्त्रनि सौं साजी।
जहँ - तहँ राजति रुचिर राज - काजिनि की राजी ॥३१॥

लै लै कंचन - कलस कहूँ सुभ सुघर सुआसिनि।
साजे मंगल थार थिरकि गवनति मृदु - हासिनि ॥
वंदी मागध सूत सुजस गावत सुख - कारी।
भीर सँभारत लिए पुरट - लकुटी प्रतिहारी ॥३२॥

घंटा - संख - मृदंग - झाँझ - भेरी - धुनि छाई।
भूप - मंडली मंडि नगर तव लौं तहँ आई ॥
लहो सवनि सुख - मोट चोट धौंसनि पर धमकी।
मनहु अवध पर घेरि घटा आनंद की धमकी ॥३३॥

वंदे विप्र - समाज राज - कुल - जन नृप भेंटे।
पूछि कुसल हँसि हेरि प्रजा - परिजन - दुख मेटे ॥
पुलकि पूजि कुल - देव दान दै अवसर - वारे।
मुनि - नाथहिँ सिर नाइ पाइ अंतःपुर धारे ॥३४॥

चहल - पहल तहँ मची मंजु महिलनि की भारी।
बसन - बिभूषन - ललित ललित अवसर - अनुहारी।
कंचन - करवा वारि चलति ढरकावन चेरी॥
राई - लोन उतारि उमगि बलि जाति जठेरी॥३५॥

विप्र - वधू कुल - मान्य देति आसिप सुख - सानी।
परसति पाय नवाइ सीस सरसत - दृग रानी॥
पुरट - पाट - पट पारि पाँवड़े मृदुल मनोहर।
सादर चलीं लिवाइ ललकि गावति सुभ सोहर॥३६॥

मनि - मंदिर बैठाइ पाय सानंद पखारे।
सजि - सजि कंचन - थार आरते उमगि उतारे॥
लगीं निछावर होन सोन - मुक्ता - मनि - ढेरी।
भरि - भरि कोंछनि चलीं भाट - नर - नारि कमेरी॥३७॥

इहिं विधि परमानंद होन नृप - मंदिर लागे।
परिजन - प्रजा - समूह सकल सुख लहि अनुरागे॥
घर घर व्यापी भूप - सुकृत - सुभ - कथा सुहाई।
कहत सुनत चहुँ कोद मोद - मढ़ि लोग लुगाई॥३८॥

गुरु वसिष्ठ तब सोधि सुदिन दीन्यौ अनुसासन।
सभा - भौन सजि बिसद बन्यौ दूजौ इंद्रासन॥
द्विज - गन परम पुनीत प्रीति - जुत न्योति पठाए।
सचिव सूर सामंत स्वजन परिजन जुरि आए॥३९॥

सभाधिकारिनि सबनि जथोचित आसन दीने।
पुरवासिनि वर व्यूह - बद्ध चहुँ दिसि थित कीने॥
बंदी मागध सूत बाँधि स्रेनी सजि सोहत।
नृप - आगम की बाट सबै प्रमुदित - चित जोहत॥४०॥

इत नृप न्हाइ सिराइ सुमिरि अभिमंत्रित जल सौं।
साजि अंग स-लगंग बिभूषन बसन बिमल सौं॥
पंच-देव कुल देव नवग्रह पूजि जथाबिधि।
गुरुदेवहिं सिर नाइ चलेउ मड्यौ आनँद निधि॥४१॥

सुभ सवच्छ गो लच्छ पौरि पर मोद मढ़ाए।
सोपस्कर करि दान सभा-मंदिर मैं आए॥
तहँ वसिष्ट पढ़ि बेद-मंत्र दीन्यौ अनुसासन।
करि प्रनाम तब कियौ भूप भूपित सिंहासन॥४२॥

स्वस्ति-पाठ अरु जय-जय की धुनि-धूम सुहाई।
सभा-भौन तैं उमड़ि घुमड़ि चारहुँ दिसि छाई॥
बहु प्रकार के दान मान महि-देवनि पाए।
जाचक भए अजाच प्रजा परिजन मुद छाए॥ ॥४३॥

प्रीति नीति सौं पागि प्रजा पालन नृप लागे।
सुख-संपति भरि भूरि भाग वसुधा के जागे॥
बिरदावलिहिं बढ़ाइ लगे चारन उच्चारन।
स्वस्ति श्री तप-तरनि-तरनि-तारनि-अवतारन॥४४॥

लहि श्रीजगदंब-निदेस वर गंग-गिरा-गननाथ-वर।
यह रतनाकर कीन्यौ अमर गंग-चरित सुभ सौख्यकर॥४५॥

समाप्ति-संवत्

संवत् उनइस से असी गुरु-पूनौ भृगु-वार।
गंग-अवतरन काव्य यह पूरन भयौ उदार॥

—❀—